श्रीयोगवाशिष्ठ

निर्वाण प्रकरण

(१०१- २००)

अनुक्रम

समाधान वर्णन

मनु बोले, हे राजन्! बड़ा आश्चर्य है कि शुद्ध चिन्मात्र आत्मा में माया से नाना प्रकार के देह, इन्द्रियाँ और दृश्य भासि आये हैं । हे राजन्! दृश्य का कारण अज्ञान है । जिस आत्मा के अज्ञान से दृश्यरूप भासता है- उसी के ज्ञान से लीन हो जाता है इससे संवेदन को त्यागकर आत्मा की भावना कर । यह मैं हूँ, ये मेरे हैं ये संकल्प मिथ्या ही फुरते हैं । हे राजन्! प्रथम कारणरूप से एक जीव उपजा और उस आदि जीव के अनेक जीवगण हुए । जैसे अग्नि से चिनगारे निकलते हैं तैसे ही उसने अनेक रूप धारे हैं और कोई गन्धर्व, कोई विद्याधर कोई मनुष्य, कोई राक्षस इत्यादिक हुए हैं । फिर जैसे संकल्प होते गये हैं, तैसे ही रूप होते गये, वास्तव में जैसे जल में तरंग स्वरूप के प्रमाद से अनेकभाव प्राप्त होते हैं तैसे ही अपने संकल्प आप ही को बन्धनरूप होते गये हैं । इससे संकल्प नानात्व कलना मिथ्या है । हे राजन्! इस भावना को त्यागकर आत्मपद को प्राप्त हो आत्मा अनन्त है । यह विश्व और प्रकार का भान होता है । जैसे समुद्र सम है पर उसमें कई आवर्त्ततरंग और बुद्बुदे उठते हैं सो जल से भिन्न नहीं तैसे ही आत्मा में अनेक प्रकार का विश्व फुरता है सो आत्मा से भिन्न नहीं, आत्मस्वरूप ही है इससे आत्मा की भावना कर । कहीं ब्रह्म सत् संकल्प होकर फुरता है तो जानता है कि मैं ब्रह्म, शुद्धरूप और सदा मुक्तरूप हूँ और इस संसारसमुद्र से पार हो गया हूँ । जहाँ चेतनाशक्ति है वहाँ आपको जीवता मानता है और दुःखी भी जानता है । अन्तःकरण से मिलकर भोग की भावना करना और सदा विषय की तृष्णा करना जीवात्मा कहाता है और जहाँ वासना क्षय हुई है और शुद्ध आत्मा प्रत्यक्ष है वहाँ जीवसंज्ञा नष्ट हो जाती है और केवल शुद्ध आत्मा प्रकाशता है । हे राजन्! चेतन जब अन्तःकरण से मिलकर बहिर्मुख फुरता है तब संसारी हुआ जरा मरण से दुःखी होता है और जहाँ चेतनशक्ति अन्तर्मुख होती है तब जन्ममरण की भावना को त्यागकर स्वरूप की भावना करता है और सर्व दुःख की निवृत्ति होती है । जब इसकी भावना स्वरूप की ओर लगती है तब कोई दुःख नहीं रहता

और जब स्वरूप का प्रमाद होता है तब दुःख पाता है । स्वरूप के ज्ञान से आनन्दरुप मुक्त होता है । हे राजन्! तू संसाररूपी कूप की गगरी रस्सी से बँधती है तो कभी ऊर्ध्व को जाती है और कभी अधः को जाती है पर जब रस्सी टूट पड़ती है- तब न ऊर्ध्व को जाती है और न अधः को जाती है । कूप क्या है । अधः क्या है और ऊर्ध्व क्या है? सो भी सुन । हे राजन्! संसाररूपी कूप है, स्वर्गलोक ऊर्ध्व है और नरक अधः है । पुण्यकर्म से स्वर्ग को जाता है और पापकर्म से नरक में जाता है । इसी प्रकार आशारूपी रस्सी से बँधा हुआ जीव जन्ममरणरूपी चक्र में फिरता है । स्वर्ग और नरक में फिरने का कारण आशा है । जब आशा निवृत्त होती है तब न कोई नरक है न स्वर्ग है । जब तक देह में अभिमान है तब तक नीच से नीच गति को प्राप्त होता है । जैसे पत्थर की शिला समुद्र में डारिये तो नीचे से नीचे चली जाती है तैसे ही नीच स्थानों को देखकर देहाभिमानी नीचे को चला जाता है । जब इन्द्रियादिक का अभिमान त्याग करता है तब जैसे क्षीर समुद्र से निकलकर चन्द्रमा अधः से ऊर्ध्व को चला जाता है तैसे ही ऊर्ध्व को जाता है । हे राजन्! यदि आत्मा की भावना करोगे तो आत्मा ही होगा, इससे आशारूपी फाँसी को तोड़कर शान्तपद को प्राप्त हो । आत्मा चिन्तामणि की नाईं है । जैसी भावना कीजिये तैसे ही सिद्ध होती है, यदि तू आत्मभावना करेगा तो सम्पूर्ण विश्व अपने में देखेगा । जैसे पर्वत शिला और पत्थर को अपने में देखता है तैसे ही तू भी सर्वआत्मा जानेगा । हे राजन्! जो कुछ दृश्य है सो सर्वात्मा के आश्रय है, शास्त्र और शास्त्रदृष्टि सब आत्मा के आश्रय हैं और राजा भी आत्मा के आश्रय है वह सर्वसत्य आत्मा चिन्तामणि कल्पवृक्ष है, जैसी कोई भावना करता है तैसी सिद्धि होती है । हे राजन्! फुरने में यह सर्वदृश्य सत्य है और जब फुरना नष्ट होता है तब न कोई शास्त्र है और न कोई दृष्टि है । केवल अद्वैत आत्मा है तो निषेध किसका कीजिये और अंगीकार किसका करिये । जो पुरुष अहंकार से रहित हुआ है वह सर्वशास्त्र दृष्टि पर विराजता है और सर्वात्मा होता है । जैन उसी को जिन कहते हैं और कालवादी उसी को काल कहते हैं सबका आसरा आत्मा है । जो पुरुष देहाभिमानी है वह मूर्ख है और स्वरूप के अज्ञान से अधः ऊर्ध्वलोक को गमन-आगमन करता है, पशु, पक्षी, स्थावर जंगम योनि पाता है और आशारूपी फाँसी से बधा हुआ दुःख को प्राप्त होता है । जो पुरुष सम्यक्दर्शी है और जिसकी शुद्ध चेष्टा है उसको कोई विकार दृष्टि नहीं आता आकाश की नाईं सदा निर्मल भासता है । उसको सम्पूर्ण विश्व आत्मस्वरूप भासता है और जो चेष्टा ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्राद्रिक करते हैं उसका कर्ता भी आपको जानता है । उसको सर्व दुःख का अन्त होता है, वह आत्मपद को प्राप्त होता है और उसको सर्व सुख की सीमा प्राप्त होती है । हे राजन्! जैसे नदी तबतक चलती है जबतक समुद्र को नहीं प्राप्त हुई पर जब समुद्र को प्राप्त होती है तब नहीं चलती तैसे ही जब तू आत्मपद को प्राप्त होगा तब कोई इच्छा तुझे न रहेगी । हे राजन्! तू अहंकार का त्याग कर अथवा ऐसा जान कि सब मैं ही हूँ । जरा मरण आदिक दुःख तब तक हैं जबतक आत्मबोध नहीं प्राप्त हुआ, जब आत्मबोध होता है तब कोई दुःख नहीं रहता । दोनों ही दुःख भारी हैं पर ज्ञानी को इन्द्र के वज्रसमान दुःख भी स्पर्श नहीं करता । हे राजन्! जैसे पेड़ से सुखकर फल गिरता है उसी प्रकार जब ज्ञानरूपी फल प्राप्त होता है तब मन, बुद्धि अहंकार पेड़ की नाईं गिर पड़ते हैं । जब तक मन की चपलता है तबतक दुःख पाता है तबक दुःख पाता है और जब मन की चपलता निवृत्त होती है तब कोई क्षोभ नहीं रहता और शान्तपद को प्राप्त होता है । शान्ति तब होती है जब प्रकृति का वियोग होता है । प्रकृति के संयोग से संसारी होता है और दुःख पाता है इससे प्रकृति को त्याग दे अर्थात् अहंकार से रहित होकर चेष्टा कर । जब तू अहंकार से रहित होगा तब उस पद को प्राप्त होगा जो न जड़ है, न शून्य है, न अशून्य है, न केवल है, उसे न आत्मा

कह सकते हैं न अनात्मा, न एक होता है न दो । जो कुछ नाम है सो प्रतियोगी से मिले हुए हैं । प्रतियोगी हुआ द्वैत होता है और आत्मा अद्वैत है जिसमें वाणी की गम नहीं और जो अवाच्यपद है उसको कैसे कहिये? जितनी नाम संज्ञा हैं सो उपदेशमात्र हैं, आत्मा अनिर्वाच्यपद है । इससे संकल्प का त्याग कर और आत्मा की भावना कर । जब तू आत्मभावना करेगा तब केवल आत्मा ही प्रकाशेगा । जैसे फूल को कोई अंग सुगन्ध से रहित नहीं होता- तैसे ही आत्मा से कुछ भिन्न नहीं । हे राजन्! जब अहंकार का त्याग करोगे तब अपने आप से शोभायमान होगे और आकाश की नाईं निर्मल आत्मा में स्थित होगे । अहंकार को त्याग कर उस पद को प्राप्त होगे जहाँ शास्त्र और शास्त्रों के अर्थ प्राप्त नहीं होते, जहाँ सम्पूर्ण इन्द्रियों के रस लीन हो जाते हैं और सब दुःख नष्ट हो जाते हैं तब केवल मोक्षपद को प्राप्त होगे । हे राजन्! मोक्ष किसी देश में नहीं कि वहाँ जाकर पावे, न किसी काल में ही है कि अमुक काल आवेगा तब मुक्त होगा और न कोई पदार्थ ही है कि उसको ग्रहण करेगा, केवल अहंकार के त्याग से मोक्ष होता है जब तू अहंकार का त्याग करेगा तभी मोक्ष है । जब तू इस अनात्म अभिमान को त्यागेगा तब अपने आपसे शोभायमान होगा और जैसे धुँवा बिना अग्नि प्रकाशमान होता है तैसे ही अहंकार बिना प्रकाशेगा । जैसे बड़े पर्वत पर निर्मल और गम्भीर तालाब शोभता है तैसे ही तू शोभेगा । हे राजन्! तू अपने स्वरूप में स्थित हो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे समाधानवर्णनंनामैकाधिकशततस्सर्गः ||101||

अनुक्रम

मनुइक्ष्वाकुसंवाद समाप्ति

मनु बोले, हे राजन्! तू शुद्ध और रागद्वेष से रहित आत्मारामी नित अन्तर्मुख हो रह जब तू आत्मारामी होगा तब तेरी व्याकुलता नष्ट हो जावेगी और शीतल चन्द्रमा सा पूर्ण वत् हो जावेगा । ऐसा होकर अपने प्रकृत आचार में बिचर और किसी फल की वाञ्छा न कर जो पुरुष वाच्छा से रहित होकर कर्म करता है वह सदा अकर्ता है और महा शोभा पाता है । ऐसी अवस्था में स्थित होकर जो भोजन आवे उसको भक्षण कर और जो अनिच्छित वस्त्र आवे उसको पहिर, जहाँ नींद आवे वहाँ सो रह और रागद्वेष से रहित हो । जब तू ऐसा होगा तब शास्त्र और शास्त्रों के अर्थ से उल्लंघित बर्तेगा जो ऐसा पुरुष है वह परम रस को पाकर रस को पाकर मतवाला होता है और उसको संसार की कुछ नहीं रहती । हे राजन्! ज्ञानवान् चाहे काशी में देह त्यागे अथवा चाण्डाल के गृह में त्यागे वह सदा मुक्त है और वह सदा आत्मस्वरूप में स्थित है । वर्तमानकाल में वह देह को नहीं त्यागता, क्योंकि जिस काल में उसको ज्ञान हुआ उसी में देह का अभाव हुआ-ज्ञान से देह बाध हो जाती है । हे राजन्! ज्ञानवान् सदा मुक्त रूप है, वह न किसी की स्तुति करता है और न निन्दा करता है, क्योंकि उसके चित्त की कलना मिट गई है । यद्यपि रागद्वेष ज्ञानवान् में भी दृष्टि आते हैं और वह हँसता रोता भी देख पड़ता है परन्तु उसके अन्तर न राग है और न द्वेष है, और वास्तव से न हँसता है न रोता है-ज्यों का त्यों है । जैसे आकाश शून्यरूप है और उसमें बादल भी दृष्टि आते हैं परन्तु आकाश को कुछ लेप नहीं करते, तैसे ही ज्ञानवान् को कोई क्रिया बन्धन नहीं करती पर अज्ञानी जानते हैं कि ज्ञानवान् को क्रिया बन्धन करती है हे राजन्! ज्ञानवान् सर्वदा नमस्कार करने और पूजने योग्य हैं । जिस स्थान में ज्ञानवान् बैठता है उस स्थान को भी नमस्कार है, जिससे बोलता है उस जिह्वा को भी नमस्कार है, जिससे बोलता है उस जिह्वा को भी नमस्कार है और जिस पर ज्ञानवान् दृष्टि करता है उसको भी नमस्कार है, वह सबका आश्रय है । हे राजन् जैसा ज्ञानवान् की दृष्टि से आनन्द मिलता है वैसा आनन्द तप, दान और यज्ञ आदि कर्मों से नहीं मिलता और ऐसी दृष्टि और किसी की नहीं होती जैसी सन्त की दृष्टि है वह ऐसे आनन्द को पाता है जिसमें वाणी की गम नहीं । जो पुरुष सन्त की दृष्टि को पाकर सुखी होता है उससे लोग दुःख नहीं पाते और लोगों से वह दुःखी नहीं होता और न किसी का भय करता है, न किसी का हर्ष करता है । हे राजन्! सिद्धि पाने का सुख पाने का सुख अल्प है, क्योंकि उड़ने की सिद्धि पाई तो अनेक पक्षी उड़ते फिरते हैं, इससे आत्मज्ञान् तो नहीं मिलता और आत्मज्ञान बिना शान्ति नहीं होती । जब आत्मज्ञान् प्राप्त होता है तब जरा, मृत्यु आदिक दुःख से मुक्त होता है और कोई दुःख नहीं रहता जैसे पिंजरे से छूटा सिंह फिर पिंजरे के बन्धन में नहीं पड़ता, तैसे ही वह पुरुष अज्ञानरूपी पिंजरे में नहीं फँसता! हे राजन्! इससे तू आत्मा की भावना कर कि तेरे दुःख नष्ट हो जावें । अज्ञान से तुझे दुःख भासते हैं-अज्ञान से रहित सदा आनन्द रूप है । इससे अनुभवरूप आत्मा में स्थित हो । जब तू आत्मा में स्थित होगा तब जैसे शुद्ध के निकट श्वेत, रक्त, पीत, श्याम आदि रंग रखिये तो वह उनके प्रतिबिम्ब को ग्रहण करती है पर कोई रंग स्पर्श नहीं करता कल्पित से भासते हैं, तैसे ही तू प्रकृत आचार को अंगीकार करता रहेगा पर तुझे पाप पुण्य का स्पर्श न होगा ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मनुइक्ष्वाकुसंवादसमाप्तिर्नाम द्वयधिकशततमस्सर्गः ||102||

अनुक्रम

कर्मविचार

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार उपदेश करके जब मनुजी तूष्णीं हो गये तब राजा ने भली प्रकार उनका पूजन किया । फिर मनुजी आकाश को उड़के ब्रह्मलोक में जा पहुँचे और राजा इक्ष्वाकु राज्य करने लगा । हे रामजी! जैसे राजा इक्ष्वाकु ने जीवन्मुक्त होकर राज्य किया है तैसे ही तुम भी इस दृष्टि का आश्रय करके बिचरो । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आपने जो कहा कि जैसे राजा इक्ष्वाकु ज्ञान पाकर राज्य चेष्टा करता रहा तैसे ही तू भी कर उसमें मेरा यह प्रश्न है कि जो अतिशय अपूर्व हो उसका पाना विशेष है और जो पूर्व में किसी ने पाया है उसका पाना अपूर्व और अतिशय नहीं, इसलिये मुझसे नहीं, इसलिये मुझसे कहिये कि सर्व से विशेष अपूर्व अतिशय क्या है । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ज्ञानवान् सदा शान्तरूप और रागद्वेष से रहित है और वह अपूर्व अतिशय को पाता है । जो कुछ और अतिशय है वह पूर्व अतिशय है, पर ज्ञानवान् अपूर्व अतिशय को पाता है ज्ञानी से अन्य कोई नहीं पाता आत्मज्ञान को ज्ञानी ही पाता है और वह ज्ञान एक ही है । हे रामजी! जो दूसरा नहीं पाता तो अपूर्व अतिशय हुआ । हे रामजी! अपूर्व अतिशय को पाकर ज्ञानवान् प्रकृत आचार और सर्वचेष्टा भी करता है तो भी निश्चय सर्वदा आत्म में रखता है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ऐसा ज्ञान वान् जो अज्ञानी की नाईं सर्व चेष्टा करता है उसको किन लक्षणों से तत्त्ववेत्ता जानिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! एक स्वसंवेद लक्षण है और दूसरा पर संवेद लक्षण है । आपही अपने को जाने और न जाने इसे स्वसंवेद कहते हैं और जिसको और भी जानते हैं उसे परसंवेद कहते हैं । हे रामजी! परसंवेद के लक्षण कहता हूँ सो सुनो । तप, दान, यज्ञ, व्रत इत्यादिक करना परसंवेद है और दुःख-सुख की प्राप्ति में धैर्य से रहना समान साध के लक्षण हैं । महा कर्ता और महाभोक्ता और महात्यागी होना, क्षमा, दया इत्यादिक लक्षण साधु के हैं ज्ञानवान् के नहीं और उड़ना, छिप जाना, जो अणिमादिक सिद्धि हैं वे भी समान लक्षण हैं परन्तु यह स्वाभाविक आन फुरते हैं सो और से भी जाने जाते हैं पर जो ज्ञानी के लक्षण हैं वे स्वसंवेद हैं । इससे भिन्न उसके शरीर में सींग नहीं होते कि उससे जानिये । जैसे और व्यवहार हैं तैसे ही ज्ञानी को सिद्धिसमान है । यह भी ज्ञानवान् का लक्षण नहीं ओर पुण्य पापादिक क्रिया परसंवेद हैं सो माया के कल्पे हैं ज्ञानी के नहीं जितने लक्षण देखने में आवेंगे वे मिथ्या हैं और माया के कल्पे हैं । ज्ञानी का लक्षण स्वसंवेद है । वह सर्वदा आत्मा में स्थित है और और अपने आपसे सन्तुष्ट है । उसे न किसी का हर्ष है, न शोक है, जन्म मरण में समान है और काम, क्रोध, लोभ मोह सबको जानता है । उसका लक्षण इन्द्रियों का विषय नहीं क्योंकि वह निर्वाच्यपद को प्राप्त हुआ है । रामजी! जिसको ज्ञान प्राप्त होता है उसका चित्त स्वाभाविक ही विषयों से विरस होता है और इन्द्रियजित होता है-उसकी भोगों की इच्छा निवृत्त हो जाती है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ज्ञानिलक्षणविचारो नाम त्रयधिकशततमस्सर्गः ||103||

अनुक्रम

कर्मविचार

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मायाजाल का काटना महाकठिन है । यह आदि कलना जीव को हुई है ।जो कोई इसमें सत्‌्बुद्धि करता है वह पखेरू की नाईं जाल में फँसा हुआ निकल नहीं सकता है-तैसे ही अनात्मा अभिमान से निकल नहीं सकता है । हे रामजी! फिर मेरे वचन सुनो क्योंकि जैसे मेघ का शब्द मोर को प्रियतम लगता है, तैसे ही मेरे वचन प्रिय लगते हैं । मैं भी तेरे हित के निमित्त कहता और उपदेश करता हूँ । रघुकुल का ऐसा कोई नहीं हुआ जो शिष्य का संशय निवृत्त न करे । हे रामजी! मेरा शिष्य भी ऐसा कोई नहीं हुआ जो मेरे उपदेश से न जगा हो । इस निमित्त मैं तप, ध्यान आदिक को भी त्याग कर तुझे जगाऊँगा-इससे मैं तुझको उपदेश करता हूँ । हे रामजी! शुद्ध आत्मा में जो अहंभाव हुआ है और जो कुछ अहंकार से भासता है सो मिथ्या है-इसमें कुछ सत् नहीं-और जो इसका साक्षीभूत ज्ञानरूप है वह सत्य है-उसका कदाचित नाश नहीं होता । जो जो वस्तु फुरने से उपजी हैं वे सब नाशवन्त हैं-यह बात बालक भी जानते हैं । जो सत्य है वह असत्य नहीं होता और जो वस्तु असत् है यह सत् नहीं होती । जैसे रेत से घृत निकलना असत् है अर्थात् कदाचित् नहीं निकलता जैसे एक मेढ़क के लाख कणका करिये अथवा शिला पर घिसिये पर जब उस पर वर्षा होती है तब सब कणके दर्दुर हो जाते हैं । इससे सत्य का कदाचित नाश नहीं होता और असत्य का सद्भाव कदाचित नहीं होता । हे रामजी! सत्‌्ब्रह्म की भावना करो । जो ब्रह्म की भावना करता है वह ब्रह्म ही होता है । जैसे घृत में घृत, दूध में दूध और जल में जल मिल जाता है तैसे ही यह जीव भावना करके चिद्घन ब्रह्म के साथ एक हो जाता है और जीवसंज्ञा निवृत्त हो जाती है । जैसे अमृत के पान किये से अमर होता है तैसे ही ब्रह्म की भावना करने से ब्रह्म होता है । जो अनात्मा की भावना करता है तो पराधीन होकर दुःख पाता है जैसे विष के पान किये से अवश्य मरता है तैसे ही अनात्मा की भावना से अवश्य दुःख पाता है । और उसका नाश होता है । इससे आत्मभावना करो । हे रामजी! जो वस्तु संकल्प से उदय होती है वह थोड़े काल रहती है और जो चल वस्तु है वह भी अवश्य नाश होती है । यह दृश्य आत्मा में भ्रम से सिद्ध है । जैसे मृग तृष्णा का जल, सीपी में रूपा और आकाश में दूसरा चन्द्रमा भ्रम से सिद्ध है-वास्तव नहीं, तैसे ही अहंकार देह इन्द्रियों से सुख भासता है सो सब मिथ्या है । इससे दृश्य की भावना त्याग करके अपने अनुभवस्वरूप में स्थित हो । जब आत्मा में स्थित होगे तब मोह को न प्राप्त होगे । जैसे पारस के स्पर्श से सुवर्ण हुआ ताँबा फिर ताँबा नहीं होता, तैसे ही तू भी जब आत्मपद को जानेगा तब फिर इस मोह को न प्राप्त होगा कि मैं हूँ, यह मेरा `अहं' त्वंभाव तेरा निवृत्त हो जावेगा और यह भावना न रहेगी । रामजी ने पूछा हे भगवन्! मच्छर और जूँ आदिक जो प्रस्वेद से उत्पन्न होते हैं सो सब कर्म करके उत्पन्न होते हैं और देवता, मनुष्यादि सब कर्मों से उत्पन्न होते हैं अथवा कर्मों बिना भी कुछ होते हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! आदि परमात्मा से जो सब जीव उत्पन्न हुए हैं सो चार प्रकार के हैं । एक तो कर्मों से उत्पन्न हुए हैं और एक कर्मों बिना हुए हैं, एक आगे होंगे और एक अब भी उत्पन्न होते हैं । रामजी बोले, हे संशयरूपी हृदय अन्धकार के निवृत्त करनेवाले सूर्य और संदेहरूपी बादलों के निवृत्त करनेवाले पवन! कृपा करके कहिये कि कर्मों बिना कैसे उत्पन्न होते हैं और कर्मों से कैसे उत्पन्न होते हैं? कैसे कैसे हुए हैं, कैसे होते हैं और कैसे आगे होंगे? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! आत्मा चिदाकाश अपने आप में स्थित है । जैसे अग्नि अपनी उष्णता में स्थित है तैसे ही आत्मा अपने स्वभाव में स्थित है । वह अनन्त और अविनाशी है-उसमें फुरनशक्ति स्वाभाविक स्थित है जैसे पवन में स्पन्द शक्ति स्वाभाविक होती है और जैसे फूलों में सुगन्ध स्वाभाविक रहती है तैसे ही आत्मा में फुरनशक्ति है

। हे रामजी! फुरनशक्ति जैसे ही आद्यफुरी है तो उस शब्द की अपेक्षा से आकाश हुआ और जब स्पर्श की अपेक्षा की तब पवन प्रकट हुआ । इसी प्रकार पञ्चतन्मात्रा हो आईं शुद्धसंवित् में जो आदि फुरना हुआ उससे प्रथम अन्तवाहक शरीर हुये , उनका निश्चय आत्मा में रहा कि हम आत्मा हैं और सम्पूर्ण विश्व हमारा संकल्प है । हे रामजी! कई इस प्रकार उत्पन्न होकर अन्तवाहक से फिर विदेह मुक्ति को प्राप्त हुये । जैसे जल से बरफ होकर सूर्य के तेज से शीघ्र ही फिर जल हो जाती है तैसे ही फिर वे शीघ्र ही विदेहमुक्त हुये । कई अन्तवाहक से आधिभौतिक इस प्रकार हो गये कि जबतक अन्तवाहक में स्मरण रहा तबतक अन्तवाहक रहे और जब स्वरूप का प्रमाद हुआ और संकल्प से जो भूत रचे थे उनमें दृढ़ निश्चय हुआ और जाना कि हम ये हैं तब आधिभौतिक हो गये जैसे ब्राह्मण शूद्रों के कर्म करने लगे-और उसके निश्चय में हो जावे कि मेरा यही कर्म है और जैसे शीत करके जल से बरफ हो जाती है तैसे ही संवित् में जब दृढ़ संकल्प हुआ तब उन्होंने आपको आधिभौतिक जाना हे रामजी! आदि परमात्मा से जो कर्म बिना उत्पन्न हुए हैं उनका कोई कर्म नहीं, क्योंकि जो अन्तवाहक में रहे उनकी ईश्वरसंज्ञा हुई । उनके संकल्प से जीव उपजे , उनका कारण ईश्वर हुआ और आगे जीवकलना से उनका फुरना कर्म हुआ । आगे जैसे जैसे कर्म संकल्प से करते हैं तैसे तैसे शरीर धारते हैं । हे रामजी! आत्मा से जो जीव उपजे हैं सो आदि-अकारण होते हैं, जो आज उपजे हैं तो भी और जो चिरकाल से उपजे हैं तो भी और जो चिरकाल से उपजे हैं तो भी । वे पीछे कारण भाव को कर्म के वश से प्राप्त हुए हैं । हे रामजी! जिनका आदि फुरना हुआ है और स्वरूप में दृढ़ निश्चय रहा है उनकी संज्ञा पुण्य है और जो स्वरूप को विस्मरण करके आधिभौतिक में निश्चय करते रहे उनकी धनसंज्ञा है । हे रामजी! पुण्य से धन होना सुगम है और धन से पुण्य होना कठिन है-कोई भाग्यवान् पुरुष ही यत्न करके धन से पुण्यवान् होता है । जैसे पर्वत से पत्थर गिरना सुगम है तैसे ही पुण्य से धन होना सुगम है और जैसे पत्थर को पर्वत पर चढ़ाना कठिन है तैसे ही धन से पुण्य होना कठिन है । कितने चिरकाल धन में बहते हैं और कितने यत्न करके शीघ्र ही पुण्यवान् होते हैं । हे रामजी! जो सदा अन्तवाहक रहते हैं उनकी संज्ञा ईश्वर है और अन्तवाहक को त्यागकर आधिभौतिक होते हैं वे जीव कहाते हैं और परतन्त्र हैं-जैसे कर्म करते हैं तैसे ही शरीर धारते हैं जो धन से पुण्य होते हैं वे ज्ञानवान् हैं और उनका फिर जन्म नहीं होता । अब भी जो प्रथम उत्पन्न होते हैं वे कर्म बिना होते हैं और जब अपने स्वरूप से गिरते हैं तब जैसा संकल्प करते हैं तैसे ही शरीर धारते हैं । हे रामजी! यह विश्व संकल्प मात्र है, इससे संकल्प का त्याग करो । इस दृश्य की आस्था न करो । हे रामजी! खाना, पीना इत्यादिक चेष्टा करो परन्तु उसमें अहंभाव न करो । अहंकार अज्ञान से सिद्ध हुआ है सो दृश्य मिथ्या है । अहंभाव के होने से दुःखी होता है इससे अहंकार से रहित चेष्टा करो । हे रामजी! बन्धन और मोक्ष का लक्षण सुनो । विषय और इन्द्रियों के संयोग से इष्ट में राग करना और अनिष्ट में द्वेष करना ही बन्ध है ।जैसे जाल में पक्षी बन्धायमान होता है । ग्राह्य ग्राहक इन्द्रियाँ और विषय के सम्बन्ध से इष्ट अनिष्ट होता है । जिसमें इन्द्रियों का संयोग होता है उसमें समबुद्धि रहे, उनके धर्म अपने में न देखे और उनका जाननेवाला जो अनुभव रूप आत्मा है उसमें साक्षीरूप होकर स्थित रहे, इस प्रकार जो इनका ग्रहण करता है वह सदा मुक्तिरूप है और जो इससे भिन्न है वह मूर्ख जीव बन्धवान् है तुम इस ग्राह्य ग्राहक सम्बन्ध से सावधान रहो । इनका सम्बन्ध ही बन्धन है और इनसे रहित होना मुक्ति है । रागद्वेष करनेवाला मन है, इस मन का त्याग करो, मन ही दुःखदायी है । जैसे कुम्हार का चक्र फिरता है और उससे बासन उत्पन्न होते हैं तैसे ही मनरूप चक्र से पदार्थरूपी बासन उत्पन्न होते हैं । मन के फुरने से संसार सत्य होता है और जब फुरना

निवृत्त होगा तब कोई दुःख न रहेगा। हे रामजी! जब फुरने और अफुरने में समान होगे तब राग-द्वेष से रहित होकर बिचरोगे। यह हो और यह न हो, इससे रहित होकर चेष्टा करो। अभिलाषपूर्वक संसार में न फुरो। हे रामजी! पूर्व जो ज्ञान वान् हुए हैं उनको भूत की चिन्तना न थी और आगे होने की आशा भी न थी। वर्तमान काल में शास्त्र के अनुसार रागद्वेष से रहित वे चेष्टा करते थे, इससे तू भी संकल्प का त्यागकर स्वरूप में स्थित हो। हे रामजी! ब्रह्मा से आदि तृणपर्यन्त किसी पदार्थ में राग हुआ तो बन्धन है। मेरा यही आशीर्वाद है कि ब्रह्मा से आदि तृण पर्यन्त किसी पदार्थ में तुम्हें रुचि न हो अपने आपही में रुचि हो। हे रामजी! यह संसार मिथ्या है और इसमें कोई पदार्थ सत् नहीं-सब मन के रचे हुए हैं, इससे मन को स्थित करो। जैसे धोबी साबुन से वस्त्र का मैल दूर करता है तैसे ही मन से मन को स्थिर करो। जब मन को स्वरूप में स्थिर करोगे तब मन अपने संकल्प को आप ही नाश करेगा। जैसे दुष्ट पुरुष की जब धन से वृद्धि होती है तब वह अपने भाई आदिक के नाश करने का उपाय करता है, तैसे ही मन जब आत्मपद में स्थित होता है तब अपने संकल्प को नष्ट करता है जब तुम्हारा मन स्वरूप में स्थित होगा तब तुम अमन होगे और तुम्हारे सब दुःख नष्ट हो जावेंगे। मन के नाश बिना सुख नहीं। हे रामजी! यह मन ऐसा दुष्ट है कि जिससे उपजता है उसी के नाश का निमित्त होता है जैसे बाँस से अग्नि उपजकर उसी को जलाती है, तैसे ही आत्मा से उपजकर यह मन आत्मा ही को तुच्छ करता है। जैसे राजा का नौकर राजा की सत्ता पाकर राजा को ही मारकर आप राजा होता है, तैसे ही मन आत्मा की सत्ता पाकर और उसको ढ़ाँपकर आपही कर्ता भोक्ता हो बैठा है। इससे मन को मन ही से नाश करो। जैसे लोहा तपाकर लोहे को काटता है तैसे ही मन ही को शुद्ध करो। हे रामजी! वृक्ष, बेलि, फल, फूल, पशु, पक्षी, देवता, यज्ञ, नाग जो कुछ स्था वर-जंगम पदार्थ हैं वे प्रथम कर्मों के बिना उत्पन्न हुए हैं और पीछे जब स्वरूप से गिरते हैं और घन पद को प्राप्त होते हैं तब कर्मों से शरीर होते हैं। कर्मों का बीज अहंकार है और अहंकार में शरीर है। जैसे बीज से वृक्ष होता है और समय पाकर फूल, फल प्रकट होते हैं, तैसे ही अहंकार से शरीर प्रकट होते हैं और जब अहंकार नष्ट हुआ तब कोई शरीर नहीं-केवल आत्मपद है। अहंकार है नहीं और प्रत्यक्ष दिखाई देता है और आत्मपद अच्युत है पर गिरे की नाईं भासता है, निरावलम्ब है और अवलम्ब की नाईं दृष्टि आता है, निराकार है पर आकार सहित भासता है, निराभास है और आभाससहित दिखाई देता है। इससे केवल चिन्मात्र आत्मा में स्थित हो। यह सब चिन्मात्र ही रूप है। हे रामजी! जब ऐसी भावना होती है तब चित् अचित्त हो जाता है और जब चित् अचित् हुआ तब जगत्कलना मिट जाती है केवल आत्मतत्व ही भासता है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे कर्मविचारो नाम चतुरधिकशततमस्सर्गः ||104||

अनुक्रम

तुरीयापद विचार

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस जीव के तीन स्वरूप हैं-एक स्वरूप तो शुद्धात्मा चिदा नन्द ब्रह्म है जिससे सब प्रकाशते हैं, दूसरा अन्तवाहक पुण्यनाम है जो आत्मा के प्रमाद से हुआ है । जो मात्र पद से उत्थान हुआ है तो भी प्रमादी नहीं, क्योंकि आत्मा का स्मरण रहा है । और जब आत्मपद को भूला तब तीसरा आधिभौतिक हुआ और पञ्चतत्वों को अपना आप जानने लगा है । हे रामजी! ये तीन स्वरूप जीव के हैं । आत्मा के प्रमाद से जीवसंज्ञा पाता है और दुःखी और परतन्त्र होता है । इससे पञ्चभौतिक और अन्तवाहक को त्यागकर वास्तव- -स्वरूप में स्थित हो । हे रामजी! ये जो स्थूल और सूक्ष्म शरीर हैं सो विचार से नष्ट हो जाते हैं पर तीसरा जो स्वरूप है वह सत्य है । तू उसी में स्थित हो । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ये तीन रूप जो तुमने जीव के कहे उनके मध्य में नाशरूप कौन है और सत्‌रूप कौन हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! हाथ पाँव संयुक्त जो देह है और भोग से मिली हुई है और यह जीव अपने ही संकल्प से सदा फैलाव रचता है । चित्तरूपी देह इस फुरनेरूप से अन्तवाहक है वह सदा प्राणवायु के रथ पर स्थित रहता है-देह हो चाहे न हो हे रामजी! ये दोनों शरीर उपजते और नष्ट भी होते हैं और आदिअन्त से रहित चिन्मात्र जो निर्विकल्प है उसे जीव का परमरूप जानो जो तुरीयापद है उसी से जाग्रदादिक उपजे हैं और उसी में लीन होते हैं । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! मैं तीन को जानता हूँ-एक जाग्रत है जो निद्रा से रहित है और जिसमें इन्द्रियाँ और चार अन्तःकरण अपने-अपने विषयको ग्रहण करते हैं, दूसरा स्वप्न है वहाँ भी इन्द्रियाँ विषय की जाग्रत् की नाईं संकल्प से ग्रहण करती हैं और तीसरे में इन्द्रियाँ अपने विषय से रहित होती हैं और जड़ता आती है, तब कुछ नहीं भासता शिला की नाईं जड़ता तमोगुण आत्मक है- सो सुषुप्ति है । इन तीनों को तो मैं जानता हूँ पर तुरीया और तुरीयातीत को कृपा करके कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अपना होना और न होना दोनों को त्यागकर पीछे केवल तुरीयापद रहता है सो शान्त और निर्मलपद है । हे रामजी! तुरीया जाग्रत नहीं क्योंकि जाग्रत संकल्प जाल है और उससे मनरूप इन्द्रियों में रागद्वेष होता है । तुरीया स्वप्न अवस्था भी नहीं क्योंकि स्वप्न भ्रमरूप होता है- जैसे रस्सी में सर्प भासता है सो और का और होता है और तुरीया सुषुप्ति भी नहीं, क्योंकि उसमें अत्यन्त जड़ता है तुरिया चेतनरूप, उदासीन और शुद्ध है और जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति से रहित हैं । जीवन्मुक्त तुरीयापद में स्थित रहता है । हे रामजी! जो तुरीयापद में स्थित है वह जगत् में स्थित हुआ भी शान्त है और अज्ञानी को जगत् वज्रसारवत् दृढ़ है । ज्ञानी सदा शान्तरूप है, क्योंकि वह तीनों अवस्थाओं का साक्षी है, उसको न उनमें राग है न द्वेष है उदासीन की नाई है तुरीयातीतपद को वाणी की गम नहीं । जीवन्मुक्त पुरुष जब विदेहमुक्त होता है तब इसी पद को प्राप्त होता है जहाँ वाणी की भी गम नहीं । जबतक जीवन्मुक्त है तबतक तुरीयापद में स्थित रह राग द्वेष से रहित होता है और इन्द्रियाँ भी अपने विषय में राग द्वेष से रहित होकर स्वाभाविक बर्तती हैं । जिस पुरुष को राग द्वेष उत्पन्न होता है वह तुरीयापद को नहीं प्राप्त हुआ और चित्त सहित है और जिस पुरुष को राग द्वेष नहीं उत्पन्न होता उसका चित्त सत्‌पद को प्राप्त हुआ है । जिसका सत्‌पद को प्राप्त हुआ उसको संसार की सत्यता नहीं भासती, वह स्वप्नवत् जगत् को देखता है । इससे तू भी सत्‌पद में स्थित होकर साक्षीरूप हो रह ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे तुरीयापदविचारो नाम पञ्चाधिकशततमस्सर्गः ।।105।।

अनुक्रम

काष्ठमौनवृत्तान्त वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! कर्ता, कारण और कर्म ये तीनों हों पर तू इनका साक्षी हो इनका कर्तृत्व अभिमान तुझे न हो कि मैं यह करता हूँ अथवा त्याग किया है, उदासीन की नाईं हो रहे । इसी पर एक आख्यान कहता हूँ उसे सुनो । तुम प्रबुद्ध हो तो भी दृढ़ बोध के निमित्त सुनो! हे रामजी! एक वन में काष्ठमौन-नामक एक मुनि रहता था एक दिन एक बधिक किसी मृग पर बाण चलाता हुआ उसके पीछे दौड़ता जाता था वह आगे गया तो मृग बधिक की दृष्टि से अगोचर हो गया । बधिक ने देखा कि एक तपस्वी बैठा है, उससे पूछा, हे मुनीश्वर! यह एक मृग आया था सो किस ओर को गया तुमने देखा हो तो मुझसे कहो काष्ठमौन बोले, हे बधिक! हमको कुछ सुधि नहीं, क्योंकि हम निरहंकार है, हमारे साथ चित्त और अहंकार दोनों नहीं । जो तुम कहो कि इन्द्रियों की चेष्टा कैसे होती है तो सूर्य के आश्रय लोगों की चेष्टा होती है और दीपक के आश्रय चेष्टा होती है और सूर्य दीपक साक्षी हैं तैसे ही हम इन्द्रियों के साक्षी हैं और इनकी चेष्टा स्वाभाविक होती है । हमको इनसे कुछ प्रयोजन नहीं । हे बधिक! अहंकार करनेवाला अहंकार है जैसे माला के भिन्न भिन्न दाने तागे के आश्रय होते हैं और सबमें एक तागा होता है तब माला होती है पर जब तागा टूट पड़ता है तब दाने भिन्न भिन्न हो जाते हैं, तैसे ही इन्द्रियाँरूपी दाने हैं और अहंकाररूपी तागा है, उस अहंकाररूपी तागे के टूटने से इन्द्रियाँ भिन्न भिन्न हो जाती हैं जैसे राजा के नाश हुए सेना और गोपाल के नष्ट हुए गौवें भिन्न भिन्न हो जाती है और पिता के नष्ट हुए बालक व्याकुल होते हैं तैसे ही अहंकार बिना इन्द्रियाँ व्याकुल होती हैं । उनका अभिमान मुझमें कुछ नहीं । इनका अभिमानी अहंकार था सो मेरा नष्ट हो गया है । इन्द्रियाँ अपने अपने विषय में बिचरती हैं मुझको इनका न राग है और न द्वेष है । हे साधो! मुझे न जाग्रत है और न स्वप्न, न सुषुप्ति भासती है, इन तीनों से रहित हम तुरीयापद में स्थित हैं और हमारा अहं त्वं मिट गया है । हम नहीं जानते कि मृग बायें गया या दाहिने, क्योंकि नेत्र इन्द्रियाँ देखनेवाली हैं उनको बोलने की शक्ति नहीं । ये अपने अपने विषय को ग्रहण करती हैं, एक इन्द्रिय को दूसरे की शक्ति नहीं फिर तुझसे कौन कहे? इन सबका धारनेवाला अहंकार था जो सबको अपना आप जानता था । जैसे शरत्‌काल में मेघ नष्ट होते हैं तैसे ही अहंकार के नष्ट होने से हम स्वच्छ, निर्मलशान्त तुरीयापद में स्थित हैं । इन्द्रियों का बीज अहंकार मृतक हो गया है और इन्द्रियाँ भी मृतक हो गई हैं देखनेमात्र दृष्टि आती हैं । जैसे भीत पर पुतलियाँ लिखी हों पर उनसे कार्य कुछ न हो तैसे ही हमारी इन्द्रियों से कुछ कार्य नहीं होता तो तुझसे कौन कहे । वशिष्ठजी बोले हे रामचन्द्र! जब इस प्रकार मुनीश्वर ने कहा तब बधिक समझकर उठ गया । हे रामजी! तुरीयापद शान्तरूप है जहाँ जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों का अभाव है वह केवल अद्वैतपद है । ये जो ब्रह्म, आत्मा चिदानन्द आदि संज्ञा हैं तो तुरीयापद में हैं और तुरीयातीतपद में शब्द की गम नहीं वह अशब्दपद है । विदेहमुक्त पुरुष उसी पद को प्राप्त होते हैं और जीवन्मुक्त साक्षात् करके तुरीयाव स्था में बिचरते हैं, जहाँ जाग्रत जो दीर्घ दुःख सुख का भान है सो नहीं और स्वप्न जो राग द्वेष के लिये अल्पकाल है सो भी नहीं और जड़ता तामस अवस्था भी नहीं इन तीनों से रहित तुरीयापद है और शान्त है उसमें कोई क्षोभ नहीं । यह जगत् उसका आभास है । जैसे समुद्र में तरंग वास्तव में कुछ नहीं-जल ही है, तैसे ही केवल तुरीया स्वरूप सत्तासमान तेरा स्वरूप है उसमें स्थित हो उसमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र सिद्ध, ज्ञानी इत्यादिक स्थित हैं और काष्ठ मौन बधिक का उपदेश करनेवाला भी तुरीयापद में स्थित है । उसकी विशेषकलना जो भिन्न भिन्न नामरूप को देखनेवाली थी

निवृत्त हुई थीं, केवल सत्तासमान में स्थित था । इससे कलना को त्यागकर तुम भी तुरीयापद में स्थित हो रहो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे काष्ठमौनवृत्तान्तवर्णनं नाम षडधिकशततमस्सर्गः ||106||

अनुक्रम

अविद्यानाशरूप वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह विश्व केवल आकाशरूप है पर आत्मा से भिन्न नहीं, आत्मा का ही चमत्कार है । जैसे मेघ में बिजली का चमत्कार होता है तैसे यह विश्वरूप चित्त कला आत्मा का चमत्कार है । हे रामजी! वास्तव में ब्रह्म ही है कुछ भिन्न नहीं । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह विश्व आपने ब्रह्मरूप कहा कि मेघ में बिजली की नाईं क्षण में उपजता और क्षण में लीन होता है, पर मेघ में बिजली दृष्टि आती है । जहाँ मेघ होता है वहाँ बिजली भी होती है इससे मेघ से बिजली उत्पन्न हुई तो उसका कारण मेघ है । हे मुनीश्वर! इस चित्तस्पन्द कला के कारण की उत्पत्ति ब्रह्म से कैसे हुई है सो कृपा करके मुझसे समझाकर कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह जो वितण्डक होकर तुम तर्क करते हो सो कुछ नहीं-इस नाशबुद्धि को त्यागो । यह तो बालक भी जानते हैं कि बिजली क्षणभंगुररूप है सत्य नहीं । तुम्हारा और क्या प्रयोजन है सो कहो । यह तर्क कारण कार्यरूप का कैसा करते हो? रामजी बोले, हे भगवन्! यह स्पन्दकला सत्य है वा असत्य है । इसका कारण कौन है जिससे वह फुरती है । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सर्व प्रकार से सर्वात्मा ही स्थित है । चित्त और चित्तस्पन्द यह भेदकल्पना वास्तव में कुछ नहीं , ब्रह्म ही अपने स्वरूप में आप स्थित है और सब भ्रम से भासते हैं । जैसे भ्रमदृष्टि से आकाश में मोती भासते हैं और नेत्र मूँदकर खोलो तो तरुवरे भासते हैं, तैसे ही यह जगत् भ्रम से भासता है । हे रामजी! हम इस संसार समुद्र के पार हुए हैं । हम सरीखे ज्ञानवानों के यथार्थ वचन सुनकर हृदय में धारो तो शीघ्र ही आत्मपद की प्राप्ति हो और जो मूर्खता करके मेरे वचनों को न धारोगे तो तुम्हारे दुःख नष्ट न होंगे और वृक्ष तृण, बेल आदिक योनि पावोगे । हे रामजी! आकाश और काल आदिक पदार्थ सर्वकलना से सिद्ध हुए हैं-आत्मा में कोई नहीं । हे रामजी! वायु से रहित जो समुद्र का चमत्कार है उसका कारण कौन है? दीपक में जो प्रकाश और अग्नि में उष्णता है तो उस प्रकाश और उष्णता का कारण कौन है? वायु के निस्पन्द और स्पन्द का कारण कौन है? जैसे इनका कारण कोई नहीं, वायु का रूप स्पन्द निस्पन्द है, अग्नि का रूप उष्णता है और दीपक का रूप प्रकाश है तैसे ही कलना भी आत्मस्वरूप है-कुछ भिन्न नहीं । हे रामजी! यह कलना जो तुझको भासती है उसको त्याग करो । जब अपने आपको देखोगे तब संशय मिट जावेंगे । जैसे जब प्रलयकाल का जल चढ़ता है तब सर्व जलमय हो जाता है-कुछ भिन्न नहीं होता, तैसे ही अपने स्वरूप को जब तुम देखोगे तब तुमको सब आत्मा ही भासेगा-आत्मा से भिन्न कुछ न दृष्ट आवेगा । हे रामजी! आत्मा एक रस है, सम्यक्ःदर्शन से ज्यों का त्यों भासेगा और असम्यक् दर्शन से और का और भासेगा । जैसे रस्सी को यथार्थ न देखिये तो सर्पभ्रम होता है और भयवान् होता है और जब ज्यों की त्यों रस्सी जानी तब सर्पभ्रम निवृत्त हो जाता है तैसे ही आत्मा के न जाने से जीव संसारी होता है, भयभीत होता है, आपको जन्मता मरता मानता है और सर्वविकार देह के आत्मा में जानता है पर आत्मा को जानता है तब सब भ्रम निवृत्त हो जाते हैं । जैसे नेत्रों से तारे दीखते हैं और जब नेत्र मूँद लो तो उनका आकार अन्तःकरण में भासता है, क्योंकि उनकी सत्यता हृदय में होती है-पर जब हृदय से उनकी सत्यता उठ जाती है तब फिर नहीं भासते, तैसे ही चित्त के भ्रम से संसार हुआ है उसको मिथ्या जानो । हे रामजी! फुरने में जो दृढ़भावना हुई है जो ही सत्य होकर मिथ्या संसार हुआ है, जब चित्त का त्याग करोगे तब संसार की सत्यता जाती रहेगी । रामजी बोले हे भगवन् आपने जो कहा कि यह विश्व कल्पनामात्र है सो मैंने जाना कि इसी प्रकार-कुछ सत्य नहीं जैसे राजा लवण, इन्द्र ब्राह्मण के पुत्र और शुक्र की कलना जब

फुरने से दृढ़ हुई तब उन्हें फुरनरूप विश्व सत्य होकर स्थित हुआ और भासने लगा । हे भगवन्! यह मैं जानता हूँ कि विश्व फुरनेमात्र है पर जब फुरना मिट जाता है तो उसके पीछे जो शान्ति रूप शेष रहता है सो कहो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अब तुम सम्यक् बोधवान् हुए हो और जो जानने योग्य है वह तुमने जाना है । हे रामजी! अध्यात्म शास्त्र का यह सिद्धान्त है कि और सब दृश्य असंभव है एक चिद्घन ब्रह्म अपने आपमें स्थित है । हे रामजी! आत्मा शुद्ध, निर्मल और विद्या, अविद्या से रहित हैं और संसार का उसमें अत्यन्त अभाव है जो कुछ शब्द आदिक संज्ञा हैं वे भी फुरने में हैं आत्मा तो निर्वाच्यपद है उसकी समझा इतनी शास्त्रकारों ने कही हैं । शून्यवादी तो उसी को शून्य कहते हैं, विज्ञानवादी विज्ञानरूप कहते हैं, उपासनेवाले उसी को ईश्वर कहते हैं, कोई कहते हैं आत्मा सर्व का कारण है वही शेष रहता है, कोई आत्मा को सर्व शक्त कहते हैं कोई कहते हैं कि आत्मा निःशक्त है और कोई साक्षी आत्मा और शक्ति को भिन्न मानते हैं । हे रामजी! जितने वाद हैं सो सर्व ही कलना से हुए हैं और कलना को मानकर सब वाद उठाते है, वास्तव में कोई वाद नहीं आत्मा निर्वाच्यपद है । मेरा जो सिद्धान्त है वह भी सुनो । आत्मा सर्वकलना से अतीत है । जैसे पवन स्पन्द शक्ति से फुरता है और निस्पन्द से ठहर जाता है, क्योंकि स्पन्द भी पवन है और निस्पन्द भी पवन है इतर कुछ नहीं, तैसे ही आत्मा शुद्ध अद्वैतरूप है और कलना भी आत्मा के आश्रय फुरती है आत्मा से भिन्न नहीं । और जो भिन्न प्रतीत होती है उसको मिथ्या जानकर और अपने निर्विकार स्वरूप में स्थित रहो । जब तुम आत्मस्वरूप में स्थित होगे तब जितने शास्त्रों के भिन्न भिन्न मतवाद हैं सो कोई न रहेंगे केवल अपना आप स्वच्छ आत्मा ही भासेगा । हे रामजी! उस निर्विकल्पपद को पाकर तुम शान्तिमान् हुए हो और असत् की नाईं स्थित हुए हो, क्योंकि द्वैतकलना नहीं फुरती । हे रामजी! आत्मा, ब्रह्मआदिक शब्द भी उपदेश निमित्त कहे हैं पर आत्मा शब्द से अतीत हैं और सर्व जगत् आत्मस्वरूप है और संसाररूप विकार आत्मा में असम्यक् दर्शन से भासते हैं जैसे शून्य आकाश में तरुवरे मोतीवत् भासते हैं सो अविदित हैं तैसे ही आत्मा में जगत् द्वैत अविदित भासता है । इससे जगत् द्वैत की वासना त्यागकर निर्विकल्प आत्मस्वरूप में स्थित रहो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणे अविद्यानाशरूपवर्णनंनाम सप्ताधिकशततमस्सर्गः ||107||

अनुक्रम

जीवत्वाभाव प्रतिपादन

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! देह, इन्द्रियाँ और कलना में सार वस्तु क्या है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो कुछ यह अहं त्वं आदि जगत् दृश्य है सो सब चिन्मात्र है । जैसे समुद्र जल ही मात्र है तैसे ही जगत् है । मनसहित षट् इन्द्रियों से जो कुछ दृश्य भासता है सो भ्रममात्र है । हे रामजी! देह, इन्द्रियाँ आदि सब मिथ्या हैं, आत्मा में कोई नहीं चित्त के कल्पे हुए हैं और चित्त ही इनको देखता है । जैसे मरुस्थल में मृग को जलबुद्धि होती है तो जल के निमित्त दौड़कर दुःख पाता है, तैसे ही चित्तरूपी मृग आत्मरूपी मरुस्थल में देह इन्द्रियाँ विषयरूपी जल कल्पकर दौड़ता है और दुःख पाता है सो देह इन्द्रियाँ भ्रम करके भासते हैं । जैसे मूर्ख बालक परछाहीं में वैताल कल्पता है तैसे ही मूर्ख चित्त ने देह इन्द्रियादिक कल्पना की हैं । हे रामजी! आत्मा शुद्ध निर्विकार है उसमें चित्त ने भ्रम से विकार आरोपण किये हैं । जैसे भ्रान्ति दृष्टि से आकाश में दो चन्द्रमा भासते हैं , तैसे ही चित्त ने देह इन्द्रियाँ कल्पी हैं पर चित्त भी कुछ सत्य नहीं, आत्मा की सत्ता लेकर चेष्टा करता है । जैसे चुम्बक की सत्ता लेकर लोहा चेष्टा करता है तैसे ही निर्विकार आत्मा की सत्ता लेकर चित्त नाना प्रकारके विकार कल्पता है । इससे चित्त का त्याग करो जिससे तुम्हारा विकारजाल मिट जावे । हे रामजी देह इन्द्रियों में सार क्या है सो सुनो । कुछ संसार है उसका सार देह है, क्योंकि सब देह के सम्बन्धी है । जब देह मिट जाता है तब सम्बन्धी भी नहीं रहते । देह का सार इन्द्रियाँ हैं, इन्द्रियों का सार प्राण हैं, प्राणों का सार मन है और मन का सार वृद्धि है । बुद्धि का सार अहंकार है, अहंकार का सार जीव है, जीव का सार चिदावली है-चिदावली वासना संयुक्त चेतना को कहते हैं-और चिदावली का सार चित्त से रहित शुद्ध चैतन्य है जिसमें सर्व विकल्प की लय है और जो शुद्ध निर्मल और चिन्मात्र ब्रह्म आत्मा है उसमें कोई उत्थान नहीं । हे रामजी! चिदावली पर्यन्त सबको त्यागकर इनका जो सार चैतन्य आत्मा है उसमें स्थित हो । विश्व कलना-मात्र है, आत्मा में कुछ नहीं, संकल्प की दृढ़ता से सत् की नाईं भासता है । पहिले भी शुक्र और लवण राजा और इन्द्र के पुत्रों का वृत्तान्त कहा है कि संकल्प से उन्हें जगत् दृढ़ होकर भासि आया था सो वास्तव में कुछ नहीं था, तैसे ही यह विश्व भी चित्त के फुरने में स्थित हैं । असम्यक्दृष्टि से अद्वैत आत्मा में दृश्य भासता है । जैसे सूर्य की किरणों में जल भासता है तैसे ही आत्मा में अहंकार आदिक अज्ञान से दृश्य भासते हैं । इससे इनको त्यागकर अपने वास्तव स्वरूप में स्थित हो । हे रामजी! एक गढ़ तुमसे कहता हूँ जिसमें किसी शत्रु की गम नहीं उसमें स्थित हो । हम भी उसी गढ़ में स्थित हैं और जितने ज्ञानवान् हैं वे भी उसी में स्थित होते हैं । हे रामजी! काम, क्रोध, लोभ, अभिमानादिक विकार आत्मा में पाये जाते हैं । जैसे रात्रि में दिन नहीं होता, तैसे ही विकार रूपी दिन गढ़ रूपी रात्रि में नहीं पाया जाता इससे अचिन्त्यरूप गढ़ में जहाँ कोई फुरना नहीं और जो केवल शान्तरूप है उसमें अहंभाव त्यागकर स्थित हो तो अहं त्वं भाव निवृत्त हो जावे । जब स्वरूप का साक्षात्कार होता है तब ज्ञानी फुरने अफुरने में स्वरूप को तुल्य देखता है और सम्पूर्ण जगत् उसको आत्मरूप भासता है । इससे चिदावली से आदि देह पर्यन्त जो अनात्म है उसको क्रम करके त्यागो । प्रथम देह को त्यागो , फिर इन्द्रियों के अभिमान को त्यागो, इसी क्रम से सबको त्याग के अपने वास्तवस्वरूप में स्थित हो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जीवत्वाभावप्रतिपादनं नामाष्टाधिकशततमस्सर्गः ||108||

अनुक्रम

सारप्रबोधन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह संसार चेतनमात्र है । आत्मा से कुछ भिन्न नहीं, आत्मा ही विश्वरूप होकर स्थित हुआ है । जैसे सूर्यकी किरणें ही जलाभास होती हैं तैसे ही आत्मा का चमत्कार दृश्यरूप होकर स्थित हुआ है । जैसे संकल्प और संकल्प-कर्त्ता भिन्न नहीं और आकाश ही भ्रम से मोती की माला होकर भासता है, तैसे ही आत्मा ही दृश्यरूप होकर भासता है । जैसे बीज ही वृक्ष फूल और फल होता है तैसे ही विश्व आत्मा ही है और दृश्यरूप होकर स्थित हुआ है । जैसे जल के तरंग जल ही हैं तैसे ही विश्व आत्मा ही है । हे रामझी! चिदावली भी जीव, अहंकार, बुद्धि, प्राण, इन्द्रियाँ, देह, विश्व, आकाश, काल, दिशा, पदार्थ, सब आत्मा से कुछ भिन्न नहीं । इससे विश्व को अपना स्वरूप जानो । जैसे सूर्य का प्रकाश सूर्य ही है तैसे ही तुम जानो कि सर्व मैं ही हूँ । जो ऐसे न जान सको तो ऐसे जानो कि देह भी जड़ है और इन्द्रियों से पालित है, सो मैं नहीं । इन्द्रियाँ भी नहीं, क्योंकि प्राण इन्द्रियों का सार है जो प्राण न हो तो इन्द्रियाँ किसी काम की नहीं । प्राण भी नहीं , क्योंकि प्राण का सार मन है जो मन मूर्छित होता है और प्राण आते जाते भी हैं तो भी किसी काम के नहीं मन भी मैं नहीं क्योंकि मन के प्रेरनेवाली बुद्धि है, जो निश्चय बुद्धि करती है मन भी वहीं जाता है । बुद्धि भी मैं नहीं, क्योंकि बुद्धि का प्रेरक अहंकार है और अहं कार भी मैं नहीं, क्योंकि अहंकार का सार जीव है, जीव बिना अहंकार किसी काम का नहीं । जीव मैं नहीं, क्योंकि जीव का सार चिदावली है । चिदावली शुद्ध चिद्गं चैतन्योन्मुख होने को कहते हैं । जीवसंज्ञा से प्रथम ईश्वर भाव चिदावली भी मैं नहीं, क्योंकि चिदावली का सार चिन्मात्र है सो अद्‌वितीय निर्विकल्प स्वरूप है । ये सब अनात्मभ्रम से सिद्ध हुए हैं, मैं केवल शान्तरूप आत्मा हूँ । हे रामजी! जो तुम्हारा वास्तवरूप है वही हो रहो उससे भिन्न अनात्म में अहं प्रतीत को त्याग दो, तुम देह से रहित निर्विकार हो तुममें जन्म मरणादिक कोई विकार नहीं और शान्तरूप ज्यों के त्यों स्थित हो । तुम कदाचित् स्वरूप से और नहीं हुए-उसी स्वरूप में स्थित रहो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सारप्रबोधनं नाम नवाधिशततमस्सर्गः ।।109।।

अनुक्रम

ब्रह्मैकत्व प्रति

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! आत्मा चिन्मात्र से बढ़के और सार कुछ नहीं उसी में स्थित रहो जिससे सब ताप मिटि जावें । हे रामजी! सर्व आत्मा ही स्थित है । जैसे बीज ही फल फूल होकर स्थित होता है तैसे ही सर्व आत्मा ही स्थित है तो निषेध और त्याग किसका करिये ।इतना कह वाल्मीकिजी बोले, हे शिष्य! ऐसे वशिष्ठजी के वचन सुनकेरामजी प्रसन्न हुए और जैसे कमल सूर्य को देखकर खिल आता है तैसे ही रामजी की बुद्धि वशिष्ठजी के वचनरूपी सूर्य से खिल आई । तब बोले, हे भगवन् सर्वधर्मज्ञ! आपकी कृपा से अब मैं जगा । बड़ा आश्चर्य है कि मैंने इतने काल दुःख पाया । अहंता और ममतारूपी बड़ा बोझा जो सिर पर था उससे मैं दुःखी था । जैसे किसी के सिर पर पत्थर की शिला हो और ज्येष्ठ आषाढ़ की धूप में वह पैदल चले तो दुःख पाता है और जो उसके सिर से कोई उस शिला को उतार ले और छाया में बैठावे तो बड़े सुख को प्राप्त होता है, तैसे ही अज्ञानरूपी धूप में अहंताममतारूपी शिला से मैं दुःखी था और आपने वचनरूपी बल से उस शिला को उतार लिया और आत्मारूपी वृक्ष की छाया में विश्राम कराया । हे भगवन्! अब मुझे शान्तिपद प्राप्त हुआ है और मेरे तीनों ताप मिट गये हैं । अब जो सुमेरु पर्वत का भार भी आन प्राप्त हो तो भी मुझे कोई कष्ट नहीं । अब मेरे सर्व संशय निवृत्त हुये हैं । जैसे शरत्‌काल का आकाश निर्मल और स्वच्छरूप होता है, तैसे रागद्वेषरूपी द्वन्द्व मेरा नष्ट हुआ है । अब मैं अपने स्वभाव में स्थित हुआ हूँ परन्तु एक प्रश्न है कृपा करके उसका उत्तर कहिये । महापुरुष बारम्बार प्रश्न करने से खेद नहीं मानते। हे भगवन्! आप कहते हैं कि सर्वब्रह्म ही है तो शास्त्र का विधि निषेध और उपदेश किसके लिये कहते हैं कि यह कर्म कर्तव्य है और यह कर्म कर्तव्य नहीं । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी आत्मा से कुछ भिन्न नहीं । विश्व भी उसका चमत्कार है । जैसे समुद्र में पवन से नाना प्रकार के तरंग फुरते हैं पर जल से कुछ भिन्न नहीं, तैसे ही चैतन्य आत्मा में चैतन्योन्मुखत्व अहंभाव को लेकर फुरा है उससे देश, काल, वस्तु बन गये हैं और शास्त्र फुरे हैं फिर फुरने से दो रूप हुए हैं एक विद्या और दूसरा अविद्या । उसमें विद्यारूप जो जीव हुए हैं वे ईश्वर कहाते है और अविद्यारूप जीव हैं । जिनको अपने स्वरूप में अहं प्रत्यय वास्तव की रही है सो इश्वर है और जिनको स्वरूप का प्रमाद हुआ और संकल्प विकल्प में बहते हैं वे जीव दुःखी हैं । हे रामजी! इतनी संज्ञा फुरने में हुई है तो भी आत्मा से कुछ भिन्न नहीं । जैसे एक ही रस फूल, फल और वृक्ष हुआ है रस से कुछ भिन्न नहीं । आत्मा रस की नाईं भी परिणाम को नहीं प्राप्त हुआ, फुरने से ईश्वर जीव विद्या अविद्या हुए हैं–आत्मा में कुछ नहीं । हे रामजी! जिनका संकल्प आधिभौतिक में दृढ़ नहीं हुआ वे जीव शीघ्र ही आत्मपद को प्राप्त होते हैं और उनको आत्मा का साक्षात्कार शीघ्र ही होता है । जिनका संस्कार आधिभौतिक में दृढ़ हुआ है वे चिरकाल में आत्मपद को प्राप्त होते हैं । आत्मपद की प्राप्ति बिना वे दुःख पाते हैं और जिनको आत्मपद की प्राप्ति होती है वे सुखी होते हैं । हे रामजी! ज्ञानी और अज्ञानी के स्वरूप में और कुछ भेद नहीं केवल सम्यक् और असम्यक् दर्शन का भेद है । हे रामजी! विद्या भी दो प्रकार की है–एक ईश्वरवाद और दूसरा अनीश्वरवाद है । जो ईश्वरवादी हैं वे तुरीयापद को प्राप्त होते हैं और जो अनीश्वरवादी हैं उनको जब ईश्वर की भावना होती है तब वे शास्त्र और गुरुद्वारा ईश्वर को प्राप्त होते हैं ईश्वरवादी भी दो प्रकार के हैं–एक वे जो और वासना त्यागकर ईश्वरपरायण होते हैं– वे शीघ्र ही ईश्वर को प्राप्त होते हैं । आत्मा ही ईश्वर है जो सबका अपना आप है । दूसरे ईश्वर को मानते हैं पर उनकी वासना संसार की ओर होती है वे चिरकाल में आत्मपद को प्राप्त होते हैं ।

अनीश्वरवादी दो प्रकार के हैं-एक कहते हैं कि कुछ होगा उनको होते होते की भावना से शास्त्र और गुरु के द्वारा आत्मपद की प्राप्ति होगी । दूसरे कहते हैं कि कुछ नहीं, उनको चिरकाल में जब आस्तिक भावना होगी तब आत्मपद को प्राप्त होंगे । हे रामजी! उनके निमित्त विधि और निषेध कहे हैं कि शुभकर्म को अंगीकार करो और अशुभकर्म त्यागो तो उससे जब अन्तःकरण शुद्ध होगा तब आत्मपद की प्राप्ति होगी । जो विधि निषेध शास्त्र न कहे तो बड़ा छोटे को भोजन कर लेवे इस निमित्त शास्त्र का दण्ड है । हे रामजी! स्वरूप में किसी को उपदेश नहीं उम्र में उपदेश है । जिस पुरुष का भ्रम निवृत्त हुआ है वह मोह में नहीं डूबता-जैसे जल में डूबा नहीं डूबता । और जिसका चित्त वासना से घेरा हुआ संसरता है उसका इस संसार से निकलना कठिन है । जैसे उजाड़ के कुयें में गिर के निकलना कठिन होता है तैसे ही चित्त से मिलकर संसार से निकलना कठिन होता है । हे रामजी! इस चित्त को स्थिर करो कि तुम्हारे दुःख मिट जावें और सत्तासमान पद को प्राप्त हो । हे रामजी! जिसको आत्मा का साक्षात्कार हुआ है और अनात्म में अहं प्रत्यय निवृत्त हुआ है वह पुरुष जो कुछ करता है उसमें बन्धायमान नहीं होता वह सदा अकर्ता आपको देखता है और जिसको अहंप्रत्यय अनात्म में है वह पुरुष करे तो भी कर्ता है और जो न करे तो भी कर्ता है । हे रामजी! जो अज्ञानी शुभकर्म करता है तो शुभकर्म करता हुआ स्वर्ग को प्राप्त होता है और अशुभ कर्म करने से नरक को प्राप्त होता है । जो शुभकर्म को त्यागता है तो भी नरक को प्राप्त होता है, क्योंकि अनात्म में आत्म अभिमान है । इससे बुद्धि को निग्रह करो और इन्द्रियों से चेष्टा करो । देखने, सुनने, सूँघने को मैं तुम्हें नहीं बर्जता, यही कहता हूँ कि अनात्म में अभिमान को त्यागो । जब अनात्म अभिमान को त्यागोगे तब शान्तपद को प्राप्त होगे- और जहाँ तुम्हारा चित्त फुरेगा वहाँ आत्मा ही भासेगा-आत्मा से भिन्न कुछ न भासेगा । इससे चित्त को त्यागो-चित्त अहंभाव का नाम है-और आत्मपद में स्थित हो । जैसे विश्व की उत्पत्ति हुई है सो भी सुनो । शुद्धचैतन्यमात्र में चिदावलीरूप अहंतरंग फुरा है उस चिदावलीरूपी समुद्र में जीवरूपी तरंग उपजता है और जीवरूपी समुद्र में अहंकाररूपी तरंग भासित हुआ है । अहंकाररूपी समुद्र में बुद्धिरूपी तरंग उपजा है, बुद्धिरूपी समुद्र में चित्तरूपी तरंग भासी है और चित्तरूपी समुद्र में संकल्परूपी समुद्र में जगत्ृरूपी तरंग उपजा है और जगत्ृरूपी समुद्र में देहरूपी तरंग भासित हुआ है और उसके संयोग से दृश्य का ज्ञान हुआ है कि यह पदार्थ है, यह नहीं है, ये ऐसे हैं, उसी से देश, काल, दिशा सब हुए हैं । हे रामजी! निदान वे सब संकल्प से हो गये हैं सो आत्मा से भिन्नकुछ नहीं । केवल शान्तरूप एकरस आत्मा है उसमें नाना प्रकार के आचार रचे हैं जैसे स्वप्न की सृष्टि नाना प्रकार हो भासती है सो अपना ही अनुभव होता है तैसे ही इस जगत् को भी जानो, आत्मा सर्वदा एकरस, अद्वैत, शुद्ध, परम निर्वाण, अपने आपमें स्थित है और फुरने से नाना प्रकार की कल्पना उदय हुई है । हे रामजी! शुद्ध आत्मा में चिदेव संज्ञा भी संकल्प से हुई है-"चिदेवपञ्चभृतानि, चिदेव भुवनत्रयम" आत्मा निर्वाच्यपद है उसमें वानी का गम नहीं और शुद्ध शान्तरूप है । चिदेव जो फुरी है उस फुरने से संसार हुए की नाईं स्थित है । जैसे एक ही बीज ने वृक्ष, फूल, फल आदिक संज्ञा पाई है सो बीज से भिन्न कुछ नहीं और आत्मा बीज की नाईं भी नहीं संकल्प से ही नानासंज्ञा हुई और जगत् स्थित हुआ है तो भी आत्मा से कुछ भिन्न नहीं । जैसे वायु चलती है तो वायु है और ठहरती है तो भी वायु है, तैसे ही आत्मा में नानात्व कुछ नहीं केवल शुद्ध अद्वैत है । आत्मारूपी समुद्र में नाना प्रकार विश्वरूपी तरंग स्थित हैं । हे रामजी! आकार भी आत्मा से कुछ भिन्न नहीं, जो आत्मा से भिन्न भासे उसे मिथ्या जानो और मृगतृष्णा के जल की नाईं जानकर उसकी भावना त्यागो और स्वरूप की भावना करो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मैकत्वप्रति नाम दशाधिकशततमस्सर्गः ||110|

अनुक्रम

निर्वाण वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मेरे वचनों को धारो और हृदय में आस्तिक भावना करो । जब सर्वत्याग करोगे तब चित्त क्षीण हो जावेगा और जब चित्त क्षीण हुआ तब शान्ति होगी हे रामजी! काष्ठवत् मौन होकर हृदय में सबका त्याग करो । बाहर से कर्मों को करो पर अभिमान से रहित होकर अन्तर्मुख हो रहो । अन्तर्मुखी आत्मा में स्थित होने को कहते हैं । जब आत्मा में स्थित होगे तब विद्यमान दृश्य भी तुम्हे न भासेगा, क्योंकि तब सर्व आत्मा ही भासेगा । जो तुम्हारे पास भेरी के शब्द होंगे तो भी न सुन पड़ेंगे और जो सुगन्धि लोगे तो भी नहीं ली, निदान जो कुछ क्रिया करोगे सो तुम्हें स्पर्श न करेगी-आकाश की नाईं सबसे असंग रहोगे । हे रामजी! स्वरूप से भिन्न न देखना और आत्मा से भिन्न न फुरना, अन्धे गूँगे की नाईं और पत्थर की शिलावत् मौन हो रहो तब तुम्हारी चेष्टा यन्त्र की पुतलीवत् होगी । जैसे यन्त्र की पुतली तागे की सत्ता से चेष्टा करती है तैसे ही तुम्हारी नीति शक्ति से प्राणों की चेष्टा होगी । स्वाभाविक क्रिया में अभिमान से रहित होकर स्थित होना, जो अभिमान सहित चेष्टा करता है वह मूर्ख और असम्यक्‌दर्शी है और जो सम्यक्‌दर्शी है उसको अनात्म में अभिमान नहीं होता । हे रामजी! जिसको अनात्म अभिमान नहीं और जिसका चित्त दृश्य में लेपायमान नहीं होता वह सारी सृष्टि को संहार करे अथवा उत्पन्न करे उसको कुछ बन्धन नहीं होता, क्योंकि वह सब कर्म अभिलाषा से रहित करता है । हे रामजी! समाधि में स्थित हो और जाग्रत की नाईं सब कर्म करो । तुममें सब कर्म दृष्टि भी आवें तो भी उनमें सुषुप्त की नाईं कोई फुरना न करे । अपने स्वरूप की समाधि रहे । समाधि भी तब कहिये कि कोई दूसरा हो जो इसमें स्थित हो व इसका त्याग करे । हे रामजी! जहाँ एक शब्द और दो शब्द भी नहीं कह सकते वह अद्‌वितीयात्मा परमार्थसत्ता है, उसमें चित्त ने नाना प्रकार के विकार कल्पे हैं-ज्ञानी को एकरस भासता है । ज्ञानी को ज्ञानी जानता है । जैसे सर्प के खोज को सर्प ही जानता है, तैसे ही ज्ञानी को एकरस आत्मा ही भासता है सो ज्ञानी जानता हैं । मूर्खको संकल्प से नाना प्रकार का जगत् भासता है इससे संकल्प को त्यागकर अपने प्रकृत आचार में बिचरो । जैसे उन्मत्त और बालक की चेष्टा स्वाभाविक होती है कि अंग हिलते हैं, तैसे ही अभिमान से रहित होकर चेष्टा करो । जैसे पत्थर की शिला जड़ होती है तैसे ही दृश्य की भावना से ऐसे रहित हो कि जड़ की नाईं कुछ न फुरे । जब ऐसे होगे तब शान्तपद को प्राप्त होगे । हे रामजी! चित्त के सम्बन्ध से क्षोभ उत्पन्न होता है । जैसे वसन्तऋतु में फूल उत्पन्न होते हैं तैसे ही चित्तरूपी वसन्त ऋतु में दुःखरूपी फूल उत्पन्न होते हैं जब तुम चित्त को शान्त करोगे तब परमपद को प्राप्त होगे जो सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल है । इससे तुम असंग हो रहो । जब तुम स्थूल से स्थूल होगे तब भी असंग रहोगे । ऐसे पद को पाकर काष्ठ पत्थर की नाईं मौन हो रहो । हे रामजी! दृश्य पदार्थ को त्यागकर जो दृष्टा जाननेवाला है उसमें स्थित हो । हे रामजी! इन्द्रियाँ तो अपने अपने विषय को ग्रहण करती हैं उनकी ओर तुम भावना मत करो कि यह सुन्दररूप है और इसकी प्राप्ति हो । भले के प्राप्त होने की भावना मत करो, इसके जाननेवाला जो आत्मा है उसी में स्थित रहो जो पुरुष दृष्टा में स्थित होता है वह गोपद की नाईं संसार समुद्र को लाँघ जाता है । हे रामजी! जो पदार्थ दृष्टि आते हैं उनमें अपनी अपनी सृष्टि है सो संकल्प मात्र ही है और अपने अपने संकल्प में स्थित है पर सर्वसंकल्प आत्मा के आश्रय हैं जैसे सब पदार्थ आकाश में स्थित हैं तैसे ही सब संकल्प की सृष्टि आत्मा के आश्रय है एक के संकल्प को दूसरा नहीं जानता-सृष्टि अपनी अपनी है । जैसे समुद्र में जितने बुद्‌बुदे हैं उनको जल से एकता है और आकार से एकता नहीं, तैसे ही स्वरूप से एकता है, और संकल्पसृष्टि अपनी-अपनी है ।

जो पुरुष ऐसे चिन्तता है कि मैं उसकी सृष्टि को जानूँ तब जानता है । हे रामजी! आत्मा कल्पवृक्ष है, उसमे जैसी कोई भावना करता है तैसी ही सिद्धि होती है । जब ऐसी ही भावना करके जीव स्वरूप में लगता है कि सब सृष्टि मुझे भासे तो भावना से भासि आती है । ज्ञानी ऐसी भावना नहीं करता क्योंकि आत्मा से भिन्न वह कोई पदार्थ नहीं जानता और जानता है कि स्वरूप से सबकी एकता है पर संकल्परूप से एकता नहीं होती ।जैसे तरंगों की एकता नहीं पर जल की एकता है और जो एक तरंग दूसरे के साथ मिल जाता है तो उससे एकता होती है, तैसे ही एक का संकल्प भावना से दूसरे के साथ मिलता है, इससे ज्ञानी जानता है संकल्प रूप आकार नहीं मिलते और स्वरूप से सबकी एकता है । जिसकी भावना होती है कि मैं इसकी सृष्टि को देखूँ तो वह उसके संकल्प से अपना संकल्प मिलाकर देखता है तब उसकी सृष्टि जानता है । जैसे दो मणियों का प्रकाश भिन्न भिन्न होता है और जब दोनों इकट्ठी एक ही ठौर में रखिये तो दोनों का प्रकाश इकट्ठा हो जाता है, तैसे ही संकल्प की एकता भावना से होती है । ज्ञानी को प्रथम संकल्प हो कि मैं उसकी सृष्टि देखूँ तो संकल्प से देखता है और ज्ञान के उपजे से वाच्छा नहीं रहती । हे रामजी! इच्छा चित्त का धर्म है । जब चित्त ही नष्ट हो गया तब इच्छा किसको रहे । जब स्वरूप का प्रमाद होता है तब चित्तरूपी दैत्य प्रसन्न होता है कि यह मेरा आहार हुआ और मैं इसको भोजन करूँगा । हे रामजी! जो पुरुष चित्त की ओर हुआ है और जिसको स्वरूप की भावना नहीं हुई सो चित्तरूपी दैत्य उसे जन्मरूपी वन में लिये फिरता है, उसको भोजन करता रहता है, उसका पुरुषार्थ नष्ट करता है और आत्मभावनावाली बुद्धि उत्पन्न नहीं होने देता । जैसे वृक्ष को अग्नि लगे तो फिर उसमें फल नहीं लगते, तैसे ही पुरुषार्थरूपी वृक्ष को भोगरूपी अग्नि लगी तो शुद्ध बुद्धरूपी फल उत्पन्न नहीं होते । हे रामजी! अपना चित्त आत्मा में लगावो और विषय की ओर जाने न दो । यह चित्त दुष्ट है, जब इसको स्थित करोगे तब परम अमृत से शोभायमान होगे और जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा अमृत से शोभता है तैसे ही ब्रह्मलक्ष्मी से शोभोगे और परम निर्वाणपद को प्राप्त होगे ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे निर्वाणवर्णनं नामैकादशाधिकशततमस्सर्गः ||111||

अनुक्रम

प्रथमद्वितीयतृतीयभूमिकालक्षण विचार

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ज्ञान की सप्तभूमिका हैं इनसे ज्ञान की उत्पत्ति होती है रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जिस भूमिका में जिज्ञासु प्राप्त होता है उसका लक्षण क्या है और ये सप्तभूमिका क्या हैं और कैसे प्राप्त होती है सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ये सप्तभूमिका जिस प्रकार प्राप्त होती हैं और जिस प्रकार इनसे ज्ञान प्राप्त होता है सो सुनो । हे रामजी! जब बालक माता के गर्भ में होता है तब उसको दृढ़ सुषुप्ति जड़ अवस्था होती है-जैसे ज्ञानी को होती है-परन्तु बालक में संस्कार रहता है उससे संस्कार की सत्यता आगे होती है । जैसे बीज में अंकुर होता है उससे आगे वृक्ष होता है तैसे ही बालक की भावी होती है और ज्ञानी की भावी नहीं होती । जैसे दग्धबीज में अंकुर नहीं होता तैसे ही ज्ञानी की भावी नहीं होती, क्योंकि वह संसार से सुषुप्ति है और स्वरूप में नहीं । जब बालक को बाहर निकल के कुछ काल व्यतीत होता है तब जड़ता निवृत्त हो जाती है और सुषुप्ति रहती है तब जड़ता निवृत्त हो जाती है और सुषुप्ति रहती है । कुछ काल के उपरान्त सुषुप्ति भी लय हो जाती है और चेतनता होती है । तब वह जानता हैं कि `यह मैं हूँ,' "ये मेरे पिता-माता हैं" । तब कुलवाले उसको सिखाते हैं कि यह मीठा है, यह कड़ुआ है, यह तेरी माता है, यह तेरा पिता है, यह तेरा कुल है, इससे पाप होता है, इससे पुण्य होता है, इससे स्वर्ग मिलता है, इससे नरक पाता है, इस प्रकार यज्ञ होता है, इस प्रकार तप होता है और इस प्रकार दान करते हैं । हे रामजी! इस प्रकार कुल के उपदेश और शास्त्र के भय से वह धर्म में विचरता है और पाप का त्याग करता है । ऐसा शास्त्र अनुसार बिचरनेवाला पुरुष धर्मात्मा कहाता है । वे धर्मात्मा पुरुष भी दो प्रकार के हैं-एक प्रवृत्ति की ओर है और दूसरा निवृत्ति की ओर है । जो प्रवृत्ति की ओर है वह पुण्यकर्मों से स्वर्ग के फल भोगता है और मोक्ष को उत्तम नहीं जानता, इससे संसार में जल के तृणवत् भ्रमता है और कभी चिरकाल से इस क्रम से मुक्त होता है जो निवृत्ति की ओर होता है उसको विषय भोग से वैराग्य उपजता है और वह कहता है कि यह संसार मिथ्या है, मैं इससे तरूँ और उस पद को प्राप्त होऊँ जहाँ क्षय और अतिशय न हो- यह संसार सर्वदा जलरूप और दुःखदायी है । हे रामजी! उस पुरुष को इस क्रम से ज्ञान और विज्ञान उत्पन्न होता है और जो पशुधर्मा मनुष्य है उसको ज्ञान प्राप्त होना कठिन है-शास्त्र के अर्थ के न जाननेवालों को पशुधर्मी कहते हैं । वे अपनी इच्छा से बिचरकर अशुभ को ग्रहण करते और विचार से रहित होते हैं । मनुष्य भी दो प्रकार के हैं-एक प्रवृत्ति के धारनेवाले और दूसरे निवृत्ति के धारनेवाले । प्रवृत्तिमार्ग इसे कहते हैं कि जिसको शास्त्र शुभ कहे उसको ग्रहण करना और और जिसे अशुभ कहे उसका त्याग करना और कामना करके फल के निमित्त यज्ञादिक शुभकर्म करने कि स्वर्ग, धन, पुत्रादिक मुझे प्राप्त हों । ऐसी कामना धारकर जो शुभकर्म करके इस प्रकार संसारसमुद्र में बहते हैं वे निवृत्ति की ओर भी आते हैं तब स्वरूप पाते हैं । निवृत्ति यह है कि जो निष्काम होकर और शुभकर्म करके अन्तःकरण शुद्ध करता है उसको वैराग्य उपजता है और वह कहता है कि मुझे कर्मों से क्या है और फलों से क्या है, मै किसी प्रकार आत्मपद को प्राप्त होऊँ । वह यही विचारता है कि मैं संसार से कब मुक्त हूँगा? यह संसार मिथ्या है और मुझे भोग से क्या है? यह भोग तो सर्प है । हे रामजी! इस प्रकार यह भोगों की निन्दा करता है, संसार से उपरत होता है, शम, दम आदिक जो ज्ञान के साधन हैं उनमें बिचरता है, देश, काल और पदार्थ को शुभ अशुभ बिचारता है, मर्यादा से बिलता है, सन्तजनों का संग करता है और सत् शास्त्र और ब्रह्म विद्या को बारम्बार विचारता है । इस प्रकार सन्तजनों के संग से उसकी बुद्धि बढ़ती

जाती है । जैसे शुक्लपक्ष् के चन्द्रमा की कला दिन प्रतिदिन बढ़ती है तैसे ही उसकी बुद्धि बढ़ती है और विषयों से उपरत होती है तब वह तीर्थ, ठाकुरद्वारों आदि शुभ स्थानों को पूजता है, देह और इन्द्रियों से सन्तों की टहल करता है और सबसे मित्रता रखके दया, सत्य और कोमल तापूर्वक बिचरता है । वह ऐसे वचन बोलता है कि जिससे सब कोई प्रसन्न हो और जो यथाशास्त्र हों, इससे भिन्न किसी को नहीं कहता । वह अज्ञानी का संग त्यागता है, स्वर्ग आदिक सुख की भावना नहीं करता- केवल आत्मपरायण होता है, सन्त और शास्त्रों की दृढ़ भावना करता है और उनके अर्थों में सुरत लगाकर और किसी ओर चित्त नहीं लगाता है । जैसे कदर्य दरिद्री सर्वदा धन की चिन्ता करता है तैसे ही वह सदा आत्मा की चिन्तना करता है । जो पुरुष इतने गुणों से युक्त है उसको प्रथम भूमिका प्राप्त हुई है । वह पापरूपी सर्प को मोर के समान नष्ट करता है, सन्तजन, सत्शास्त्र और धर्मरूपी मेघ को गर्दन ऊँची करके देखता है और प्रसन्न होता है । इसका नाम शुभेच्छा है । उसको फिर दूसरी भूमिका प्राप्त होती है तब जैसे शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की कला बढ़ती जाती है तैसे ही उसकी बुद्धि बढ़ती जाती है । उसके ये लक्षण हैं, सत्ॎशास्त्रों और ब्रह्मविद्या को विचार के दृढ़ भावना करनी ।उस विचार का कवच जो गले में डालता है उससे शस्त्रों का कोई घाव नहीं लगता । इन्दियरूपी चोर के हाथ में इच्छारूपी बरछी है सो विचाररूपी कवच पहिरने वाले को नहीं लगती । हे रामजी! इन्द्रियरूपी सर्प में तृष्णारूपी विष है उससे मूर्ख को मारता है । विचारवान् पुरुष इन्द्रियों के विषयों को नाश कर डालता है और सब ओर से उदासीन रहता है और दुर्जनों की संगति का बल करके त्याग करता है । जैसे गधा तृण को त्यागता है तैसे ही मूर्ख की संगति वह त्यागता है । उसमें सर्व इच्छा का भी त्याग होता है परन्तु एक इच्छा रहती है कि दया सब पर करता है और सन्तोषवान् रहता हे । उसके निषेधगुण स्वाभाविक जाते रहते हैं और दम्भ, गर्व, मोह, लोभ आदिक स्वाभाविक नष्ट हो जाते हैं । जैसे सर्प कञ्चुकी को त्यागकर शोभायमान होता है तैसे ही विचारवान् इन्द्रियों के विषयों को त्याग करके शोभता है । जो उसमें क्रोध भी दृष्टि आता है तो क्षणमात्र होता है हृदय में स्थित नहीं हो सकता है । वह खाना, पीना, लेना, देना आदि क्रिया विचारपूर्वक करता है और सर्वदा शुद्धमार्ग में बिचरता है, सन्तजनों का संग और सत्शास्त्रों के अर्थ विचारने से बोध को बढ़ाता और तीर्थों के स्नान से काल व्यतीत करता है । हे रामजी! यह दूसरी भूमिका है । जब तीसरी भूमिका आती है तब श्रुति जो वेद और स्मृति जो धर्मशास्त्र उनके अर्थ हृदय में स्थित होते हैं- और जैसे कमलपर भँवरे आन स्थित होते हैं तैसे ही उस पुरुष के हृदय में शुभगुण स्थित होते हैं, तब उसे फूलों की शय्या सुखदायी नहीं भासती, वन और कन्दरा सुख दायक भासते हैं । निदान उसका वैराग्य दिन दिन बढ़ता जाता है और वह तालाब, बावलियों और नदियों में स्नान करके शुभस्थानों में रहता है, पत्थर की शिला पर शयन करता है, देह को तप से क्षीण करता है, धारणा से चित्त को किसी ठौर में नहीं लगाता, आत्मभावना और ध्यान करके भोगों से सर्वदा उपराम होता है । भोगों को अन्त वन्त विचार के कि यह स्थिर नहीं रहते और देहके अहंकार को उपाधि जानकर वह त्यागता है, देह को रक्त,माँस, पुरीषादिक से पूर्ण जानकर उसमें अहंकार को त्यागता है और निन्दा करता है और सूखे तृण की नाईं तुच्छ जानकर त्यागता है । जैसे विष्ठासंयुक्त तृण को पशु त्यागता है तैसे ही देह के अहंकार को वह त्यागता है और कन्दराओं में बिचरके फल फूलों का आहार करता है, सन्तजनों की टहल करके आयु बिताता है और सदा असंग रहता है । यह तीसरी भूमिका है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे प्रथमद्वितीयतृतीयभूमिकालक्षणविचारो नाम द्वादशाधिकशततमस्सर्गः ||112||

अनुक्रम

तृतीयभूमिका विचार

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ज्ञान का यह साधन है कि ब्रह्मविद्या को विचार के उसके अर्थ की बारम्बार भावना करना और पुण्यक्रिया में विचरना, इससे भिन्न ज्ञान का कोई साधन नहीं-इसी से ज्ञान की प्राप्ति होती है । जिस पुरुष को ऐसी भावना होती उसको यदि नाना प्रकार की सुगन्ध-अगर, चन्दन, चोये आदि और अप्सरा अनिच्छित प्राप्त हों तो उनका निरादर करता है और जो स्त्री को देखता है तो माता समान जानता है, पराये धन को पत्थर के बट्टे समान देखकर वाच्छा नहीं करता और सब भूतों को देखखर दया ही करता है । जैसे आपको सुख से प्रसन्न और दुःख से अनिष्ट जानता है तैसे ही वह और को भी आप जानकर सुख देता है और दुःख किसी को नहीं देता । इस प्रकार वह पुण्यक्रिया में विचरता है । सत्‌्शास्त्रों के अर्थ का अभ्यास करता है और सर्वदा असंग रहता है । असंगति भी दो प्रकार की है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! संग असंग का लक्षण क्या है इनका भेद समझाकर कहिये? वशिष्ठजी बोले हे रामजी! असंग दो प्रकार का है-एक समान और दूसरा विशेष, उनका लक्षण सुनो । समान असंग यह है कि मैं कुछ नहीं करता । न मैं किसी को देता हूँ और न मुझे कोई देता है । सब ईश्वर की आज्ञा है, जिसको धन देने की इच्छा होती है उसको धन देता है और जिससे लेना होता है उससे लेता है, अपने अधीन कुछ नहीं । समान असंगवाला जो कुछ दान, तप, यज्ञादि करता है वह ईश्वरार्पण करता है और अपना अभिमान कुछ नहीं करता और कहता है कि सब ईश्वर की शक्ति से होता है । इस प्रकार निरभिमान होकर वह धर्म चेष्टा में स्वाभाविक विचरता है और जो कुछ इन्द्रियों के भोग की सम्पदा है उसको आपदा जानता है, और भोगों को महा आपदारूप मानता है । संपदा आपदारूप है, संयोग वियोगरूप है और जितने पदार्थ हैं वे सब सन्निपातरूप हैं-विचार से नष्ट हो जाते हैं इससे सबको वह नाश रूप जानता है । यह संयोग वियोग को दुःखदायी जानता है, परस्त्री को विष की बेलिसमान रससे रहित जानता है और सब पदार्थों को परिणामी जानकर किसी की इच्छा नहीं करता । सम्पूर्ण विश्व का जो ईश्वर है उसे जिसको सुख देना है उसको सुख देता है और जिसको दुःख देना है उसको दुःख देता है, अपने हाथ कुछ नहीं, कराने करनेवाला ईश्वर है । न मैं करता हूँ, न मैं भोक्ता हूँ और न मैं वक्ता हूँ-सब ईश्वर की सत्ता से होता है । ऐसे निरभिमान होकर वह पुण्यक्रिया करता है । यह समान असंग है । उसके वचन सुनने से श्रवण को अमृत की प्राप्ति होती है । इस प्रकार सन्तों के मिलने और तीसरी भूमिका की प्राप्ति से जिसकी बुद्धि बढ़ी है और जो निरभिमान है उसके उपदेश में अनुभव से तबतक अभ्यास करे जबतक हाथ पर आँवले की नाईं आत्मा का अनुभव साक्षात्कार प्रत्यक्ष हो! विशेष असंगवाला कहता है कि न मैं कुछ करता हूँ, न कराता हूँ, केवल आकाशरूप आत्मा हूँ न मुझ में करना है, न कराना है, न कोई और है, न मेरा है, मैं केवल आकाशरूप अद्‌वैत आत्मा हूँ । हे रामजी! वह पुरुष न भीतर, बाहर, न पदार्थ, न अपदार्थ, न जड़, न चेतन, न आकाश, न पाताल, न देश, न पृथ्वी, न मैं, न मेरे को देखता है, वह निवास, अज, अविनाशी, सर्व शब्द अर्थों से रहित, केवल शून्य आकाश में स्थित है । चित्त से रहित चेतन में जो प्रस्थित है उसको श्रेष्ठ असंग कहते हैं और उसकी चेष्टा दृष्टि भी आती है तो भी उसमें हृदय से पदार्थों की भावना का अभाव है । जैसे जल में कमल दृष्टि भी आता है परन्तु ऊँचा रहता है, तैसे ही वह क्रिया में विचरता दृष्टि भी आता है परन्तु असंग रहता है । उसको कोई कामना नहीं रहती कि यह हो और यह न हो क्योंकि उसको संसार का अभाव निश्चय हुआ है और सर्वकलना से रहित है । उसको आत्मा से भिन्न किसी पदार्थ की सत्ता नहीं फुरती । यह श्रेष्ठ

असंग कहाता है । कार्य करने से उसका कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता और न करने में कुछ हानि नहीं होती वह सर्वदा असंग है और संसार में कदाचित नहीं डूबता, क्योंकि वह तो संसारसमुद्र के पार हुआ है और उसने अनात्म में आत्मभावना त्यागी है, अहंभाव का त्याग किया है, इष्ट अनिष्टरूप जितने पदार्थ हैं उनके सुख-दुख की वेदना उसे नहीं फुरती और वह सदा मौनरूप है । उसे पैसा पत्थर के समान है । यह श्रेष्ठ असंग कहाता है । हे रामजी! एक कमल है जो अज्ञानरूपी कीचड़ से निकलकर आत्मरूपी जल में विराजता है उसका बीज संसार की अभावना है । उस जल में तृष्णारूपी मछलियाँ हैं जो उस कमल के चहुँ ओर फिरती हैं और उसके साथ कुकर्म दुःखरूपी काँटे हैं । अज्ञानरूपी रात्रि से उस कमल का मुख मूँदा रहता है और विचाररूपी सूर्य के उदय हुए से खिलता और शोभता है । उसमें सुगन्ध सन्तोष है । और वह हृदय के बीच लगता है । उसका फल असंग है । यह तीसरी भूमिका में उगता है । हे रामजी! सन्त की संगति और सत्‌शास्त्रों का विचारना सार को प्राप्त करता है और अमृत मोक्ष को प्राप्त होता है । बड़ा कष्ट है कि ऐसे स्वरूप को विस्मरण करके जीव दुःखी होते हैं । इसका स्वरूप जो दुःखों का नाश करता है और जिसमें कोई दुःख नहीं, आनन्दरूप है सो इन भूमिकाओं के द्वारा प्राप्त होता है । हे रामजी! यह तीसरी भूमिका ज्ञान के निकटवर्ती है और विचारवान् इन भूमिकाओं में स्थित होकर बुद्धि को बड़ाते हैं । जब इस प्रकार वह बोध को बढ़ाता है तो शास्त्र की युक्ति से रक्षा करता है और क्रम करके इस तीसरी भूमिका को प्राप्त होता है जहाँ असंगता प्राप्त होती है । जैसे किसान खेती की रक्षा करके बढ़ाता है तैसे ही वह विचाररूपी जल से बुद्धि को बढ़ाता है तब बुद्धिरूपी बेल बढ़ती है । फिर चतुर्थ भूमिका प्राप्त होती है और अहंकार, मोहादिक शत्रुओं से रक्षा करता है । हे रामजी! इस भूमिका को प्राप्त होकर ज्ञानवान् होता है सो यह भूमिका क्रम करके प्राप्त होती है अथवा बड़े पुण्य कर्म किये हो उनसे आन फुरती है वा अकस्मात् भी आन फुरती है । जैसे नदी के तट पर कोई आ बैठा हो और नदी के वेग से बीच में जा पड़े तैसे ही जब पहली भूमिका प्राप्त होती है तब बुद्धि को बढ़ाती है और जब बुद्धिरूपी बेल बढ़ती तब ज्ञानरूपी फल लगता है । जब ज्ञान उपजता है तब उसमें प्रत्यक्ष क्रिया दृष्टि भी आवे तो भी उसका वह अभिमान नहीं करता जैसे शुद्धमणि प्रतिबिम्ब को ग्रहण भी करती है परन्तु उसमें कोई रंग नहीं चढ़ता ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे तृतीयभूमिकाविचारोनाम त्रयोदशाधिकशततमस्सर्गः ।।113।।

अनुक्रम

विश्ववासनारूप वर्णन

रामजी बोले, हे भगवन्! आपने भूमिका का वर्णन किया पर उसमें मुझे यह संशय है कि जो भूमिका से रहित और प्रकृत के सम्मुख हैं उनको भी कदाचित् ज्ञान उपजेगा अथवा न उपजेगा? और जो एक , दो वा तीन भूमिका पाकर शरीर छूटे और आत्मा का साक्षात्कार न हुआ हो और उसको स्वर्ग की भी कामना नहीं तो वह कौन गति पाता है? वशिष्ठजी बोले हे रामजी! जो पुरुष विषयी हैं उनको ज्ञान प्राप्त होना कठिन है, वे वासना करके घटी यन्त्र की नाईं कभी स्वर्ग और कभी पाताल को जाते हैं और दुःख पाते हैं, कदाचित् अकस्मात् काकतालीय न्याय की नाईं उनको संत के संग और सत्‌शास्त्रो को सुनने की वासना फुरती है । जैसे मरुस्थल में बेलि लगना कठिन है तैसे ही जिस पुरुष को आत्मा का प्रमाद है और भोग की भावना है उसको ज्ञान प्राप्त होना कठिन है । परन्तु जब अकस्मात् उसे सन्तों के संग से वैराग्य उपजता है और उसकी बुद्धि निवृत्ति की ओर आती है तब भूमिका के द्वारा उसे ज्ञान प्राप्त होता है और तभी मुक्त होता है हे रामजी! अकस्मात् यही भावना उपजे बिना योनियों में भ्रमता है । जिसको एक अथवा दो भूमिका प्राप्त हुई है और शरीर छूट गया तो वह और जन्म पाकर ज्ञान को प्राप्त होता है और पिछला संस्कार जाग आता है और दिन बढ़ता जाता है । जैसे बीज से प्रथम वृक्ष का अंकुर होता है, फिर डाल, फूल और फल से बढ़ता जाता है तैसे ही उसका अभ्यास बढ़ता जाता है और ज्ञान प्राप्त होता है । जैसे पहलवान खेलकर रात्रि को सो जाता है और फिर दिन हुए उठता है तब पहलवान ही का अभ्यास आय फुरता है और जैसे कोई मार्ग चलता चलता सो जावे और जागकर चलने लगे तैसे ही वह फिर पूर्व के अभ्यास में लगता है । हे रामजी! जिसको यह भावना होती है कि मुझे विशेषता प्राप्त हो वह जन्म पाता है और ब्रह्मा से चींटीपर्यन्त जिसको विशेष होने की कामना है सो जन्म पाता है । ज्ञानी को भोगों की और विशेष प्राप्त होने की इच्छा नहीं होती ।जिसको भोग की इच्छा होती है वह भोग से आपको विशेष जानता है और अनिष्ट की निवृत्ति की इच्छा करता है ज्ञानी को कोई वासना नहीं होती कि यह विशेषता मुझे प्राप्त हो इसी से वह फिर जन्म नहीं पाता जैसे भूना बीज नहीं उगता-तैसे ही वासना से रहित ज्ञानी जन्म नहीं पाता । हे रामजी! जन्म का कारण वासना है । जैसी जैसी वासना होती है तैसी तैसी अवस्था को जीव प्राप्त होता है । नाना प्रकार की वासना हैं, जब शरीर छूटने का समय आता है तब जो वासना दृढ़ होती है और जिसका सर्वदा अभ्यास होता है वही अन्तकाल में दिखाई देती है चाहे वह पाठ की, तप की, कर्म की देवता इत्यादिक की हो सबको मर्दन करके वही उस समय भासती है । हे रामजी! उस समय अग्रगत पदार्थ होते हैं सो भी नहीं भासते और पाँचों इन्द्रियों के विषय विद्यमान हों तो भी नहीं भासते पर वही पदार्थ भासता है जिसका दृढ़ अभ्यास किया होता है । वासनाएँ तो अनेक होती हैं परन्तु जैसी भावना दृढ़ होती है उसी के अनुसार शरीर धारता है । जब देह छूटता है तब मुहूर्त पर्यन्त सुषुप्ति की नाईं जड़ता रहती है उसके उपरान्त चेतनता होती है तब वासना के अनुसार शरीर देखता है और जानता है कि यह मेरा शरीर है, मैं उत्पन्न हुआ हूँ । कोई ऐसे होते हैं कि उसी क्षण में युग का अनुभव करते हैं, कोई ऐसे हैं कि चिरकाल पर्यन्त जड़ रहते हैं तब उनको चेतनता फुरती है और उसके अनुसार संसार भ्रम देखते हैं और कोई जो संस्कारवान् होते हैं उनको शीघ्र ही एक क्षण में चेतनता होती है और वे जानते हैं कि हम उस ठौर मुये थे और इस ठौर जन्मे हैं, यह हमारी माता है, यह पिता है और यह कुल है । इस प्रकार एक मुहूर्त में जागकर वे देखते हैं और बड़े कुल को देखते हैं । इसी प्रकार वे परलोक और यमराज के दूतों को देखते हैं और जानते हैं कि यह

हमें लिये जाते हैं और हमारे पुत्रों ने पिण्ड किये हैं उनसे हमारा शरीर हुआ है और दूत ले चले हैं । तब आगे ये धर्मराज को देखते हैं और उसके निकट जाके खड़े होते हैं और पुण्य पाप दोनों मूर्ति धारकर उनके आगे स्थित होते हैं । तब धर्मराज अन्तर्यामी से एक एक का हाल पूछता है कि उसने क्या कर्म किये हैं? यदि पुण्यवान् होता है तो स्वर्गभोग भोगकर फिर योनि में डाला जाता है और जो पापी होता है तो नरक में डाल देते हैं । निदान सब प्रकार जन्मों को धारता है । सर्प की योनि में कहता है कि मैं सर्प हूँ और बैल, वानर, तीतर, मच्छ, बगला, गर्दभ, बेलि, वृक्ष इत्यादिक योनि पाता है, तो जानता है कि मैं यही हूँ । अकस्मात् काकताली योग की नाईं कदाचित् मनुष्य शरीर पाता है तो माता के गर्भ में जानता है कि यहाँ मैंने जन्म लिया है, यह मेरी माता है, मैं पिता से उत्पन्न हुआ हूँ और यह मेरा कुल है । फिर बाहर निकलता है और बालक होता है तब जानता है कि मैं बालक हूँ, यौवनावस्था होती है तब जानता है कि मैं जवान हूँ और फिर वृद्ध होता है तब जानता है कि मैं यही हूँ । अकस्मात् काकताली योग की नाईं कदाचित् मनुष्य शरीर पाता है तो माता के गर्भ में जानता है कि यहाँ मैंने जन्म लिया है, यह मेरी माता है, मैं पिता से उत्पन्न हुआ हूँ और यह मेरा कुल है । फिर बाहर निकलता है और बालक होता है तब जानता है कि मैं बालक हूँ, यौवनावस्था होती है तब जानता है कि मैं जवान हूँ और फिर वृद्ध होता है तब जानता है कि मैं बालक हूँ, यौवनावस्था होती है तब जानता है कि मैं जवान हूँ और फिर वृद्ध होता है तब जानता है कि मैं वृद्ध हूँ । इस प्रकार काल बिताकर जब मरता है तो सर्प, तोता, तीतर, वानर, मच्छ, कच्छ, वृक्ष, पशु, पक्षी, देवता इत्यादिक का जन्म धारण करता है । हे रामजी! संसार में वह घटीयन्त्र की नाईं फिरता है और फिर कभी ऊर्ध्व और कभी अधः को जाता है और इसी प्रकार स्वरूप के प्रमाद से दुःख पाता है । हे रामजी! इतना विस्तार जो तुमसे कहा है सो बना कुछ नहीं केवल अद्वैत आत्मा है पर चित्त के संयोग से इतना भ्रम देखता है और वासना द्वारा विमानों को देखता है और आकाश में जाता है । जैसे पवन गन्ध को ले जाता है तैसे ही पुर्यष्टका को ले जाता है और शरीर देखता है । हे रामजी! आत्मा से भिन्न कुछ नहीं परन्तु चित्त के संयोग से इतने भ्रम देखता है कि इससे चित्त को स्थित करो तो भ्रम मिट जावेगा और आत्मतत्त्व मात्र ही शेष रहेगा । जो शुद्ध और आनन्दरूप है उसी में स्थित हो रहो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विश्ववासनारूपवर्णनं नाम चतुर्दशाधिकशततमस्सर्गः ||114||

अनुक्रम

सृष्टिनिर्वाणैकता प्रतिपादन

वशिष्ठजी बोले , हे रामजी! यह तो प्रवृत्तिवाले का क्रम कहा अब निवृत्ति का क्रम सुनो । जिसको भूमिका प्राप्त हुई है और आत्मपद नहीं प्राप्त हुआ उसके पास सब दग्ध हो जाते हैं । जब उसका शरीर छूटता है तब वह वासना के अनुसार शून्याकार हुआ फिर अपने साथ शरीर देखता है और फिर बड़े परलोक को देखता है जहाँ स्वर्ग के सुख भोगता है । फिर विमान पर चढ़ के लोकपालों के पुरों में विचरता है जहाँ मन्द मन्द पवन चलता है, सुन्दर वृक्षों की सुगन्ध है और पाँचों इन्द्रियों के रमणीय विषय हैं देवताओं में क्रीड़ा करता है और भोगों को भोग कर संसार में उपजता है और फिर भूमिका क्रम को प्राप्त होता है । जैसे मार्ग चलता कोई सो जावे तो जागकर फिर चलता है तैसे ही शरीर पाकर वह फिर भूमिका क्रम को प्राप्त होता है और जैसी-जैसी भावना दृढ़ होती है तैसे ही भासता है । यह सब जगत् संकल्पमात्र है, संकल्प के अनुसार ही भासता है और वासना के अनुसार परलोक भ्रम सुख दुःख देखता है, वहाँ से भोगकर फिर संसार में आन पड़ता है । इसी प्रकार संकल्प से भटकता है और जब आत्मा की ओर आता है तब संसारभ्रम मिट जाता है । जबतक आत्मा की ओर नहीं आता तब तक अपने संकल्प से संसार को देखता है । जीव जीव प्रति अपनी अपनी सृष्टि भासती है देवता, दैत्य, भूमिलोक, स्वर्ग सब संकल्प के रचे हुए हैं । जो कुछ संसार भासता है-ब्रह्मा, विष्णु रुद्र से आदि लेकर वह सब मनोमात्र है, मन के संकल्प से उदय हुआ है और असत्ूरूप है । जैसे मनोराज, गन्धर्वनगर और स्वप्नसृष्टि भ्रमरूप हैं, तैसे ही यह जगत् भ्रम रूप है सब सृष्टि परस्पर अदृष्ट है, कहीं उदय होती भासती है और कहीं लय हो जाती है । जैसे मूर्ख और देश को जाता है तैसे ही देह को त्यागकर जीव परलोक को जाता है पर स्वरूप में आना, जाना, अहं, त्वं,कल्पना कोई नहीं, केवल सत्तामात्र अपने आप में स्थित है और जगत् भी वही है । हे रामजी! यह विश्व आत्मस्वरूप है । जैसे मणि का चमत्कार होता है तैसे ही विश्व आत्मा का चमत्कार है और जो कुछ तुमको भासता है सो आत्मा ही है आत्मा बिना आभास नहीं होता जैसे ईख में मधुरता और मिरचों में तीक्ष्णता होती है तैसे ही आत्मा में विश्व है । जो कुछ भी देखो सुनो स्पर्श करो और सुगन्ध लो उसे सब आत्मा ही जानों अथवा जो इनके जाननेवाला अनुभव है उसमें स्थित हो और इन्द्रियाँ और विष को त्यागकर अनुभवरूप में स्थित हो । हे रामजी! यह विश्व संवित्ूरूप है और संवित् ही विश्वरूप है । जब संवित् बहिर्मुख होकर रस लेती है तब जाग्रत् को देखती है, जब अन्तर्मुख होकर रस लेती है तब स्वप्न होता है और जब शान्त हो जाती है तभी सुषुप्ति होती है संसार को सत्य जानकर जब रस लेती है तब जाग्रत और सुषुप्ति अवस्था होती है और जब संवित् से रस की सत्यता जाती रहती है तब तुरीयापद होता है । यह पदार्थ है, यह नहीं, जब यह नष्ट हो तब तुरीयापद है । हे रामजी! यह विश्व फुरनेमात्र है, जब फुरना नष्ट हो तब विश्व देखने में नहीं आता। जैसे स्वप्न के देश, काल, पदार्थ जागे से मिथ्या होते हैं तैसे ही यह जाग्रत भी मिथ्या है । जीव जीव प्रति जो अपनी अपनी सृष्टि होती है उसमें आप भी कुछ बन जाता है इससे दुःखी होता है । जब इस अहंकार को त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित हो तब विश्व कहीं नहीं है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सृष्टिनिर्वाणैकताप्रतिपादनं नाम पञ्चदशाधिकशततमस्सर्गः ॥115॥

अनुक्रम

विश्वाकाशैकता प्रतिपादन

वशिष्ठजी बोले , हे रामजी! इस सृष्टि का स्वरूप संकल्पमात्र है और संकल्प भी आकाश रूप है । आकाश और स्वर्ग में कुछ भेद नहीं, जैसे पवन और स्पन्द में भेद नहीं । सृष्टि में अनेक पदार्थ हैं परन्तु परस्पर नहीं रोकते और वास्तव में विश्व भी आत्मा का चमत्कार है और आत्मरूप है । जो आत्मरूप है तो राग और द्वेष किसमें कीजिये? चेतन धातु में कोटि ब्रह्माण्ड स्थित हैं और यह आश्चर्य है कि आत्मा में कुछ नहीं हुआ । भिन्न भिन्न संवेदन दृष्टि आती है, और नाना प्रकार के पदार्थ भासते हैं । हे रामजी! जीव जीव प्रति अपनी अपनी सृष्टि है । एक सृष्टि ऐसी है कि उसका रूप एक सा दृष्टि आता है परन्तु सृष्टि अपनी अपनी है और कई ऐसी हैं कि भिन्न भिन्न हैं परन्तु समानता करके एकही दृष्टि आती हैं । जैसे जल की बूदें इकट्ठी होती हैं और धूलि के कण भिन्न भिन्न होते हैं परन्तु एकही धूलि भासती है । जैसे नदी में नदी पड़ती है तो एक ही जल हो जाता है तैसे ही समान अधिकरण करके सब संकल्प एक ही भासते हैं, एक एक के साथ मिलते हैं और नहीं भी मिलते । जैसे क्षीर समुद्र में घृत डालिये तो नहीं मिलता तैसे ही एक संकल्प ऐसे हैं कि और से नहीं मिलते-जैसे सूर्य, दीपक और मणि का प्रकाश भिन्न भिन्न दृष्टि आता पर एक से होते हैं तैसे ही कई सृष्टि एकसी भासती हैं और भिन्न भिन्न भी होती हैं । हे रामजी! इतनी सृष्टि जो मैंने तुमसे कही है सो सब अधिष्ठान में फुरने से कई कोटि उत्पन्न होती हैं और कई कोटि लीन हो जाती हैं । जैसे जल में तरंग और बुद्बुदे उपजकर लीन हो जाते हैं तैसे ही सृष्टि उत्पन्न और लीन होती है पर अधिष्ठान ज्यों का त्यों है, क्योंकि उससे कुछ भिन्न नहीं । ब्रह्म, आत्मा आदिक जो सर्व हैं सो भी फुरने में हुए हैं । जबतक शब्द अर्थ की भावना तबतक भासते हैं और जब भावना निवृत् हुई तब शब्द अर्थ कोई न भासेगा केवल शुद्ध चैतन्यमात्र ही शेष रहेगा और संसार का भाव किसी ठौर न होगा । जैसे पवन जबतक चलता है तबतक जाना जाता है कि पवन है और गन्ध भी पवन करके जानी जाती है कि सुगन्ध आई अथवा दुर्गन्ध आई और जब पवन नहीं, चलता तब उसका वेग नहीं भासता और गन्ध भी नहीं भासती ; तैसे ही जब फुरना निवृत्त हुआ तब संसार और संसार का अर्थ दोनों नहीं भासते । फुरने में जीव प्रति सृष्टि में सत्तासमान ब्रह्म स्थित है और सबका अपना आप है-द्वैतभाव को कदाचित् नहीं प्राप्त हुआ । हे रामजी! इससे ऐसे जानो कि आकाश, पृथ्वी, जल, अग्नि आदि सब पदार्थ आत्मा ही हैं अथवा ऐसे जानो कि सब मिथ्या है और इनका साक्षी ब्रह्म ही अपने आप में स्थित है उससे कुछ भिन्न नहीं और उसी ब्रह्म के अंश में अनेक सुमेरु और मन्दराचल आदिक स्थित हैं । अंशांशीभाव भी आत्मा में स्थूलता के निमित्त कहे हैं वास्तव नहीं- जनावने निमित्त कहे हैं । आत्मा एकरस है । हे रामजी! ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो आत्म सत्ता बिना हो । जिसको सत्य जानते हो सो भी आत्मा है और जिसको असत्य जानते हो वह भी आत्मा है; आत्मा में जैसे सत्य का फुरना है तैसे ही असत्य का फुरना है-फुरना दोनों का तुल्य है । जैसे स्वप्न में, एक को सत्य जानता है और दूसरे को असत्य जानता है तैसे ही जो इन्द्रियों के विषय होते हैं उनको सत्य जानता है और आकाश के फूल और शश के श्रृंग को असत्य कहता है सो सब अनुभव से फुरे हैं इससे अनुभवरूप है । ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो आत्मा में असत् नहीं; जो कुछ भासते हैं सो सब फुरने से हुए हैं सत्य क्या और असत्य क्या; सब मिथ्या और स्वप्न के सत् और असत् की नाईं हैं । जो अनुभव करके सिद्ध है सो सब सत्य है और अनुभव से भिन्न असत्य है । हे रामजी! गुणातीत परमात्मस्वरूप में स्थित हो । हे रामजी! भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों काल में

ज्ञानवान् पुरुष सम रहता है और दशोदिशा, आकाश, जल, अग्नि आदिक पदार्थ उसको सब आत्मा ही दृष्टि आता है-आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासता । सूर्य, चन्द्रमा, तारे सब आत्मा हैं यह विश्व आकाशरूप है और शुद्ध निर्मल है; आकाश में आकाश स्थित है, कुछ भिन्न नहीं । जो तुम्हें भिन्न भासे उन्हें मिथ्या जानो वे भ्रम करके सिद्ध हुए है, कोई सत् नहीं । पर परमार्थ से देखो तो सर्व आत्मा है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विश्वाकाशैकताप्रतिपादनं नाम षोडशाधिकशततमस्सर्गः ||116||

अनुक्रम

विश्व विजय

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह विश्व स्वप्न के समान है । जैसे स्वप्न की सेना नाना प्रकार की दीखती है और शस्त्र चलते भासते हैं पर आत्मा में इनका रूप देखना और मानना और शब्द अर्थ कोई नहीं, वह जगत् से रहित है और जगत्ूरूप भान होता है । अहं,त्वं जो कुछ भासता है सो सब स्वप्नवत् है और भ्रम से सिद्ध हुआ है । जो सबका अधिष्ठान् है वह सत्य है और सब उसी में कल्पित हैं । जो अनुभव से देखिये तो सब आत्मस्वरूप है और भिन्न देखिये तो कुछ नहीं । जैसे स्वप्नके देश, काल, पदार्थ सब अर्थाकार भी भासते तो भी मिथ्या हैं वैसे ही यह विश्व भ्रम करके फुरता है । उनकी अपेक्षा से वह और तू है और उसकी अपेक्षा से वह अहं है वास्तव में दोनों नहीं-जो है सो आत्मा ही है रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आपने कहा कि त्वं आदिक अहं आदिक त्वं पर्यन्त सब स्वप्न सेना की नाईं मिथ्या हैं और अनुभव से देखिये तो आत्मरूप हैं तो हम स्वप्नसेना में है अथवा हमारा अहं आत्मा है सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अनात्म देहादिक में यह अहंभावना करनी कि मैं हूँ तो स्वप्न सेना के तुल्य है और अधिष्ठान चिन्मात्र दृश्य और अहंकार से रहित अहंभावना करनी आत्मरूप है । हे रामजी! तुम आत्मरूप हो यह विश्व सत् भी नहीं और असत् भी नहीं, जो अधिष्ठानरूप से देखिये तो आत्मरूप है और जो अधिष्ठान से रहित देखिये तो मिथ्या है । वह अधिष्ठान शुद्ध, आनन्दरूप, चित्त से रहित चिन्मात्र परब्रह्म है उसमें अज्ञान से दृश्य दीखता है ।जैसे असम्यक् दृष्टि से सीपी में रूपा भासता है तैसे ही आत्मा में अज्ञानी दृश्य कल्पते हैं । हे रामजी! दृश्य अविचार से सिद्ध है और विचार किये से कुछ वस्तु नहीं होती पर जिसके आश्रय कल्पित है सो अधिष्ठान सत्य है । जैसे सीपी के जाने से रूपे की बुद्धि जाती रहती है तैसे ही आत्मविचार से विश्व बुद्धि जाती रहती है । जैसे समुद्र में पवन से चक्र-तरंग फुरते और प्रत्यक्ष भासते हैं पर विचार किये से चक्र में भी जलबुद्धि होती है तैसे ही आत्मरूपी समुद्र में मन के फुरने से विश्वरूपी चक्र उठते हैं और विचार किये से तुमको मन के फुरने में भी आत्मरूप भासेगा, विश्वरूपी चक्र न भासेंगे और भ्रम निवृत्त हो जावेगा । जो वस्तु फुरने में उपजी है सो अफुर हुए निवृत्त हो जाती है । यह विश्व अज्ञान से उपजा है और ज्ञान से लीन हो जायेगा । इससे विश्व को भ्रममात्र जानो । रामजी ने पूछा, हे भगवन् आपने कहा कि ब्रह्मा, रुद्र आदि और उत्पत्ति, सम्हार करने पर्यन्त सब विश्व भ्रम मात्र है, इस जानने से क्या सिद्धि होता है, यह तो प्रत्यक्ष दुःखदायक भासता है? वसिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो कुछ तुम देखते हो सो सम्यक् दृष्टि से सब आत्मरूप है-कुछ भिन्न नहीं-और असम्यक् दृष्टि करके विश्व है तो दृष्टि का भेद है-सम्यक् असम्यक् देखने में भी अधिष्ठान ज्यों का त्यों है । जैसे अन्धकार में रस्सी सर्प हो भासती है और भयदायक होती है और जो प्रकाश से देखिये तो रस्सी भी भासती है, तैसे ही जिसने आत्मा को जाना है उसको दृश्य भी आत्मरूप है । अज्ञानी को विश्व भासता और दुःखदायी होता है । जैसे मूर्ख बालक अपनी परछाहीं में वैताल कल्पकर भयवान् होता है और अपने न जानने से दुःख पाता है जो जाने तो भय किस निमित्त पावे? हे रामजी! जीव अपने संकल्प से आप बन्धायमान होता है । जैसे कुसवारी कीट अपने बैठने का स्थान बनाकर आपही फँस मरती है, तैसे ही अनात्मा में अहं प्रतीति करके जीव आपही दुःख पाता है । हे रामजी! आपही संसारी होता है और आपही ब्रह्म होता है जब दृश्य की ओर फुरता है तब संसारी होता और जब स्वरूप की ओर आता है तब ब्रह्म आत्मा होता है । इससे जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो , जो संसारी होने की इच्छा हो तो संसारी हो और जो ब्रह्म होने की इच्छा हो तो ब्रह्म हो जावो । मुझसे

पूछो, तो दृश्य अहंकार को त्याग कर आत्मा में स्थित हो रहो-विश्व भ्रममात्र है, कुछ वास्तव है नहीं। यह पुरुषार्थ है कि संकल्प से संकल्प को काटो। जब बाहर से अन्तर्मुख होगे तब ब्रह्म ही भासेगा और दृश्य की कल्पना मिट जावेगी, क्योंकि आगे भी नहीं था। हे रामजी! जो सत् वस्तु आत्मा है उसका अनेक यत्नों से नाश नहीं होता और जो असत्य अनात्मा है उसके निमित्त यत्न कीजिये तो सत्य नहीं होता। जो सत्य वस्तु है उसका कदाचित् अभाव नहीं और असत् है उसका भाव नहीं होता असत् वस्तु तबतक भासती है जबतक उसको भले प्रकार नहीं जाना और जब विचार से देखिये तब नाश हो जाती है। अविद्या के पदार्थ विद्या से नष्ट हो जाते हैं-जैसे स्वप्न का सुमेरु पर्वत सत्य हो तो जाग्रत में भी भासे-इससे है नहीं। यह संसार जो तुमको भासता है सो स्वरूप के ज्ञान से नष्ट हो जावेगा। हमसे पूछो तो हमको आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासता, सब आत्मा ही है, यह भी नहीं है कि यह जीव अज्ञानी है किसी प्रकार मोक्ष होवे। न हमको ज्ञान से प्रयोजन है, न मोक्ष होने से प्रयोजन है, क्योंकि हमको सब आत्मा ही भासता है। हे रामजी! जबतक चेतन है तबतक मरता और जन्म भी पाता है, जब जड़ होता है तब शान्ति को प्राप्त होकर मुक्त होता है चेतन दृश्य की ओर फुरने को कहते हैं, इसी से जन्म मरण के बन्धन में आता है। जब दृश्य के फुरने से जड़ हो जावे तब मुक्त हो। इसका होना ही दुःख है और न होना ही मुक्ति है। अहंकार का होना बन्धन है और अहंकार का न होना मुक्ति है। इससे पुरुष प्रयत्न यही है कि अहंकार का त्याग करो और चैतन्य ब्रह्मघन अपने आप में स्थित हो। जिसको संसार की सत् भावना है उसको संसार ही है , ब्रह्म नहीं और जिसको ब्रह्म भावना हुई है उसको ब्रह्म ही भासता है। हे रामजी! जो पाताल में जावे अथवा सम्पूर्ण पृथ्वी, दशोदिशा, आकाश, देवताओं के स्थान में फिरे तो भी सुख न पावेगा और आत्मा का दर्शन न होगा, क्योंकि अनात्मा में अहंकार किये से सुख नहीं। जब आत्मप्रदर्शी होकर देखोगे तो सब आत्मा ही भासेगा ।।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विश्वविजयो नाम सप्तदशाधिकशततमस्सर्गः ।।117।।

अनुक्रम

विश्वप्रमाण वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह संसार संकल्पमात्र है और तुच्छहै । पर्वत, नदियाँ, देश और काल सब भ्रम से सिद्ध हैं । जैसे स्वप्न में पर्वत, नदियाँ, देश, काल, निद्रादोष से भासते हैं, तैसे ही अज्ञाननिद्रा से यह संसार भासता है । हे रामजी! जागकर देखो तो संसार है नहीं, इसका तरना महासुगम है और सुमेरु पर्वतादिक जो भासते हैं सो कमल की नाईं कोमल हैं । जैसे कमल के मूँदने में कुछ यत्न नहीं तैसे ही यह निवृत्त होते हैं । अज्ञानियों की स्थूलदृष्टि है और आकार को सब देख रहे हैं जैसे पवन का चलना जाना जाता है और जब चलने से रहित होता है तब मूर्ख नहीं जानता तैसे ही भूत प्राणी आकार को जानते हैं, और इसमें जो निराकार स्थित है उसको नहीं जानते जैसे पवन चलता है तो भी पवन है और ठहरता है तो भी पवन है तैसे ही विश्व फुरता है सो भी आत्मा है और अफुरने में भी वही है । इससे विश्व भी आत्म रूप है कुछ भिन्न नहीं, जो सम्यक््दर्शी हैं उनको फुरने न फुरने में आत्मा ही भासता है । जैसे स्पन्द निस्पन्दरूप पवन ही है तैसे ही ज्ञानी को सर्वदा एकरस है अज्ञानी को द्वैत भासता है । जैसे ठूँठ में बालक पिशाचबुद्धि करता है तैसे ही आत्मा में जगद््बुद्धि अज्ञानी करता है और जैसे नेत्रदोष से आकाश में तरुवरे भासते हैं तैसे ही मन के फुरने से जगत् भासता है । हे रामजी! जैसे वायु का रूप कदाचित् नहीं तैसे ही जगत् का अत्यन्त अभाव है और जैसे मरुस्थल में जल का अभाव है तैसे ही आत्मा में जगत् का अभाव है । हे रामजी! सुमेरु पर्वत, आकाश, पाताल, देवता, यक्ष, राक्षस इत्यादिक ऐसे अनेक ब्रह्माण्ड इकट्ठे करके विचाररूपी काँटे में रक्खे और पीछे आधीरत्ती डालें तो भी पूरे नहीं होते क्योंकि हैं नहीं, अविचारसिद्ध हैं । स्वप्न के पर्वत जागे पर चावल प्रमाण भी नहीं रहते, क्योंकि हैं नहीं, भ्रममात्र हैं । हे रामजी! इस संसार की भावना मूर्ख करते हैं । ऐसे जो अनात्मदर्शी पुरूष हैं उनको ऐसे जानो कि जैसे लुहार की फूँकनी से पवन निकलता है तैसे ही उन पुरुषों के श्वास वृथा आते जाते हैं । जैसे आकाश में अँधेरी व्यर्थ उठती है तैसे ही उन पुरुषों का जीना और सब चेष्टा व्यर्थ है और वे आत्मघाती हैं अर्थात् अपना आप नाश करते हैं और उनकी चेष्टा दुःख के निमित्त है । यह अपने अधीन है । जो दृश्य की ओर होता है तो संसार होता है और जो अन्तर्मुख होता है तो सब आत्मा ही होता है । यह संसार मिथ्या है, न सत् कहिये, न असत् कहिये, भ्रम से हुआ है ये जीव भूत, भविष्य और वर्तमानकाल में विपरीत देखते हैं जैसे अग्नि शीतल होती है, आकाश पाताल में, पाताल आकाश में, तारे पृथ्वी पर, आकाश के ऊपर भी होती है, बादल बिना मेघ वर्षा करता है और आकाश में हल फिरते हैं ऐसे कौतुक मैं देखता हूँ । हे रामजी! इसमें कुछ आश्चर्य नहीं, मन करके सब कुछ होता है । जैसे मनोराज किया तैसा ही आगे स्थित होता है और सिद्ध होती है । पर्वत पुर में भिक्षुक के समान भिक्षा माँगते फिरते हैं, ब्रह्माण्ड उड़ते फिरते हैं, बालू से तेल निकलता है और मृतक युद्ध करते हैं, मृग गाते हैं और वन नृत्य करते हैं हे रामजी! मनोराज करके सब कुछ बनता है । चन्द्रमा की किरणों से पर्वत भस्म होते हैं, इसमें क्या आश्चर्य है? ऐसे ही यह संसार भी मनोराज है और शीघ्र संवेग है इससे इसको जीव सत् मानता है और आगे जो बालू से तेलादिक कहे है उनको सत् नहीं जानता, क्योंकि उसमें मृदु संवेग है पर दोनों तुल्य हैं । हे रामजी जिनको सत् और असत् कहते हो सो आत्मा में दोनों नहीं । ये जो तुमको सत् पदार्थ भासते हैं तो अग्नि आदिक शीतल भी सत् हैं और जो मिथ्या भासते हैं तो वे भी मिथ्या हैं, केवल तीव्र और मृदु संवेग का भेद है । जब तीव्र संवेग दूर होता है तब सब मिथ्या मानते हैं । जैसे स्वप्न से जागा हुआ स्वप्न को मिथ्या कहता है और जाग्रत्

को सत्य कहता है पर दोनों मनोराज हैं । हे रामजी! जितने आकार दृष्टि आते हैं उन सबको मिथ्या जानो, न तुम हो, न मैं हूँ और न यह जगत् है परमार्थ सत्ता ज्यों की त्यों है, उसमें अहं त्वं का उत्थान कोई नहीं, वह केवल शान्तरूप, आकाशरूप और निराकाररूप है जिसमें कुछ द्वैत नहीं-केवल अपने आपमें स्थित है जैसे बालक मृत्तिका के हाथी, घोड़े और मनुष्य बनाकर उनके नाम कल्पता है-कि यह राजा है, यह हाथी है, यह घोड़ा हे सो मृत्तिका से भिन्न नहीं पर बालक के मन में उनके नाम भिन्न भिन्न दृढ़ होते हैं, तैसे ही मनरूपी बालक नाना प्रकार की संज्ञा कल्पता है पर आत्मा से कुछ भिन्न नहीं । इसे हे रामजी! तुम किसका भय करते हो? निर्भय हो रहो । तुम्हारा स्वरूप शुद्ध, निर्भय और अविद्या के कारण कार्य से रहित है उसमें स्थित रहो । यह संसार तुम्हारे फुरने में हुआ है, आत्मा न सत्य है, न असत्य है, न जड़ है, न चेतन है, न प्रकाश है, न तम है, न शून्य है, न अशून्य है । शास्त्र ने जो विभाग कहे हैं कि यह जड़ है, यह चेतन है सो इस जीव के जगाने के निमित्त कहे हैं । आत्मा में कोई वास्तव संज्ञा नहीं-केवल आत्मत्वमात्र है इससे दृश्य की कलना त्याग कर आत्मा में स्थित हो । ब्रह्मा से आदि स्थावर पर्यन्त सब कलनामात्र है, इसमें क्या आस्था करनी है? संसार के भाव दोनों तूल्य हैं । फुरना जैसा भाव का है तैसा ही अभाव का है-स्वरूप में दोनों की तुल्यता है और व्यवहारकाल में जैसा है तैसा ही है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विश्वप्रमाणवर्णनं नामाष्टदशाधिकशततमस्सर्गः ॥118॥

अनुक्रम

जगद्भाव प्रतिपादन

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! भूमिका प्रसंग यहाँ चला था, उसमें जो सार आपने कहा वह मैं समझ गया, अब भूमिकाओं का विस्तार कहिये । योगी का शरीर जब छूटता है और स्वर्ग के भोगों को भोगकर गिरता है तो फिर उसकी क्या अवस्था होती है सो भी कहिये । वशिष्ठ जी बोले, हे रामजी! जिस योगी को भोग की वाच्छा होती है वह स्वर्ग में जाकर भोग भोगता है पर यदि उसको और भी भोगने की इच्छा होती है तो वह मध्यमण्डल मनुष्यलोक में पवित्रस्थान और धनवानों के गृह में जन्म लेता है और जो उसको भोग की वाञ्छा और नहीं होती तो ज्ञानवानों के गृह में जन्म लेता है । थोड़े काल के उपरान्त उसका पिछला संस्कार आ फुरता है वह स्मरण करके आत्मा की ओर होता जाता है । जैसे कोई पुरुष लिखता हुआ सो जाता है पर जब जागता है तब उस लिखे को देखकर फिर आगे लिखता है तैसे ही वह योगी पूर्व के अभ्यास को दिन दिन बढ़ाता जाता है । वह अज्ञानी का संग नहीं करता क्योंकि वह भोगों के सम्मुख है और आत्ममार्ग से वहि र्मुख है, जो चुगुली करनेवाले हैं उनका संग नहीं करता, उसके सब अवगुण नाश हो जाते हैं और दम्भ, गर्व, राग, द्वेष, भोग की तृष्णा आदि स्वाभाविक छूट जाते हैं । वह शान्ति को प्राप्त होता है और उसको कोमलता, दया आदि शुभगुण स्वाभाविक प्राप्त होते हैं । हे रामजी! इस निश्चय को पाकर वह वर्णाश्रमके धर्म यथाशास्त्र करता हुआ संसार समुद्र के पार के निकट प्राप्त होता है पर पार नहीं होता यह भेद है सो तीसरी भूमिका है-फिर मोह को नहीं प्राप्त होता । जैसे चन्द्रमा की किरणें कदाचित् ताप को नहीं प्राप्त होती तैसे ही तीसरी भूमिकावाला संसाररूपी गढ़े में नहीं गिरता । हे रामजी! यह सप्तभूमिका ब्रह्मरूप हैं पर इतना ही भेद है कि तीन भूमिका जाग्रत् रूप हैं, चतुर्थ स्वप्न है, पंचम सुषुप्ति है, षष्ठ तुरीय है और सप्तम तुरीयातीत है । हे रामजी! प्रथम तीन भूमिकाओं में संसार की सत्यता भासती है इससे जाग्रत् कही है और पिछली चारों में संसार का अभाव है इससे जाग्रत् से विलक्षण है । जाग्रत् में घट, पट आदिक सत् भासते हैं कि घट घट ही है और पट पट ही है अन्यथा नहीं अपना ही कार्य सिद्ध करते हैं, इससे अपने काल में ज्यों के त्यों हैं । इसी प्रकार सब पदार्थ हैं । तीसरी भूमिकावाला स्थावर-जंगम को जानता है और नाम और रूप से ग्रहणकरता है पर हृदय में राग द्वेष नहीं धारता, क्योंकि विचार करके तुच्छ जाने है पर संसार का अत्यन्त अभाव नहीं जाना और ब्रह्मस्वरूप को भी नहीं जानता, क्योंकि उसको स्वरूप का साक्षात्कार नहीं हुआ । जब स्वरूप को जाने तब संसार का अत्यन्त अभाव हो जावे । इन तीनों भूमिकाओं से संसार की तुच्छता होती है नष्टता नहीं होती । इनको पाकर जब शरीर छूटता है तब और जन्म में उसको ज्ञान प्राप्त होता है और दिन दिन में ज्ञानपरायण होता है जब बुद्धि शुद्ध होती है तब ज्ञान उपजता है । जैसे बीज से प्रथम अंकुर होता है और फिर डाल, फूल, फल निकलते हैं तैसे ही प्रथम भूमिका ज्ञानका बीज है, दूसरी अंकुर है, तीसरी डाल है और चतुर्थ से ज्ञान की प्राप्ति होती है सो ही फल है प्रथम तीन भूमिकाओंवाला धर्मात्मा होता है और पुरुषों में श्रेष्ठ है । उसका लक्षण यह है कि वह निरहंकार, असंगी और धीर होता है । उसकी बुद्धि से विषयों कि तृष्णा निवृत्त हो जाती है और वह आत्मपद की इच्छा रखता है । यह पुरुष श्रेष्ठ कहाता है, प्रकृत आचार में यथाशास्त्र विचरता है और शास्त्रमार्ग को कदाचित् नहीं छोड़ता जो शास्त्रमार्ग को मर्यादा के साथ अपने प्रकृत आचार में बिचरता है सो पुरुष श्रेष्ठ है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! पीछे आपने कहा है कि जब मनुष्य शरीर छोड़ता है तब एक मुहूर्त में उसको युग व्यतीत होता है और जन्म से आदि मरणपर्यन्त जैसी किसी को भावना होती है तैसा आगे भासता है

सो एक मुहूर्त में युग कैसे भासता है? यह कहिये । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह जगत् जो तीनों कालोंसहित भासता है वह ब्रह्मस्वरूप ही है, भिन्न कुछ नहीं-समान ही है । जैसे ईख में मधुरता है तैसे ही ब्रह्म में जगत् है और जैसे तिलों में तेल है और मिरचों में तीक्ष्णता है तैसे ही आत्मा में जगत् है । जैसे तिलों में तेल होता है तैसे ही ब्रह्म में जगत् है । कहीं सत्, कहीं असत्, कहीं जड़, कहीं चेतन, कहीं शुभ, कहीं अशुभ, कहीं नरक, कहीं मृतक, कहीं जीवित, ब्रह्म से काष्ठपर्यन्त भाव अभावरूप होता । वह सत् असत् से विलक्षण है । आत्मसत्ता से अब सत्य है और भिन्न देखिये तो असत्य है । हे रामजी! जिनको सत्य असत्य जानते हो कि पृथ्वी आदिक पदार्थ सत्य और आकाश के फूलादिक असत्य हैं सो दोनों तुल्य हैं । जो विद्यमान पदार्थ सत्य मानिये तो आकाश के फूल भी सत् मानिये । जैसे स्वप्न में कई पदार्थ सत् और असत् भासते हैं तैसे ही जाग्रत में भासते हैं पर फुरना दोनों का समान है । जैसे सत्य पदार्थों का फुरना हुआ तैसा ही असत् का भी हुआ है, फुरने से रहित सत् असत् दोनों का अभाव हो जाता है । इससे यह विश्व भ्रम से सिद्ध हुआ है । जैसे जल में पवन से चक्र उठते हैं तैसे ही आत्मा में फुरने से संसार भासता है, इसकी भावना त्यागकर स्वरूप में स्थित हो रहो । तुमने जो प्रश्न किया कि एक मुहूर्त में युग कैसे भासता है? उसका उत्तर सुनो । जैसे किसी पुरुष को स्वप्ना आता है तो एक क्षण में बड़ा काल बीता भासता है तथा और का और भासता है सो आश्चर्य तो कुछ नहीं, मोह से सब कुछ उत्पन्न होता है और भ्रम से दृष्टि आता है । हे रामजी! जैसे पुरुष सोया है तो एक आपही होता है पर उसमें नाना प्रकार का जगत भ्रम से भासता है तैसे ही स्वरूप के प्रमाद से जीव कई भ्रम देखता है । स्वरूप के जाने बिना भ्रम का अन्त नहीं होता इससे तुम और प्रश्न किस निमित्त करते हो? एक चित्त को स्थिर करके देखो तो न कोई संसार भासेगा न कोई संसार भासेगा न कोई जन्म-मरण होंगे, न कोई बन्ध है, न मोक्ष है केवल आत्मा ही भासेगा । जब संकल्प फुरता है तब अविद्या से आपको बन्ध जानता है और संकल्प से रहित मुक्त जानता है और विद्या से मुक्त जानता है पर आत्मस्वरूप ज्यों का त्यों है उसे न बन्ध है, न विद्या और न अविद्या है-केवल शान्तरूप है । इससे सर्वदा सर्व प्रकार, सर्व ओर से ब्रह्म ही है दूसरा कुछ नहीं । हे रामजी! जब स्वरूप की भावना होती है तब संसार की भावना जाती रहती है-ये सर्वशब्द कलना में यह पदार्थ है, यह नहीं है आत्मा में यह कोई नहीं । जैसे पवन चलने और ठहरने में एक ही है तैसे ही विश्व चित्त का चमत्कार है । ब्रह्मा से चींटी पर्यन्त ब्रह्मसत्ता ही अपने आपमें स्थित है और आत्मा ही के आश्रय सर्व शब्द फुरते हैं पर आत्मा फुरने और न फुरने में सम है, क्योंकि दूसरा कोई नहीं । हे रामजी! जो ब्रह्मसत्ता ही है तो आकाश क्या है, पृथ्वी क्या है, मैं क्या हूँ, यह जगत् क्या है, ये प्रश्न बनते ही नहीं । एक मन को स्थिर करके देखो कि ब्रह्मा से चींटी पर्यन्त कुछ भी पदार्थ भासता है जो सत् भासे तो प्रश्न कीजिये । इससे जैसे भ्रम से दूसरा चन्द्रमा भासता है तैसे ही जगत् भी भ्रम से भासता है । रूप अर्थात् दृश्य, अवलोक अर्थात् इन्द्रियाँ, मनस्कार अर्थात् मन की स्फूर्ति, ये शब्द कलना में फुरे हैं सो सब मिथ्या है-आत्मा में ये कोई नहीं । हे रामजी! आकाश आदिक जो पदार्थ हैं सो भावना में स्थित हुए हैं । जैसी भावना करता है तैसे ही पदार्थ-सिद्ध होते हैं और भासते हैं । जब संसार की भावना जावे तब कोई पदार्थ न भासे । हे रामजी! सुषुप्ति में ही जब इसका अभाव हो जाता है तो तुरीया में कैसे भान हो । जब जीव स्वरूप से गिरता है तब उसको संसार भासता है और संसार में वासना और प्रमाद से घटीयन्त्र की नाईं फिरता है । स्वरूप से उतर कर अनात्म में अभिमान करने को प्रमाद कहते हैं कि मैं हूँ । यही अज्ञान है जिससे दुःख पाता है, जब अज्ञान नष्ट हो तब संसार के शब्द अर्थ का अभाव हो जावे । अहंकार से संसार होता

है, संसार का बीज अहंकार ही है । अहंकार में आत्माभिमान करने को कहते हैं । हे रामजी! शुद्ध आत्मा अहंकार के उत्थान से रहित केवल शान्तरूप है और विश्व भी वही रूप है । इसकी भावना में दुःख है । यह संवित शक्ति आत्मा के आश्रय फुरती है । जैसे तेल की बूँद जल में डालिये तो चक्र की नाईं फिरती है तैसे ही संवेदन शक्ति आत्मा के आश्रित फुरती है और ब्रह्म एक स्वरूप है उसका स्वभाव ऐसे है । जैसे मोर का अण्डा और उसका वीर्य एकरस है अपने स्वभाव से वीर्य ही नाना प्रकार के रंग धारता है तो भी मोर से कुछ भिन्न नहीं, तैसे ही आत्मा के संवेदन स्वभाव से नाना प्रकार का विश्व भासता है परन्तु आत्मा से कुछ भिन्न नहीं- आत्मरूप ही है सम्यक््दर्शी को नाना प्रकार में एक आत्मा ही भासता है और अज्ञानी को नाना प्रकार का जगत् भासता है । हे रामजी! ब्रह्मरूपी एक शिला है उसमें त्रिलोकरूपी अनेक पुतलियाँ कल्पित हैं । जैसे एक शिला में शिल्पी पुतलियाँ कल्पता है इसमें इतनी पुतलियाँ होंगी सो वे पुतलियाँ उसके चित्त में हैं और शिला में कुछ नहीं हुआ तैसे ही आत्मारूपी शिला में चित्तरूपी शिल्पी नाना प्रकार के पदार्थरूपी पुतलियाँ कल्पता है सो सर्व आत्मा रूप है । इससे पदार्थों की भावना त्यागकर आत्मा में स्थित हो । यह संसार भी निर्वाच्य है; क्योंकि ब्रह्म ही है ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं न कोई उपजता है, न कोई विनशता है ज्यों का त्यों आत्मा ही स्थित है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगद्भावप्रतिपादनं नाम शताधिककैकोनविंशतितमस्सर्गः ||119||

अनुक्रम

पिण्ड निर्णय

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! तो इस संसार का बीज अहंकार हुआ इसका पिता अहंकार है तो मिथ्या संसार जो विद्यमान भासता है सो भ्रमरूप हुआ? और जो भ्रमरूप है तो लोग और शास्त्र, श्रुति और स्मृति क्यों कहते हैं कि इसका शरीर पिण्ड से होता है? और जो पिण्ड से होता है तो आप कैसे भ्रम कहते हैं? जो भ्रम है तो लोग, शास्त्र, श्रुति और स्मृति क्यों पिण्ड से कहते हैं? इससे मेरे संशय को निवृत्त कीजिये । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मेरा कहना सत्य है । ऐसे ही है । ब्रह्म में ब्रह्मत्व स्वभाव है और जगत् का स्वभाव भी वही है । हे रामजी! आदि को किंचन हुआ और चित्तशक्ति फुरी है वही ब्रह्मरूप हुआ है और उसको पदार्थों का मनोराज हुआ है । यह आकाश है, यह पवन है; यह कर्तव्य है, यह अकर्तव्य है, यह सत्य है, यह झूठ है इत्यादि जबतक मनोराज है तबतक सर्व मर्यादा ऐसे ही है । फिर ब्रह्मा में यह चिन्तना हुई कि जगत् की मर्यादा के निमित्त वेद को कहूँ कि यह पदार्थ शुभ है और यह अशुभ है । हे रामजी! आत्मा में कुछ द्वैत नहीं, मायारूप जगत् में मर्यादा है, तो अधः, ऊर्ध्व, नीच, ऊँच कौन कहे ? यह मर्यादा भी वेद में नीति निश्चय हुई है कि ये शुभ कर्म हैं, इनके किये से स्वर्ग सुख ही भोगते हैं और ये अशुभकर्म हैं इनके किये से नरक-दुःख भोगते हैं । हे रामजी! जैसे वेद में निश्चय किया है तैसे ही जीव अपनी वासना के अनुसार भोगता है । हे रामजी! यह रचित शक्ति नीति होकर ब्रह्मादिक में फुरी है परन्तु उनको सदा स्वरूप में निश्चय है इससे वे बन्धन नहीं होते और ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र ने यह वेद माला धारी है कि जैसा कोई कर्म करे तैसा ही फल देते हैं, यह वेद सब की नीति है । हे रामजी जिन पुरुषों को संसार की सत्यता-दृढ़ हुई है वे जैसे कर्म शुभ अथवा अशुभ करते हैं तैसे ही शरीर को धारते हैं । इसमें संशय नहीं कि जो शास्त्रमर्यादा को अपनी इच्छा से उल्लंघित बर्तते हैं सो शरीर त्यागकर कुछ काल मूर्छित हो जाते हैं और आत्मज्ञान बिना एक मुहूर्त में जागकर बड़े नरकों को चले जाते हैं । जिनको शून्य भावना हुई है कि आगे नरक स्वर्ग कोई नहीं और जो लोक परलोक के भय को त्यागकर शास्त्र से बाह्य बर्तते हैं सो मरकर पत्थर वृक्षादिक जड़योनि पाते हैं और चिरकाल से उनकी वासना प्रणमती है फिर दुःख के भागी होते हैं और जिनको आत्मभावना हुई है और संसार की भावना निवृत्त हुई है वे शास्त्र विहित करें अथवा अविहित करें उनको कोई बन्धन नहीं । हे रामजी! चित्तरूपी भूमि में निश्चयरूपी जैसा बीज बोता है तैसा ही काल पाकर उगता है-यह निःसंशय है । इससे तुम आत्मभावनारूप बीज बोओ कि सर्व आत्मा है । ऐसी भावना करो तब शुद्ध आत्मा ही भासेगा और जिनको संसार का निश्चय हुआ है उनको संसार है । हे रामजी! जो पुरुष धर्मात्मा हैं उनको उसी वासना के अनुसार भासता है । धर्मात्मा भी दो प्रकार के हैं-एक सकामी और दूसरे निष्कामी । जो धर्म करते हैं और पापरूपी कामना सहित हैं तो वे स्वर्गभोग फिर गिरते हैं और जो निष्काम ईश्वरार्पण कर्म करते हैं उनका अन्तःकरण शुद्ध होकर ज्ञान की प्राप्ति होती है । यह भी संसार में मर्यादा है कि जैसा किसी को निश्चय होता है तैसा ही संसार को देखता है । पिण्ड करके भी शरीर होता है क्योंकि यह भी आदि नीति में निश्चय हुआ है जैसे आदि नीति में निश्चय हुआ है तैसे ही होता है । जो पवन है सो पवन ही है और जो अग्नि ही है सो अग्नि ही है इसी प्रकार कल्पपर्यन्त जैसे मनोराज हुआ है तैसे ही स्थित है । जैसे जल नीचे ही को जाता है-ऊँचे नहीं जाता, तैसे ही जो आदि में निश्चय हुआ है वही कल्पपर्यन्त रहता है । हे रामजी! जगत् व्य वहार में तो ऐसे है और परमार्थ से

दूसरा कुछ हुआ नहीं, इस जीव ने आकाश में मिथ्या देह रची है। परमार्थ से केवल निराकार अद्वैत आत्मा है शरीर इसके साथ नहीं है इससे जगत् कैसे हो?

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पिण्डनिर्णयो नाम शताधिक विंशतिततमस्सर्गः ||120||

अनुक्रम

बृहस्पतिबलिसंवाद वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुम्हारे प्रश्न पर एक इतिहास बृहस्पति और बलि राजा का है सो सुनो । जब छः कल्प व्यतीत हुए तो दूसरे परार्द्ध में राजा बलि हुआ । वह अति महापराक्रमी था । उस राजा बलि ने सम्पूर्ण दैत्यों और राक्षसों को जीतकर अपने वश किया और उन पर अपनी आज्ञा चलाई । इन्द्र को भी जीतकर अपने वश किया और उसका सम्पूर्ण ऐश्वर्य ले लिया । देवता और किन्नरों पर उसकी आज्ञा चली और भूलोक भी उसने ले लिया । जब वह सबको ले चुका तब उसने धर्म आचार को ग्रहण किया । एक समय सब सभा बैठी थी और यह कथा चली कि जन्म कैसे होता है और मरण कैसे होता है? तब राजा बलि ने देव गुरु बृहस्पति से प्रश्न किया कि हे ब्राह्मण! यह पुरुष जब मृतक होता है तब शरीर तो भस्म हो जाता है फिर कर्मों के फल कैसे भोगता है और शरीर बिना कैसे आता जाता है सो कहिये? बृहस्पति बोले, हे राजन्! जीव के देह नहीं है । जैसे मरुस्थल में जल भासता है पर है नहीं, तैसे ही जीव के साथ शरीर भासता है और है नहीं । जीव न जन्मता है, न मरता है, न भस्म होता है, न दुःखी होता है । यह सदा अच्युतरूप है पर स्वरूप के प्रमाद से आपको दुःखी जानता है कि मैं इनको भोगता हूँ और जन्मा हूँ इतना काल हुआ है, यह मेरी माता है यह पिता है, मैं इनसे उपजता हूँ और फिर आपको मृतक हुआ जानता है । हे राजन्! भ्रम से ऐसे देखता है जैसे निद्राभ्रम से स्वप्न में देखता है तैसे ही अज्ञान से जीव आपको मानता है । जब मृतक होता है तब जानता है कि मेरा शरीर पिण्ड से हुआ है और अब मैं दुःख सुख भोगूँगा । जैसे स्वप्न में आकाश होता है और वहाँ वासना से अपने साथ शरीर देखता है और सुख दुःख भोगता है तैसे ही मर कर जीव अपने साथ शरीर देखता है और दुःख सुख का भागी होता है। परमार्थ से इसके साथ शरीर ही नहीं तो जन्म मरण कैसे हो? स्वरूप से प्रमाद करके देहधारी की नाईं स्थित हुआ है और उस देह से मिलकर जैसी-जैसी भावना करता है तैसे ही फल भोगता है और वासना के अनुसार जैसी भावना होती है तैसे ही आगे शरीर देखता है और पञ्चभौतिक संसार को देखता है, इस प्रकार भ्रमता है और जन्मता मरता आपको देखता है । जैसे समुद्र से तरंग उठता और मिट जाता है तैसे ही शरीर उपजता और नष्ट होता है । शरीर के सम्बन्ध से ही उपजता और विनाशता भासता है । यह आश्चर्य है कि आत्मा ज्यों का त्यों स्वाभाविक स्थित है उसमें वासना के अनुसार विश्व देखता है । हे राजन्! विश्व इसके हृदय में स्थित है और भावना के अनुसार आगे देखता है । इस जीव में विश्व है और विश्व में जीव नहीं । जैसे तिल में तेल है और तेल में तिल नहीं और सुवर्ण में भूषण कल्पित है भूषण में सुवर्ण कल्पित नहीं वैसे ही विश्व सत् भी नहीं और असत् भी नहीं । सत् इस कारण नहीं कि चलरूप है स्थित नहीं और असत् इससे नहीं कि विद्यमान भासता है । इससे इसकी भावना त्यागो, यह दृश्य मिथ्या है और इसका अनुभव मिथ्या है और इसका जाननेवाला अहंकार जीव भी मिथ्या है । जैसे मरुस्थल में जल मिथ्या है तैसे ही आत्मा में अहंकार और जीव मिथ्या है । हे राजन्! जबतक शास्त्रों के अर्थ में चपलता है और स्थिति से रहित है तबतक संसार की निवृत्ति नहीं होती और जब दृश्य के फुरने और अहंकार से जड़ हो तब इसको आत्मपद की प्राप्ति हो । जबतक दृश्य की ओर फुरता है और चेतन सावधान है तबतक संसार में भ्रमता है । हे राजन्! आत्मा न कहीं जाता है, न आता है, न जन्मता है, न मरता है । जब चैत्य और चित्त का सम्बन्ध मिट जावे तब आनन्दरूप ही है ।चैत्य दृश्य को कहते हैं और चित्त अहंकारसंवित् का नाम है । जब दोनों का सम्बन्ध आपस में मिट जावेगा तब शेष आत्मा ही रहेगा । वह ब्रह्म आत्मा और शिवपद

है जिसमें वाणी की गम नहीं और अनुभव निर्वाच्य पद है उसी में स्थित हो । हे रामजी! जिस युक्ति से इसकी इच्छा अनिच्छा निवृत्त हो सो युक्ति श्रेष्ठ है जबतक फुरना उठता है कि यह भाव है यह अभाव है, तबतक इसको जीव कहते हैं और जब भाव अभाव का फुरना मिट जाता है तब जीवसंज्ञा भी जाती रहती है । शिवपद आत्मा को प्राप्त होता है जहाँ वाणी की गम नहीं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे बृहस्पतिबलिसंवादवर्णनंनाम शताधिकैकविंशतितमस्सर्गः ||121||

अनुक्रम

बृहस्पतिबलि संवाद

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार बृहस्पति ने बलि राजा से कहा था वह तेरे प्रश्न के उत्तर निमित्त मैंने कहा है । जबतक हृदय में संसार की सत्यता है तबतक जैसे कर्म करेगा तैसा ही शरीर धरेगा । हे रामजी! जिस वस्तु को चित्त देखता है उसकी ओर अवश्य जाता है, उसका संस्कार उसके हृदय में होता है और जिस पदार्थ को सत् जानता है उस पदार्थ का संस्कार स्थित हो जाता है । जैसे मोर के अण्डे में शक्ति होती है और जब समय आता है तब नाना प्रकार के रंग उसमें प्रकट भासते हैं, तैसे ही चित्त का संस्कार भी समय पाकर जागता है । हे रामजी! चित्त अज्ञान से उपजता है । फिर बृहस्पति ने कहा हे राजन्! बीज पृथ्वी पर उगता है आकाश में नहीं उगता, जैसा बीज पृथ्वी में बोया जाता है तैसा ही फल होता है । यहाँ अहंरूप अपना होना यही पृथ्वी है जैसी जैसी भावना से कर्म करता है तैसा तैसा चित्तरूपी पृथ्वी पर उत्पन्न होता है और फिर उसमें फल होता है । उन कर्मों के अनुसार देह धार के सुख दुःख को भोगता है । ज्ञानवान् आकाशरूप है आकाश में बीज कैसे उपजे? बीज भावना से अज्ञानरूपी पृथ्वी में उगता है । बलि ने पूछा, हे देवगुरो! आपने कहा कि जीव जीता हो अथवा मृतक हो इसे अपनी भावना ही से अनुभव होता है तो जब यह मृतक हुआ और इसकी पिण्डादिक में भावना न हुई तो फिर इसका शरीर कैसे होता है? बृहस्पति बोले, हे राजन्! पिण्डदान आदि क्रिया न हों पर उसके हृदय भावना हो और उसी समय किसी ने किया तो भी वह जो हृदय में भावना है वही कर्मरूप है और उसी में भासि आता है और जो उसके हृदय में भावना नहीं और किसी बान्धव ने उसके निमित्त पिण्डदान किया तो भी इसको भासि आता है, क्योंकि वह भी इसकी वासना में स्पन्द है । हे राजन् जो अज्ञानी जीव हैं और जिनको अनात्म में आत्मबुद्धि है उनके कर्म कहाँ गये हैं वे जो कर्म करते हैं वही उनके चित््रूपी भूमि में उगते हैं । उनके शरीरों की क्या संख्या है? वे वासनारूपी अनेक शरीर ज्ञान बिना स्वप्नवत् धारते है । बलि बोले, हे देवगुरो! यह निश्चय करके मैंने जाना है कि जिसको निष्किंचन की भावना होती है वह निष्किंचन पद को प्राप्त होता है और संसार की ओर से शिला की नाईं हो जाता है जिसकी जैसी भावना होती है तैसा ही स्वरूप हो जाता है जब संसार से पत्थरवत् हो तब मुक्त हो । बृहस्पति बोले, हे राजन्! निष्किंचन को जब जानता है तब संसार की ओर से जड़ है और केवल सारपद में स्थित होता है । जिसे गुण चला न सकें उसे जानिये कि निष्किंचन पद को प्राप्त हुआ है । वही निःसंदेह मुक्त है । हे राजन्! जबतक संसार सत्यता चित्त में स्थित है तबतक वासना है और जबतक वासना है तबतक संसार है । संसार के अभाव बिना शान्ति नहीं होती । स्वरूप के प्रमाद से चित्त हुआ है, चित्त से वासना हुई है और वासना से संसार हुआ है, इससे इस वासना को त्याग करो । फुरना फुरे तो निष्किंचनभाव हो और शान्तभागी हो ।हे राजन्! जिस युक्ति और क्रम से यह निष्किंचनरूप हो वही करे । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार से सुरपुर में असुर नायक को सुरगुरु ने जो पिण्डदानादि क्रिया कही वह मैंने तुमको सुनाई ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे बृहस्पतिबलिसंवादो नाम शताधिकद्वाविंशतितमस्सर्गः ।।122।।

अनुक्रम

चित्ताभाव प्रतिपादन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! चाहे जीता हो चाहे मृतक हो जो कुछ इसके चित्त के साथ स्पर्श होगा उसका अनुभव अवश्य करेगा । जैसे मोर के अण्डे में रस होता है तो वह समय पाकर विस्तार पाता है तैसे ही इसके भीतर जो वासना का बीज है वह यदि प्रकट नहीं भासता तो भी समय पाकर विस्तारवान् होता है । जबतक चित्त है-तबतक संसार है और जब चित्त नष्ट हो तब सब भ्रम मिट जावे । हे रामजी! चित्त भी असत् है तो विश्व भी असत्य है । जैसे आकाश में नीलता भ्रम से भासती है तैसे ही आत्मा में विश्व भ्रम है । हे रामजी! हमको न चित्त भासता है न विश्व भासता है, मैं भी आकाश हूँ और तुम भी आकाशरूप हो । यह चित्तस्वरूप के प्रमाद करके उपजता है । जैसे जहाँ काजल होता है वहाँ श्यामता भी होता है तैसे ही जहाँ चित्त होता है वहाँ वासना होती है । जब ज्ञानरूपी अग्नि से वासना दग्ध हो तब चित्त सत्पद को प्राप्त होता है और जीवित संज्ञा निवृत्त होती है । हे रामजी! चित्त के उपशम का उपाय मुझसे सुनो तो उससे चित्त निर्वाण हो जावेगा । जो भूमिका ज्ञान की हैं उनसे चित्त नष्ट हो जावेगा । उनमें से तीन भूमिका तो तुमसे क्रम से कही हैं और चार कहने को रही हैं । हे रामजी! प्रथम तीन भूमिकाओं में से जिसको एक भी प्राप्त होती है, उसको महापुरुष जानो । उसके मान और मोह निवृत्त होजाते हैं और उसे संगदोष नहीं लगता उसमें विचार स्थिति से कामना नष्ट हो जाती है और राग द्वेष न रहकर सुख दुःख में सम रहता है । ऐसा अमूढ़ पुरुष अव्ययपद को प्राप्त होता है । इतने गुण तीसरी भूमिका में प्राप्त होते हैं और चित्त नष्ट हो जाता है तब संहार नहीं दृष्टि आता है जैसे दीपक से देखिये तो अन्धकार नहीं मिलता ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चित्ताभावप्रतिपादनं नाम शताधिकत्रयोविंशतितमस्सर्गः ।123।।

अनुक्रम

पञ्चमभूमिका वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब तृतीय भूमिका दृढ़ पूर्ण होके दृढ़ अभ्यास से चौथी भूमिका उदय होती है तो अज्ञान नष्ट हो जाता है और सम्यक्ज्ञान चित्त में उदय होता है । तब वह पूर्णमासी के चन्द्रमावत् शोभा पाता है और आदि अन्त से रहित निर्विभाग चैतन्य तत्त्व में उस योगी का चित्त स्थित होता है और वह सबको सम देखता है । जिस योगी को चतुर्थ भूमिका प्राप्त होती है उसके नाना प्रकार के भेदभाव निवृत्त हो जाते हैं और अभेद सर्व आत्मभाव उदय होता है । उसको जगत् स्वप्न की नाईं भासता है और इन्द्रियों का व्यवहार स्वप्नवत् हो जाता है । जैसे जिनको सुषुप्ति होती है उसे काल में खाना-पीना रस से रहित हो जाता है तैसे ही चतुर्थ भूमिकावाले का व्यवहार रस से रहित होता है । जैसे सूर्य अपने प्रकाश से प्रकाशता है तैसे ही उसको आत्मा का प्रकाश उदय होता है और उसकी सब कल्पना नष्ट हो जाती है, न किसी पदार्थ में राग रहता है, न किसी में द्वेष रहता है । संसारसमुद्र में डुबानेवाले राग और द्वेष हैं । इष्ट पदार्थ में न राग होता है और न अनिष्ट में द्वेष होता है । इससे वह संसारसमुद्र में गोते नहीं खाता और उसके चित्त को मोहित नहीं कर सकता । हे रामजी! जब तक तृतीय भूमिका होती है तब तक उसको जाग्रत अवस्था होती है और जब चतुर्थ भूमिका प्राप्त होती है तब जगत् स्वप्न हो जाता है । तब वह सरजगत् को क्षणभंगुर और नाशवन्त देखता है और द्रष्टा, दर्शन, दृश्य भावना का अभाव हो जाता है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति का लक्षण कहिये और तुरीया और तुरीयातीत मुझसे कहिये । गुरु शिष्य को उपदेश करते खेदवान् नहीं होते । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तत्त्व का विस्मरण, पदार्थों की भावना और नाशवन्त पदार्थों को सत् की नाईं जानना ही जाग्रत है । पदार्थों में भाव-अभाव की सत्यता और जगत् को मिथ्या भावनामात्र जानना स्वप्ना कहाता है और जाग्रत और स्वप्न जिसमें लय हो जावें सो सुषुप्ति है यदि ज्ञान से भेद की शान्ति हो जावे और जाग्रत- स्वप्न-सुषुप्ति तीनों का अभाव हो ऐसी जो निर्मल स्थिति है सो तुरीया है । हे रामजी अज्ञानी जीव संसार का वर्षाकाल के मेघ की नाईं देखते हैं, क्योंकि उनको दृढ़ होकर भासता है पर जिसको चतुर्थ भूमिका प्राप्त हुई है वह शरत्काल के मेघ की नाईंसंसार को देखता है और जिसको पञ्चम भूमिका प्राप्त हुई है वह शरत्काल में मेघ नष्ट हुए की नाईं देखता है । जैसे निर्मल आकाश होता है तैसे ही उसको निर्मल भासता है । इन तीनों को वृत्तान्त सुनो । अज्ञानी जगत् को जाग्रत् की नाईं देखता है और उसको जगत् की दृढ़ सत्यता भासती है इससे उसे राग द्वेष उपजता है । चतुर्थ भूमिकावाला जगत् को ऐसे देखता है जैसे शरत्काल का मेघ वर्षा से रहित होता है । जैसे स्वप्न की सृष्टि होती है तैसे ही उसको जगत् की सत्यता नहीं भासती, क्योंकि उसको स्मृति स्वप्न की होती है और वह जगत् को स्वप्नवत् देखता है इससे उसको राग द्वेष नहीं उपजता । पञ्चम भूमिका की प्राप्ति वाला जगत् को सुषुप्ति की नाईं देखता है । जैसे शरत्काल का मेघ नष्ट होके फिर नहीं दीखता तैसे ही उसको संसार का भान नहीं होता और उसकी चेष्टा स्वाभाविक ही खुलता और मुँद जाता है- तैसे ही उसको कुछ यत्न नहीं-चेष्टा में जैसा प्रतियोगी स्वाभाविक प्राप्त होता है सो करता है । जैसे कमल के खुलने का प्रतियोगी जब सूर्य उदय हुआ तब खुल गया और जब मूँदने का प्रतियोगी रात्रि हुई तब मूँद जाता है-उसको कुछ खेद नहीं, तैसे ही उस पुरुष की अहं ममता से रहित स्वाभाविक चेष्टा होती है । हे रामजी! अहंता ममता रूपी जाग्रत् से वह पुरुष सुषुप्त हो जाता है और सम्पूर्ण भावरूप जो शब्द और अर्थ हैं उनका उसको अभाव हो जाता है, उसको अशेष शेषका मनन नष्ट हो जाता है और उसको पशु,

पक्षी, मनुष्य, देवता, भला , बुरा इत्यादिक भिन्न-भिन्न पदार्थों की भावना नहीं रहती, उसकी द्वैत कलना नष्ट हो जाती है और एक ब्रह्मसत्ता ही भासती है-संसार नहीं भासता । हे रामजी! अहंतारूपी तिल से संसाररूपी तेल उपजता है और अहंतारूपगन्ध उपजती है । संसार का कारण अहंता ही है । जिस पुरुष की अहंता नष्ट हो जाती । वह इन्द्रियों से इष्ट को पाकर हर्षवान् नहीं होता और अनिष्ट के प्राप्त हुए द्वेष नहीं करता । वह ऐसे आपको नहीं जानता कि मैं खड़ा हूँ वा बैठा हूँ अथवा चलता हूँ , वह आपको सर्वदा आकाशरूप जानता है और न भीतर देखता है न बाहर देखता है, न आकाश को देखता है और न पृथ्वी को देखता है, सर्व ब्रह्म ही देखता है उसको कुछ भिन्न नहीं भासता और वह दृष्टा, दर्शन, दृश्य तीनों का साक्षी रहता है । वह अहंकार का भी साक्षी,इन्द्रियों का भी साक्षी है और इनके साथ स्पर्श कदाचित् नहीं करता, जैसे ब्राह्मण चाण्डाल से स्पर्श नहीं करता । जैसे बीज से अंकुर होता है और फिर अंकुर से डाल होते हैं, इसी प्रकार सब पदार्थों का परिणाम है पर उनमें आकाश ज्यों का त्यों रहता है, क्योंकि उनके साथ स्पर्श नहीं करता, तैसे ही वह पुरुष दृष्टा, दर्शन, दृश्य से अतीत रहता है । जैसे मरुस्थल में जल असत् है तैसे ही उस पुरुष को त्रिपुटी और अहन्ता उस पुरुष की नष्ट हो जाती है इससे भेदबुद्धि भी नहीं रहती और इसी से वह शान्त, निर्मल, संसार से सुषुप्त, चैतन्य घनता से पूर्ण और सर्वदा शान्तरूप है । जिन नेत्रों से लोग संसार देखते हैं उनसे वह अन्धा हुआ है-अर्थ यह कि जिस मन से फुरना होता है उसको उसने नाश किया है और यदि भय, क्रोध, अहंकार, मोह इत्यादि उस पुरुष में दीखते भी हैं पर उसके हृदय में कुछ स्पर्श नहीं करते । जैसे पक्षी आकाश में उड़ता है परन्तु आकाश को स्पर्श नहीं कर सकता तैसे ही उस पुरुष को कोई विकार स्पर्श नहीं करता । हे रामजी! उस पुरुष के सम्पूर्ण संशय नष्ट हो गये हैं और वह सर्वदा स्वरूप में स्थित और शान्तरूप है, आत्मा से भिन्न वह किसी सुख की वाञ्छा नहीं करता और उसके सर्व संकल्प नष्ट हुए हैं । उसे आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासता, जाग्रत की नाईं दृष्टि आता है पर सर्वदा जाग्रत से सुषुप्त है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पञ्चमभूमिकावर्णनं नाम चतुर्विंशतिशताधिकतमस्सर्गः ||124||

अनुक्रम

षष्ठभूमिका उपदेश

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तीसरी भूमिका पर्यन्त जाग्रत है और चतुर्थ भूमिका में जाग्रत अवस्था को स्वप्नवत् देखता है । पञ्चम भूमिकावाला संसार से सुषुप्त होता है और छठी भूमिकावाला तुरीयापद में स्थित होता है और सर्वदा अक्रिय है अर्थात् किसी क्रिया में बन्धवान् नहीं होता । वह सर्वकाल आनन्दरूप है, भिन्न होकर आनन्द को नहीं भोगता आपही आनन्द है, केवल अपने आप स्वतः स्थित है और सर्वदा निर्वाण है । हे रामजी! सर्वक्रिया में वह यथाशास्त्र विचरता दृष्टि आता है परन्तु हृदय में शून्य है-उसको किसी से स्पर्श नहीं । जैसे आकाश में सर्व पदार्थ भासते हैं और आकाश का स्पर्श किसी से नहीं , तैसे ही सर्वक्रिया उसमें विद्यमान दृष्टि भी आती हैं तो भी वह हृदय से किसी से स्पर्श नहीं करता, क्योंकि उसको क्रिया में बन्धवान् करनेवाला जो अहंकार था सो उसका नष्ट हो गया है-केवल शान्तरूप है । चिन्मात्र में अहंभाव का उत्थान ही अज्ञान है और वही दुःखदायी है । जब अहंभाव निवृत्त होता है तब कोई कर्म स्पर्श नहीं करता । यद्यपि उसको विश्व दृष्टि भी आता है तो भी वास्तव से नहीं देखता, क्योंकि उसको सर्व ब्रह्म ही भासता है, खाता है और नहीं खाता, देता भी है और कदाचित् नहीं देता, लेता है तो भी कदाचित् किसी से कुछ नहीं लेता और चलता है परन्तु कदाचित् नहीं चला । हे रामजी! जो देश काल वस्तु पदार्थ हैं उन सब में वह आत्मभाव रखता है यद्यपि उसमें प्रत्यक्ष चेष्टा दीखती है तो भी उसके हृदय में कुछ नहीं । जैसे सपने में खाता, पीता, लेता, देता आपको भासता है और जागे से सबका अभाव हो जाता है तैसे ही जो पुरुष परमार्थसत्ता में जगा है उसको गुण व क्रिया अपने में नहीं भासती और जो करता है उसमें अभिलाषा नहीं रखता उसकी सब चेष्टा स्वाभाविक होती है । अपने निमित्त उसे कुछ कर्तव्य, नहीं । ऐसे भगवान् ने भी कहा है कि वह सर्व आत्मा ही देखता है । आकाश, पृथ्वी, सूर्य, ब्राह्मण हाथी, श्वान, चाण्डाल आदिक सबमें वह आत्मभाव देखता है सब आकारों को मृगतृष्णा के जलवत् देखता है कि इनका अत्यन्त अभाव है । दृष्टा, दर्शन, दृश्य भी उसको आकाशवत् भासते हैं और वह निर्मल आकशवत् शान्तरूप है । अहंकार से रहित वह केवल चिन्मात्र में स्थित है और ग्रहण-त्याग से अतीत सर्वकलना से रहित, निर्वाण, स्वच्छ, निर्मल आकाश रूप स्थित है । अहं मम आदिक चिद्ग्रन्थि उसकी भेदी हैं और अनात्म में अहं अभिंमान उसका नष्ट होता है-केवल शान्तरूप हो रहता है । जैसे क्षीर समुद्र से मन्दराचल पर्वत निकलकर शान्तरूप हुआ तैसे ही वह रागद्रेषरूपी क्षोभ करनेवाले अन्तःकरणरूपी समुद्र से निकल गया तब शान्तरूप अक्षोभ हुआ परम शोभा से शोभता है । जैसे विश्वकर्मा ने सूर्य का मण्डल रचा है और वह प्रकाश से शोभा पाता है तैसे ही ज्ञानरूपी प्रकाश से वह प्रकाशता है । जैसे चक्र फिरता फिरता रह जाता है और शान्त होता है तैसे ही अज्ञान से फिरता फिरता ठहरकर वह सदा शान्ति को प्राप्त हुआ है और अपने आपसे प्रकाशता है । जैसे पवन से रहित दीपक प्रकाशता है तैसे ही कलनारूपी पवन से रहित पुरुष अपने आपसे प्रकाशता है और एकरस है । जैसे घट के भीतर और बाहर शून्य है तैसे ही देह के भीतर बाहर आत्मा है । जैसे जल में घट रखिये तो उसके भीतर बाहर जल होता है तैसे ही वह पुरुष अपने आपसे भीतर बाहर पूर्ण हो रहा है- और एकरस है-द्वैतकलना को नहीं प्राप्त होता और उस पद को पाकर आनन्दवान् है । जैसे कोई मारे जाने के निमित्त पकड़ा गया हो और उसकी रक्षा हो तो वह बड़े आनन्द को प्राप्त होता है तैसे ही वह पुरुष आनन्द को प्राप्त होता है । जैसे कोई आधि व्याधि से छूटा आनन्द को प्राप्त होता है तैसे ही वह ज्ञानवान् आनन्द को प्राप्त होता है । जैसे कोई मंजिल चलने से थका हुआ शय्या पर विश्राम करे और

आनन्द को प्राप्त होता है तैसे ही ज्ञानवान् है । जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा अमृत से आनन्दवान् होता है तैसे ही वह पुरुष अपने आनन्द से घूर्म है । जैसे काष्ठ के जले से रहित अग्नि धुएँ से रहित प्रज्वलित होती है तैसे ही ज्ञानवान् अज्ञानरूपी धुएँ से रहित प्रज्वलित होती है, तैसे ही ज्ञानवान् अज्ञानरूपी धुएँ से रहित शोभता है । हे रामजी! जब वह संसार की ओर देखता है तो उसे अग्नि से जलता हुआ आपसे जुदा देखता है और ज्ञानरूपी पर्वत के ऊपर स्थित होकर संसार को जलता देखता है । हे रामजी! यह जो कहा है कि संसार को जलता देखता है सो ऐसे भी नहीं फुरता कि मैं ज्ञानी हूँ और यह संसार है । स्वरूप की अपेक्षा से यह कहा है कि संसार उसको दुःखदायी भासता है । वह आनन्द से रहित परमानन्द को प्राप्त हुआ है और सत् असत् से रहित जो अपना आप है उसमें स्थित है । जैसे पर्वत भीतर बाहर अपने आप में स्थित और एकरस है तैसे ही वह पुरुष एकरस है । संसार में जाग्रत होकर चेष्टा करता है पर हृदय में संसार की भावना से रहित है । उस पद में वाणी की गम नहीं परन्तु कुछ कहता हूँ सुनो, कोई चैतन्य कहते हैं, कोई आत्मा कहते हैं; कोई साक्षी कहते हैं, कालवाले उसी को काल कहते हैं, ईश्वरवादी ईश्वर कहते हैं, सांख्यवाले प्रकृति इत्यादिक संज्ञाओं से कहते हैं । ये सब उसी के नाम हैं- उससे भिन्न नहीं । उस पद को सन्तजन जानते हैं । हे रामजी! ऐसे पद को पाय के वह अपने आपसे शोभता है । जैसे मणि के भीतर बाहर प्रकाश होता है तैसे ही वह पद पुरुष भीतर बाहर से शोभता है और अपने स्वरूप से सदा घूर्म रहता है । जो पुरुष छठी भूमिका में स्थित है उसके ये लक्षण होते हैं कि संसार से सुषुप्त होकर- स्वरूप में सावधान रहता है और उसका जीवत्वभाव जाता रहता है । जैसे घट की उपाधि से घटाकाश परिच्छिन्न भासता है और जब घट भग्न हुआ तब घटाकाश महाकाश एक हो जाता है तैसे ही अहंकाररूपी घट के भग्न हुए आत्मा ही भासता है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे षष्ठभूमिकोपदेशो नामशताधिकपञ्चविंशतितमस्सर्गः ||125||

अनुक्रम

भूमिकालक्षण विचार

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसके अनन्तर जब सप्तम भूमिका उस पुरुष को प्राप्त होती है तब आपको आत्मा ही जानता है और भूतों का ज्ञान जाता रहता है । तब केवल आत्म त्वमात्र होता है और दृश्य का ज्ञान नहीं रहता, बल्कि यह भी ज्ञान नहीं रहता कि विश्व मेरे आश्रय फुरता है । देहसहित हो अथवा विदेह हो उसको आत्मा से उत्थान कदाचित नहीं होता । जैसे आकाश अपनी शून्यता में स्थित है तैसे ही वह आत्मस्वरूप में स्थित होता है और उसकी चेष्टा भी स्वाभाविक होती है । जैसे बालक पालने में अपने अंग स्वाभाविक हिलाता हे तैसे ही उसकी खान,पान आदिक चेष्टा स्वाभाविक ही है और जैसे काष्ठ की पुतली तागे से चेष्टा करती है तैसे ही प्रारब्ध वेग के तागे से उसकी चेष्टा होती है-उसको अपनी कुछ इच्छा नहीं रहती । हे रामजी! सप्तम भूमिकावाला जैसी अवस्था को प्राप्त होता है सो आपही जानता है और कोई नहीं जान सकता जिसका चित्त सत्पद को प्राप्त हुआ है वह भी उस अवस्था को नहीं जान सकता, जिसको वह पद प्राप्त हुआ है वही जानता है । हे रामजी! जीवन्मुक्त का चित्त सत्पद को प्राप्त होता है और यह तुरीयापद में स्थित होता है । उसका चित्त निर्वाण हो जाता है और तुरीयातीत पद को प्राप्त होकर विदेहमुक्त होता है । उसको अहंभाव का उत्थान कदाचित् नहीं होता और सत् रूप है पर असत् की नाईं स्थित है । हे रामजी! वह पुरुष उस पद को प्राप्त होता है जिसमें वाणी की गम नहीं परन्तु कुछ कहता हूँ । वह पद, शुद्ध निर्मल, अद्वैत, चैतन्य ब्रह्म और काल का भी काल केवल चिन्मात्र है और ज्यों का त्यों अच्युत पद है । इस पद को पाकर ऐसे होता है जैसे वस्त्र के ऊपर मूर्ति लिखी हो तैसे ही यह उत्थान से रहित है और उसको अहंब्रह्म का उत्थान भी नहीं रहता ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सप्त भूमिकालक्षणविचारो नाम षड्विंशाधिकशततमस्सर्गः ॥126॥

अनुक्रम

संसरणभाव प्रतिपादन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ये सप्तभूमिका जो तुमसे कही हैं, ज्ञान की प्राप्ति इन्हीं से होती है, अन्य साधन से ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती । हे रामजी! जब पुरुष ज्ञानवान् हो तब जानिये कि उसकी वृत्ति प्रथम भूमिका में स्थित हुई है । इससे तुम भूमिका की ओर चित्तरूप चरण रक्खो तब तुमको स्वरूप की प्राप्ति होगी । हे रामजी! तीसरी भूमिका पर्यन्त सर्वकामना निवृत्त होती हैं केवल एक आत्मपद की कामना रहती है । यदि उस अवस्था में शरीर छूट जावे तो और जन्म पाकर ज्ञान को प्राप्त होता है और यदि चतुर्थ भूमिका में प्राप्त होकर शरीर छूटे तो फिर जन्म नहीं पाता, क्योंकि आत्मपद की प्राप्ति हुए से फिर कुछ पाने की इच्छा नहीं रहती । जन्म का कारण इच्छा है; जब कुछ इच्छा न रही तब जन्म भी न रहा । जिसको चतुर्थ भूमिका प्राप्त होती है उसको स्वरूप की प्राप्त होती है तो फिर इच्छा कैसे हो? जैसे भुना बीज नहीं उगता तैसे ही उसका चित्त ज्ञान अग्नि से दग्ध होता है, क्योंकि वह सत्पद को प्राप्त होता है, इसी से वह जन्म नहीं लेता और मरता भी नहीं-संसार को स्वप्नवत् देखता है । पञ्चम भूमिकावाला सुषुप्ति की नाईं होता है और छठी भूमिका साक्षीरूप तुरीयापद है; सप्तम तुरीयातीत निर्वाच्य पद है । हे रामजी! मुझे इतने कहने का प्रयोजन यही है कि वासना का त्याग करो और अचित् पद को प्राप्त हो इसका अभिमान होना ही वासना है, जब इसका अभिमान निवृत्त हो तब शान्ति होगी, परिच्छिन्न अहंकार न रहेगा । आत्मा के अज्ञान से हुआ है और आत्मज्ञान से लीन हो जाता हे । हे रामजी! संसाररूपी एक नदी में आधिव्याधि उपाधि रोग तरंगें है; रागद्वैषरूपी छोटे मच्छ हैं और तृष्णारूपी बड़े मच्छ हैं उसमें जीव दुख पाते हैं । जैसे जल नीचे को चला जाता है तैसे मृत्यु के मुख में संसार चला जाता है और अज्ञानरूपी जल है । हे रामजी! तृष्णा से पुरुष बाँधे हैं,इससे तुम हाथी की नाईं वैराग्य और अभ्यासरूपी दाँतों से तृष्णारूपी जंजीर काटो । हे रामजी! तृष्णारूपी सर्पिणी विषयरूपी फुत्कारे से विचाररूपी बेलि को जलाती है इससे जीवरूपी किसान दुःख पाता है । इससे तुम वैराग्यरूपी अग्नि से उस सर्पिणी को जलाओ । हे रामजी! तृष्णा दुःखदायी है । जब तक तृष्णा है तब तक सन्तों के वचन स्थित नहीं होते । जैसे दर्पण पर मोती नहीं ठहरता तैसे ही तृष्णावान् के हृदय में सन्तों के वचन नहीं ठहरते । तृष्णा के इतने नाम-हैं-तृष्णा, अभिलाषा, इच्छा, फुरना, संसरना इत्यादिक सब इसी के नाम हैं । इच्छारूपी मेघ ने ज्ञानरूप, सूर्य को ढ़ाँका है । इससे वह नहीं भासता जब विचाररूपी पवन चले तब इच्छारूपी मेघ नष्ट हो जावे और आत्मरूपी सूर्य का साक्षत्कार हो । हे रामजी! यह जीव आकाश का पक्षी है पर कर्म में इच्छारूपी तागे से बँधा है इससे नहीं उड़ सकता और परमात्मपद को भी प्राप्त नहीं होता-इच्छा ही से दीन है जब इच्छा नष्ट हो तब आत्मस्वरूप है । इससे तुम इच्छा को नाशकर आत्मपरायण हो अर्थात् विषय संसार से वैराग्य और आत्माभ्यास करो । हे रामजी! यह जो मैंने तुमसे भूमिका का क्रम कहा है जब इसमें आवे तब ज्ञान की प्राप्ति हो पर इनको तब प्राप्त होता है जब कि एक हथिनी को जीते जो एक वन में रहती और महामत्तरूप उसके दो पुत्र हैं जो अनेक जीवों को मारकर अनर्थ प्राप्त करते हैं । उसके जीते से सर्व जगत् जीता जाता है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ऐसी मत्तरूप हथिनी कौन है और कहाँ रहती है? उसके दाँत और पुत्र कौन हैं? कैसे वह मरती है, कैसे उत्पन्न हुई है और कौन वन है? यह सब मुझसे कहिये । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इच्छारूपी हथिनी और शरीर रूपी वन है और मनरूपी गुफा में रहती है, इन्द्रियाँरूपी उसके बालक हैं और संकल्प विकल्परूपी दाँत हैं उनसे छेदती है । हे रामजी! एक नदी है जिसका प्रभाव सदा चला

जाता है और जिसमें दो मच्छ रहते हैं जो कभी नाश नहीं होते संसरना ही नदी है जिसमें रोगद्वेष मच्छ रहते हैं सो नाश नहीं होते । हे रामजी! वे मच्छ तब नाश हों जब संसरणरूपी जल नष्ट हो जिसके सुकृत दुष्कृतरूपी किनारे हैं, चिन्तारूपी ग्राह हैं, और कर्मरूपी लहरें हैं उनमें जीवरूपी तृण आकर भटकता है । इस तृष्णारूपी विषबेलि का नाश करो । हे रामजी! तृष्णारूपी अंकुर का बढ़ाना घटाना अपने ही अधीन है, जो अंकुर को जल दीजिये तो बड़ता जाता है और जो न दीजिये तो जल जाता है । फुरनरूपी जल देने से तृष्णारूपी अंकुर बढ़ता जाता है । और न देने से स्वरूप के अभ्यास द्वारा जल जाता है । हे रामजी! तृष्णारूपी बड़ा मच्छ है जो धैर्य आदिक माँस को भक्षण करने वाला है, उसे वैराग्यरुपी कण्डी और अभ्यासरूपी दाँतों से नाश करो । हे रामजी! इच्छा का नाम बन्धन है और निरिच्छा का नाम मुक्ति है । हे रामजी! एक सुगम उपाय कहता हूँ जिससे तृष्णा नष्ट हो जावेगी निज अर्थ की भावना करो तो उस भावना से शीघ्र ही आत्मपद की प्राप्ति होगी, एवं तुम्हारी जय होगी और सबसे उत्तम पद को प्राप्त होगे, फिर तुम्हें वासना न रहेगी और शरीर की चेष्टा स्वाभाविक होगी और सर्व संकल्प नष्ट हो जावेंगे ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे संसरणभावप्रतिपादनंनाम शताधिकसप्तविंशतितमस्सर्गः ||127||

अनुक्रम

इच्छाचिकित्सोपदेश

रामजी ने पूछा हे भगवन्! आप कहते हैं कि निज अर्थ की भावना से वासना नष्ट हो जावेगी और शीघ्र ही आत्मपद की प्राप्ति होगी सो वासना तो चिरकाल की चित्त में स्थित है एक ही बार कैसे नष्ट होगी? आप कहते हैं कि वासना के नष्ट हुए जीवन्मुक्त होता है पर जिसकी वासना नष्ट होगी उसका शरीर कैसे रहेगा, वासना बिना चेष्टा क्योंकर होगी और जीवन्मुक्त पद कैसे रहेगा? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मेरे वचनों को जो कानों के भूषण हैं सुने से दरिद्र न रहेगा। निज अर्थ के धारने से संशय नष्ट हो जावेंगे और आत्मपद की प्राप्ति होगी। उस निज अक्षर के तीन अर्थ हैं- एक तो अन्य के अर्थ हैं कि पञ्चभौतिक शरीर से तेरा स्वरूप विलक्षण है और दूसरा अर्थ विरुद्ध है अर्थात् शरीर जड़ और तमरूप है और तेरा स्वरूप आदित्यवर्ण और तम से परे है। हे रामजी! जब तूने ऐसे धारणा की कि मैं आत्मा हूँ और यह देहादिक अनात्मा है तब देह से मिल कर अभिलाषा कैसे रहेगी? अर्थ यह कि अभिलाषा न करेगा, क्योंकि जब तक जाना नहीं जाता तब तक अभिलाषा है। तीसरा अर्थ यह है कि सबका अभाव है अर्थात् न मैं हूँ और न कोई जगत् है। जब ऐसे जाना तब किसकी इच्छा रहेगी? अर्थात् किसी की न रहेगी। अथवा जो तुम आपको देह से विलक्षण आत्मा जानोगे तो भी अविद्यक तमरूप शरीर की अभिलाषा न रहेगी। देह तम रूप है और तुम आदित्यवर्ण हो अर्थात् प्रकाशरूप हो, तुम्हारा और इसका क्या संयोग जैसे सूर्य के मण्डल में रात्रि नहीं दिखती तैसे ही जब तुम आपको प्रकाशरूप जानोगे तब तमरूप संसार न दीखेगा। तब शरीर की चेष्टा स्वाभाविक होगी और तुममें कुछ चेष्टा न होगी। जैसे अर्धनिद्रावाले की चेष्टा होती है तैसे ही चेष्टा होगी और तुमको बालक की नाईं अभिमान न होगा। जैसे बालक की उन्मत्त चेष्टा होती है तैसे ही तुम्हारी चेष्टा भी स्वाभाविक होगी। हे रामजी! यदि तुम यह इच्छा करो कि यह सुख हो और यह दुःख न हो तो कदाचित् न होवेगा। जो कुछ शरीर की प्रारब्ध है सो अवश्य परन्तु ज्ञानवान् के हृदय से संसार की सत्यता जाती रहती है और स्वाभाविक चेष्टा होती है, इच्छा नहीं रहती। हे रामजी! जैसे कोई पुरुष किसी देश को जाता है और पहुँचने का समय थोड़ा हो तो वह मार्ग के स्थान देखता भी जाता है परन्तु बन्धवान् किसी में नहीं होता, तैसे ही चित्त को आत्मपद में लगाओ। ऐसा शरीर पाकर यदि आत्मपद न पाया तो कब पावेगा? जो आत्मपद से विमुख है वह वृक्षादिक जन्मों को पावेगा, इससे हे रामजी चित्त आत्मपद में रक्खो और स्वाभाविक इच्छा बिना चेष्टा करो इच्छा ही दुःखदायक है। जब इच्छा नष्ट होती है तब उसी को ज्ञानवान् तुरीयापद कहते हैं जहाँ जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति का अभाव हो सो तुरीयापद है। हे रामजी! यह जाग्रत स्वप्न और सुषप्ति अवस्था जहाँ न पाइये सो तुरीयापद है। जब संवेदन फुरना अहंकार का अभाव हो जावे तब तुरीयापद प्राप्त होता है। हे रामजी! अहंकार का होना दुःखदायक है। जब इसका नाश हो तबही आनन्द है। आत्मपद से भिन्न जो माया की रचना है उससे मिलकर आपको जानता है `कि मैं हूँ' यही अनर्थ है। इससे अहंकार का त्याग करो। जिसको देखकर यह फुरता है उसको निज अर्थ की भावना से नास करो और जो आत्मपद से भिन्न भासता है उसे मिथ्या जानो। यही निज अक्षर का अर्थ है जो कुछ संसार भासता है उसको स्वप्नमात्र जानो इसको सत्य जानकर इसकी इच्छा करना ही अनर्थ है और मिथ्या जानकर इच्छा न करना कल्याण है। हे रामजी! ऊँची बाहु करके पुकारता हूँ पर मेरे वचन कोई नहीं सुनता कि इच्छा ही संसार का कारण है और इच्छा से रहित होना ही परमकल्याण है जब जीव इच्छा से रहित होता है तब शान्तपद को प्राप्त होता है और निरच्छित हुये आत्मा ही भासता है

जो आनन्दरूप, सम और अद्वैत है और उसमें जगत् का अभाव है । हे रामजी! मोह का बड़ा माहात्म्य है हृदय में जो आत्मरूपी चिन्तामणि स्थित है उसको विस्मरण करके मूर्ख अहंकाररूपी काच को ग्रहण करते हैं । हे रामजी! तुम निरभिमान होकर चेष्टा करो । जैसे यन्त्र की पुतली में अभिमान कुछ नहीं होता और उसकी चेष्टा होती है, तैसे ही प्रारब्ध वेग से तुम्हारी चेष्टा होगी । यह अभिमान तुम न करो कि ऐसे हो और ऐसे न हो । जब ऐसे होगे तब शान्तपद को प्राप्त होगे, जहाँ वाणी की गम नहीं ऐसे आनन्द को प्राप्त होगे । जब तक इन्द्रियों के अर्थ की तृष्णा है तब तक जन्म मृत्यु के बन्धन में है इससे पुरुष प्रयत्न यही है कि तृष्णा का नाशकरो, कर्म के फल की तृष्णा न हो और कर्म के करने की भी इच्छा न हो । इन दोनों को त्यागकर स्वरूप में स्थित हो- रहो बल्कि ऐसा भी निश्चय न हो कि मैंने त्याग किया है । हे रामजी! जिस पुरुष ने कर्म को त्याग किया है और अहंकार सहित है उसने पुण्य और पाप सब कुछ किया है और जिसमें अहंभाव नहीं है वह चाहे जैसे कर्म करे तो भी कुछ नहीं करता और वह बन्धन को नहीं प्राप्त होता । जो न करने में अभिमान सहित है उसको कर्ता देखते हैं वह बन्ध वान् है । ऐसे आत्मा को जानकर अहं मम का त्याग करो । ऐसे संवेदन के त्यागने में कुछ यत्न नहीं है । स्मृति उसकी होती है जिसका अनुभव होता है, पर जिसका अनुभव नहीं उसका त्याग सुगम है । अनुभव प्रत्यक्ष देखने को कहते हैं । तुम्हारे स्वरूप में विश्व नहीं है तो अनुभव क्या हो । ये पदार्थ जो तुमको भासते हैं उनके कारण को जानो । इनका कारण अनुभव है, जो अनुभव ही इनका मिथ्या है तो स्मृति कैसे सत् हो? रस्सी में सर्प का अनुभव हुआ और फिर स्मरण किया कि वहाँ सर्प देखा था, जो सर्प का अनुभव ही मिथ्या है फिर उसका स्मरण कैसे सत् हो इससे जो वस्तु मिथ्या है उसके त्यागने में क्या यत्न है? जब प्रपञ्च को मिथ्या जाना तब तुझको कोई क्रिया बन्धन न करेगी, चेष्टा स्वाभाविक होगी और रागद्वेष जाता रहेगा । जैसे शरत््काल की बेलि सूख जाती है और उसका आकार दृष्टि आता है, तैसे ही तुम्हारा चित्त देखने में आवेगा और चित्त का धर्म जो रागद्वैष है वह जाता रहेगा वह चित्त सत्पद को प्राप्त होगा । जब सबका विस्मरण (बोध) होता है उसको शिवपद कहते हैं । वह परमपद ब्रह्म शब्द-अर्थ से रहित केवल चिन्मात्र अद्वैत पद है, उसमें अहं मम का त्याग करके स्थित रहो । संसार इसी का नाम है कि मैं हूँ और यह मेरा है । इसको त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित हो । हे रामजी! जब तक अहंमम का संवेदन है तब तक दुख नहीं मिटते और जब यह संवेदन मिटा तब आनन्द है । आगे जो इच्छा हो सो करो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे इच्छाचिकित्सोपदेशन्नाम शताधिककाष्ठविंशतितमस्सर्गः ||128||

अनुक्रम

कर्मबीज दाहोपदेश

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अद्‌वैत आत्मा जिसको एक दो नहीं कह सकते अपने आप स्वभाव में स्थित है और अन्तःकरण चतुष्टय बाह्यपदार्थ सब चेतनमात्र हैं कुछ भिन्न नहीं । रूप, इन्द्रियाँ और मन का फुरना, देश, काल सर्व आत्मरूप ही है । जैसे बालक मिट्टी की सेना बनाकर हाथी, घोड़े, राजा प्रजा नाम कल्पता है सो सब मिट्टी है भिन्न कुछ नहीं तैसे ही अहंमम आदिक भी सब आत्मरूप है-कुछ पृथक नहीं । जैसे मिट्टी में हाथी, घोड़ा आदि नाम कल्पित हैं, तैसे आत्मा में ही जगत् कल्पित है-आत्मा से भिन्न कुछ नहीं । इस अहंकार को त्याग करो कि आत्मपद से भिन्न कुछ न फुरे । हे रामजी! रूप, अवलोक और मनस्कार- यह सब शिवरूपी मृत्तिका के नाम हैं और माता, मान, मेय आदिक यह सब वही रूप हुए तो जिससे संचित् कहिये? यह अहं मम आदिक भी चिदाकाश से कुछ भिन्न वस्तु नहीं । इनको ऐसे जानकर अफुर शिलावत् निःसंग हो रहो । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आपने कहा कि अहं मम फुरने का त्याग करो यह मिथ्या है और अहं मम असत् है । ज्ञानी ऐसी भावना करते हैं कि इनकी सत्ता कुछ नहीं और तुम असंग हो रहो पर असंग निष्कर्म से होता है अथवा कर्म से होता है यह कहिये । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह तुम्हीं कहो कि कर्म क्या है और निष्कर्म क्या है, इनका कारण कौन है और इनका नाश कैसे हो और नाश होने से क्या सिद्धि होगी, जो तुम जानते हो तो कहो । रामजी बोले हे भगवन्! जैसे आपसे सुना है और समझा है सो मैं कहता हूँ । जो वस्तु नाश करनी हो उसको निश्चय करके मूल से नास कीजिये तभी उसका नाश होता है, शाखा और पत्र काटे से उसका नाश हीं होता-इससे इनका क्रम सुनो । इस संसाररूपी वन में देह रूपी वृक्ष है जिसका बीज -वास और वासना रस हैं और सुखदुःख फूल हैं । जाग्रत कर्म वासनारूपी वसन्तऋतु हैं उससे वह प्रफुल्लित होता है और सुषुप्ति पापकर्मरूपी शरत्‌्काल है उससे सूख जाता है । ऐसा शरीररूपी वृक्ष है । तरुणरूपी उसकी कली है सो क्षण का क्षण सुन्दर है, जरारूपी फूल इसको हँसते हैं और रागद्‌वेष रूपी वानर क्षण क्षण में क्षोभते हैं । जाग्रतरूपी वसन्तऋतु है जो सुषुप्तिरूपी हिम करती है और वासनारूपी रस से बढ़ता है । पुत्र कलत्र आदिक तृण और घास हैं और इन्द्रियों के छिद्ररूपी मुख हैं जिनसे शरीर की चेष्टा होती है । ज्ञान इन्द्रियाँ पञ्चथम्भ हैं जिनके वृक्ष सधा है और इच्छारूपी बेलि है जो अपने अपने को चाहती है । बड़ा थम्भ इसका मन है जो सबको धारता है और पञ्चप्राण इसके रस हैं उनसे प्रत्यक्ष सबको ग्रहण करता है । इनका बीज जीव है-जीव चैत्योन्मुखत्व चेतन को कहते हैं, जीवत्व का बीज संवित् है जो मात्रपद से उत्थान हुआ है और उस संवित् का बीज ब्रह्म है-उसका बीज कोई नहीं । हे भगवन्! सबका मूल संवित का फुरना है, जब इसका अभाव होता है तब आत्मा ही शेष रहता है । हे भगवन्! यह तो मैं जानता हूँ आगे आप भी कुछ कृपा करके कहिये । हे भगवन्! जबतक चित्त से सम्बन्ध है तबतक संसार में जन्ममरण होता है और जब चित्त से रहित होता है तब परब्रह्म है-वह शिवपद अनिच्छित, शान्त और अनन्तरूप है । चिन्मात्र में जो अहं का उत्थान है वही कर्मरूपी वृक्ष का कारण है जब तक अनात्मा से मिलकर कहता है कि `मैं हूँ' वही संसार का कारण है । यह आपके वचनों से मैंने समझा है सो प्रार्थना की है आगे कुछ कृपा करके आप भी कहिये । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसी प्रकार कर्म का बीज सूक्ष्म संवित् है । जब तक संवित् है तबतक कर्मों का बीज नाश नहीं होता और ये सब संज्ञा इसी की हैं । कर्मों का बीज इच्छा, तृष्णा, अज्ञान, चित्त और ग्रहणत्याग की बुद्धि इत्यादिक बहुत संज्ञा हैं, क्या किसी में हेयोपादेय बुद्धि करे? हे रामजी! जबतक अज्ञान है तबतक इच्छा नष्ट नहीं होती

और कर्म भी नाश नहीं होते । नाश दोनों का नहीं होता परन्तु भेद इतना ही है कि अज्ञानी को भासता है कि यह इच्छा है, यह कर्म है । ज्ञानवान् को सब ब्रह्म ही भासता है इससे वह सुखी रहता है और अज्ञानी को कर्म भासता है इस लिये बन्धवान् होता है । कर्म से कर्म बुद्धि जाने को त्याग कहते हैं क्रिया का त्याग करने को त्याग नहीं कहते । हे रामजी बड़ी उपाधि अहंकार है । जिसका अहंकार नष्ट हुआ है वह पुरुष कर्म करता है तो भी उसने कभी कुछ नहीं किया और जो अहंकारसहित है वह पुरुष जो तूष्णीं हो बैठा है तो भी सब कर्म करता है । इस अहं के त्याग का नाम सर्वत्याग है, क्रिया के त्याग का नाम सर्वत्याग नहीं । सब कर्मों के बीज अहंकार का त्यागना और परम शान्ति को प्राप्त होना ही पुरुष प्रयत्न है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे कर्मबीज दाहोपदेशं नाम शताधिकनवविंशस्सर्गः ||129||

अनुक्रम

अहंकारनाश विचार

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस संवेदन का होना ही अनर्थ है कि आपको कुछ जानता है । जब यह निवृत्ति हो तबही इसको आनन्द है । हे रामजी! ज्ञानी की चेष्टा अहंकार से रहित स्वाभाविक होती है । जैसे अर्धनिद्रित पुरुष होता है तैसे ज्ञानी अपने स्वरूप में घूर्म है । जैसे हाथी मद से उन्मत्त होता है तैसे ही ज्ञानवान् स्वयं ब्रह्म लक्ष्मी से घूर्म है । जैसे कामी को काम व्यसन होता है तैसे ही सुखरूपी स्त्री को पाकर ज्ञानी घूर्मरहता है, क्योंकि निरहंकार है । सब दुखों का बीज अहंकार है, जब अहंकार नष्ट हो तब आनन्द हो हे रामजी! संसाररूपी विष की बेलि का बीज अहंकार है, जब अहंकार का अभाव हो तब संसार का भी अभाव होता है । हे रामजी! अहंकार ही दुःख का मूल है । इस संवेदन का विस्मरण करना बड़ा कल्याण है और अनात्मा से मिलकर आपको मानना ही अनर्थ है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो वस्तु असत्य है वह नहीं होती और जो सत्य है उसका अभाव नहीं होता । फिर आप कैसे कहते हैं कि अहं संवेदन का नाश करो? ये तो सत् भासती है नाश कैसे हो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुम सत्य कहते हो कि जो वस्तु असत्य है वह नहीं होती और जो सत्य है उसका नाश नहीं होता । हे रामजी! यह जो अहंकार दृश्य तुमको भासता सो कदाचित् नहीं हुआ-मिथ्या कल्पित है । जैसे रस्सी में सर्प होता है तैसे ही आत्मा में अहंकार है और जैसे सूर्य की किरणों में जलाभास होता है तैसे ही आत्मा में अहंकार शब्द अर्थ फुरता है । यह शब्द और अर्थ मिथ्या है । इसका लक्ष्य यह है कि मैं हूँ सो कल्पित है, आत्मा केवल शुद्धस्वरूप है उसमें अहं त्वं का शब्द अर्थ कोई नहीं । यह अबोध से भासते हैं और बोध से लीन हो जाते हैं । वेदना का बोझ अनर्थ का कारण है । जब यह निर्वाण हो तब कर्म का बीज मूल से कटे । हे रामजी! जो कर्मों का त्यागकर एकान्त जाकर बैठता है और ऐसे मानता है कि मैं कर्म नहीं करता सो कहता ही है पर वास्तव में अहंकार से है इससे फल को भोगता ही है, क्योंकि अहंकार सहित फिर कर्म करेगा । वह आत्मज्ञान बिना अनात्म से मिलकर आपको मानता है । जो पुरुष कर्म-इन्द्रियों से चेष्टा करता है और आत्मा को लेप नहीं । जानता वह अकर्ता ही है--उसके करने से कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होते और न करने से भी नहीं होते । ऐसा पुरुष परम निर्वाणपद को प्राप्त होता है जिसमें वाणी की गम नहीं । हे रामजी! उसमें फुरना कोई नहीं-केवल चमत्कार है अर्थात् हुआ कुछ नहीं और भासता है । जैसे बेल की मज्जा बेल से भिन्न नहीं तैसे ही जगत् है । जैसे सोने से भूषण भिन्न नहीं तैसे ही निज शब्द का अर्थ है पर ये भिन्न भिन्न शब्द अर्थ तबतक भासते हैं जबतक अहं वेदना है । हे रामजी! आत्मपदसदा अपने आपमें स्थित है । जैसे पत्थर अपनी जड़ता में स्थित है तैसे ही आत्मा चैतन्य घनता में स्थित है । उसको मुनीश्वर चैतन्य सार कहते हैं और उस अपने स्वरूप के प्रमाद से दुःख पाता है । हे रामजी! जो पुरुष गृहस्थी में स्थित है पर अहंकार से रहित है उसको वनवासीजानो और सदा एकान्त है और जो वनवासी अहंकार सहित है वह सदा जनों में स्थित है । प्रथम तो वह एक गढ़े में था फिर उसको त्याग कर दूसरे गढ़े में पड़ा है कि वेषधारी है और वनवास लिया है । ईश्वर चाहे तो निकसे नहीं तो बड़े कूप में पड़ा है । हे रामजी! जो पुरुष अर्ध त्याग करता है वा एक अंग का त्याग करता है और दूसरे का अंगीकार करता है ऐसा पुरुष आपको निष्कामी मानता है पर उसको यह त्याग रूपी पिशाचिनी भोगती है । हे रामजी! यह जीव निष्कर्म तब ही होता है जब इसकी अहं वेदना नष्ट होती है-अन्यथा नहीं होता । इससे कर्म को मूल से उखाड़ो । जैसे सुरदण्ड, बेलि और वृक्षको मूल से काटता है, तैसे ही काटो । अहंवेदना ही मूल है उसको काटना चाहिये । हे रामजी! पुरुषप्रयत्न इसी का

नाम है कि अपने आपका नाश करना और आपही रहना देह से मिला हुआ आपको जानता है उसका नाश करना और शिवपद को प्राप्त होना जो सर्वदा सत््स्वरूप अद्वैत है-यह विश्व भी उसका चमत्कार है । जैसे नारियल में खोपरा होता है और उसके बहुत नाम रखते हैं सो नारियल से कुछ भिन्न नहीं, तैसे ही संसार आत्मा से भिन्न नहीं । जैसे थम्भे में काष्ठ से भिन्न कुछ नहीं तैसे ही यह संसार है । यह नानात्व भी चैतन्य घन आत्मा ही है निज अक्षर का अर्थ जो कहा है सो भी वही है तो विधि निषेध किसका कीजिये? सब परमात्वतत्त्व है दूसरा किंचित भी नहीं । हे रामजी! ऐसे आत्मा को जानकर सुख से बिचरो । जैसे अर्द्धनिद्रित की चेष्टा होती है और जैसे बालक में सोकर स्वाभाविक अंग हिलाता है तैसे ही तुम्हारी चेष्टा होगी । अपना अभिमान तुम न करो । हे रामजी! जो कुछ भाव-अभाव पदार्थ भिन्न-भिन्न भासते हैं वे असत्य हैं, आत्मा के साक्षात्कार हुए से परमात्मतत्त्व ही भासेगा, तब अहंकार उत्थान निवृत्त होगा । हे रामजी! एक और युक्ति सुनो जिससे आत्मज्ञान हो । यह जो अहं अहं क्षण क्षण में फुरती है सो जब फुरे तब ही उस क्षण में जानो कि मैं नहीं । जब ऐसे दृढ़ हुआ तब अहंकाररूपी पिशाच नाश हो जावेगा और आत्मतत्त्व का साक्षात्कार होगा । इससे अहंकार के नाश का यत्न करो कि `न मैं हूँ' `न जगत् है'। हे रामजी! ज्ञान इसी का नाम है कि `अहं' `मम' न रहे । उसको मुनीश्वर परब्रह्म और सम्यक््पद कहते हैं । और जहाँ (अहं मम) है वहाँ अविद्यारूपी तम है । हे रामजी! अज्ञानी के हृदय में सब पदार्थों का भाव स्थित है इससे देश काल घर, नगर, मनुष्य, पशु, पक्षी आदिक त्रिगुण संसार भासता है । जब इनका अभाव हो जावे तब शान्तिपद की प्राप्ति हो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अहंकारनाश विचारो नाम शताधिकत्रिंशततमस्सर्गः ||130||

अनुक्रम

विद्याधरवैराग्य वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिसके मन से `मैं' और `मेरे' का अभिमान गया है उसको शान्ति हुई है और जिसके हृदय में `मैं' `देह' `मेरे' `सम्बन्धी' `गृह' आदिक का अभिमान है उसको कदाचित् शान्ति नहीं और शान्ति बिना सुख नहीं । हे रामजी! प्रथम आप बनता है तब जगत् है । जो आप न बने तो जगत् कहाँ हो? इसका होना ही अनर्थ का कारण है । जिस पुरुष ने अहंकार का त्याग किया है वह सर्वत्यागी है और जिसने अहंकार का त्याग नहीं किया उसने कुछ नहीं त्यागा । जिसने क्रिया का त्याग किया और आपको सर्वत्यागी मानता है सो मिथ्या है । जैसे वृक्ष की डालें काटिये तो फिर उगता है नाश होता, तैसे ही क्रिया के त्याग किये त्याग नहीं होता । जो त्यागने योग्य अहंकार नष्ट नहीं होता तो क्रिया फिर उपजती है इससे अहंकार का त्याग करो तब सर्वत्यागी होगे । इसका नाम महात्याग है और स्वप्न में भी संसार न भासेगा, जाग्रत का क्या कहना है- उसको संसार का ज्ञान कदाचित् नहीं होता । हे रामजी! संसार का बीज अहंभाव है, उसी से स्थावर जंगम जगत् भासता है, जब इसका नाश हुआ तब जगत््भ्रम मिट जाता है--इससे इसके अभाव की भावना की भावना करो । जब तुम्हें अहंभाव की भावना फुरे तो जानो कि मैं नहीं । जब इस प्रकार अहं का अभाव हुआ तब पीछे जो शेष रहेगा सो ही आत्मपद है । हे रामजी! सब अनर्थों का कारण अहंभाव है उसका त्याग करो । हे रामजी! शस्त्र के प्रहार और व्याधि को यह जीव सह सकता हे तो इस अहं के त्यागने में क्या कदर्थना है? हे रामजी! संसार का बीज अहं का सद्भाव है, उसका नाश करना मानो संसार का मूलसंयुक्त नाश करना है-इसी के नाश का उपाय करो । जिसका अहंभाव नष्ट हुआ है उसको सब ठौर आकाशरूप है और उसके हृदय में संसार की सत्ताकुछ नहीं फुरती । यद्यपि वह गृहस्थ में हो तो भी उसको यह प्रपञ्च शून्य वन भासता है । जो अहंकार सहित है और वन में जा बैठे तो भी वह जनों के समूह में बैठा है, क्योंकि उसका अज्ञान नष्ट नहीं हुआ । जिसने मन सहित षट् इन्द्रियों को वश नहीं किया उसको मेरी कथा के सुनने का अधिकार नहीं- वह पशु है । जिस पुरुष ने मन को जीता है अथवा दिन प्रतिदिन जीतने जी इच्छा करता है वह पुरुष है और जो इन्द्रियों का विश्रामी अर्थात् क्रोध, मोह से सम्पन्न है वह पशु है और महाअन्धतम को प्राप्त होता है । हे रामजी! जो पुरुष ज्ञानवान् है उसमें यदि इच्छा दृष्ट आती है तो वह उसकी इच्छा अनिच्छा ही है और उसके कर्म अकर्म ही हैं । जैसे भूना दाना फिर नहीं उगता पर उसका आकार भासता है तैसे ही ज्ञानवान् की चेष्टा दृष्ट आती है सो देखनेमात्र है उसके हृदय में कुछ नहीं । हे रामजी! जो पुरुष कर्मेन्द्रियों से चेष्टा करता है और हृदय में जगत् की सत्यता नहीं मानता उसे कोई बन्धन नहीं होता और जो जगत् को सत्य मानकर थोड़ा भी कर्म करता है तो भी वह फैल जाता- जैसे थोड़ी अग्नि जागकर बहुत होजाती है-ज्ञानी को बन्धन नहीं होता । उसकी प्रारब्ध शेष है सो भी हृदय में नहीं मानता और जानता है कि ये कर्म शरीर के हैं आत्मा के नहीं जैसे कुम्हार के चक्र का वेग उतरता जाता है तैसे ही प्रारब्धवेग उसका उतर जाता है और फिर जन्म नहीं होता, क्योंकि उसको अहंकाररूपी चरण नहीं लगता इससे अहं कार का नाश करो, जब अहंकार नष्ट होगा तब सबसे आदिपद की प्राप्ति होगी जो परम निर्वाणपद है और जिसमें निर्वाण भी निर्वाण हो जाता है । हे रामजी! जब वर्षाकाल होता है तब बादल होते हैं, जब शरत्काल आता है तब बादल जाते रहते हैं । हे रामजी! जबतक अज्ञानरूपी वर्षाकाल है तबतक अहंकाररूपी वर्षा है और जब विचाररूपी शरत्काल आवेगा तब अहंकाररूपी मेघ जाते रहेंगे और आत्मरूपी आकाश निर्मल भासेगा । हे रामजी! जैसे मलिन आदर्श में

मुख का प्रतिबिम्ब उज्ज्वल नहीं भासता और जब मैल निवृत्त होता है तब मुख का प्रतिबिम्ब प्रत्यक्ष भासता है तैसे ही अहंकाररूपी मैल से जीव ढाँपा हुआ है इससे आत्मा नहीं भासता, अहंकाररूपी मैल निवृत्त हो तब आत्मा ज्यों का त्यों भासे । जैसे समुद्र में नाना प्रकार के तरंग उठते हैं तो सम्यक्ृदर्शी को सब जलमय दृष्ट आते हैं और भूषण में सुवर्ण ही भासता है तैसे ही नाना प्रकार के प्रपञ्च उस समदर्शी को चैतन्यघन आत्मा ही दृष्ट आते हैं-आत्मा से भिन्न कुछ नहीं देखता । वह सबसे पत्थर की शिलावत् हो जाता है क्योंकि उसका अहंकार नष्ट हो गया है और जो अहंकार नष्ट हो गया है और जो अहंकार संयुक्त है और क्रिया का त्यागकर आपको सुखी मानता है वह मूर्ख है । जैसे कोई लकड़ी लेकर आकाश को नाश किया चाहे तो वह नष्ट नहीं होता तैसे ही क्रिया के त्याग से दुःख नष्ट नहीं होते-जब सम्पूर्णसंसार क्रिया के बीज अहंकार का नाश हो तब अक्रिय आत्मस्वरूप को प्राप्त होता है । जैसे ताँबा अपने ताम्रभाव को त्यागकर सुवर्ण होता है तैसे ही जब जीव अपना जीवत्व भाव त्यागे तब आत्मा होता है और जैसे तेल की बूँद जल में फैल जाती है और नाना प्रकार के रंग जल में भासते हैं तैसे ही ब्रह्म में अनेक प्रकार की कलना दिखाई देती हैं- आत्मा, ब्रह्म, निराकार, निरञ्जन इत्यादिक नाम भी अहंकार से शुद्ध में कल्पे हैं, वह अफुर केवल सत्तामात्र हैं और सत्य और असत्य की नाईं स्थित है । हे रामजी! संसाररूपी मिरच का पेड़ है अथवा संसाररूपी फूल है उसमें अहंतारूपी सुगन्ध है, जब अहंता उदय होती है तब संसार क्षण में उदय होता और अहंता के नाश हुए संसार क्षण में नाश हो जाता है क्षण में उदय, होता है और क्षण में नाश होता है सो अहंता का होना ही उदय होने का क्षण है और अहंता का लीन होना नाश का क्षण है । हे रामजी जैसे मृत्तिका में जल के संयोग से घट बनता है तब मृत्तिका घटसंज्ञा पाती है, तैसे ही पुरुष को जब अहंकार का संग होता है तब संसारी होता है और जीवसंज्ञा पाता है और देश, काल, पृथ्वी, पर्वत आदिक दृश्य को प्रत्यक्ष देखता है, और जब अहंता नाश होती है तब सुखी होता है, निदान जो कुछ नाम और उसका अर्थ है सो अहंता से भासता है और जब अहंता को त्यागे तब शान्तरूप आत्मा ही शेष रहता है । जैसे पवन से रहित दीपक प्रकाशता है तैसे ही अहंकाररूपी पवन से रहित जीव अपने स्वभाव में स्थित होकर आनन्दपद को प्राप्त होता है, अनादि पद पाता है, सबका अपना आप होता है और देश, काल, वस्तु अपने में देखता है । हे रामजी! जबतक अहंता का नाश नहीं होता तबतक मेरे वचन हृदय में स्थित न होंगे । जैसे रेत से तेल निकलना कठिन है तैसे ही जिस पुरुष ने अपना स्वभाव नहीं जाना उसको ब्रह्म का पाना कठिन है । अपना स्वभाव जानना अति सुगम है । जब अहंता का त्याग करे कि न मैं हूँ और न जगत् है तब कल्याण होता है और तभी अहंता का नाश होता है और कोई भ्रम नहीं रहता । जैसे रस्सी के जाने से सर्पभ्रम निवृत्त हो जाता है । जबतक अहंता फुरती है तब तक उसको उपदेश नहीं लगता । जैसे आरसी पर मोती नहीं ठहरता तैसे ही जिसको अहंता फुरती है उसके हृदय में मेरे वचन नहीं ठहरते और जिसका हृदय शुद्ध है उसको मेरे वचन लगते हैं । जैसे तेल की बूँद जल में फैल जाती है तैसे ही उसको थोड़े वचन भी बहुत हो लगते हैं हे रामजी! इसी पर एक पुरातन इतिहास कहता हूँ सो तुम सुनो, वह मेरा और काकभुशुण्डि का संवाद है । एक समय मैं सुमेर पर्वत के शिखर पर गया तो वहाँ भुशुण्डि बैठा था, उससे मैंने प्रश्न किया कि हे अंग! ऐसा भी कोई पुरुष देखा है जिसकी आयु बड़ी हो और ज्ञान से शून्य रहा हो? जो उसको देखा हो तो कहो । भुशुण्डि बोले, हे भगवन्! एक विद्याधर हुआ जिसकी बड़ी आयु थी और जिसने बहुत विद्या ध्ययन किया था । वह सत्कर्मों में बहुत बिचरता था, उसने बहुत भोग भोगे थे और चारयुग पर्यन्त जप, तप, नियम आदिक सकाम कर्म किये थे । जब चतुर्थ युग का अन्त हुआ तब उसको विचार उपजा

और जितनेभोग सुखरूप जानकर भोगता था उनमें उसको वैराग्य हुआ, तब उनको त्यागकर लोकालोक पर्वत पर जा बिचरा और बिचारा कि यह संसार असाररूप है किसी प्रकार इससे छूँटू । इसमें बारम्बार जन्म और मरण है और कोई पदार्थ सत्य नहीं, जिसका आश्रय करूँ? ऐसे विचार करके वह विकृत आत्मा पुरुष सुमेरु पर्वत पर मेरे पास आया और सिर नीचा करके मुझे दण्डवत की । मैंने भी उसका बहुत आदर किया तब हाथ जोड़कर उसने कहा, हे भगवन्! इतने कालपर्यन्त मैं विषयों को भोगता रहा परन्तु मुझे शान्ति न हुई इससे मैं दुःखी हूँ आप कृपा करके शान्ति का उपाय कहो । हे भगवन्! चित्ररथ के बाग में जिसमें सदाशिवजी रहते हैं और जहाँ बहुत कल्पवृक्ष हैं उसमें मैं चिरकाल रहा, फिर विद्याधरों के स्वर्ग में रहा, फिर इन्द्र के नन्दनवन और सुवर्ण की कन्दरा में रहकर सुन्दर अप्सराओं के साथ स्पर्श किया और विमान पर बहुत आरूढ़ रहा हूँ । हे भगवन्! बहुत स्थान मैंने देखे हैं और तप, दान, यज्ञ, व्रत भी बहुत किये हैं । सहस्र वर्ष तक ऐसे सुन्दर रूप देखता रहा हूँ जिनकी सुन्दरता नहीं कह सकता तो भी नेत्रों को तृप्ति न हुई, बहुत सुगन्ध सूँघी पर नासिका को तृप्ति न हुई, रसना से भोजन बहुत प्रकार के खाये पर शान्ति न हुई बल्कि तृष्णा बढ़ती गई, कानों से बहुत प्रकार शब्द और राग सुने और त्वचा से बहुत स्पर्श किये हैं तो भी शान्ति न हुई । हे भगवन्! मैं जिस ओर सुख जानकर प्रवेश करूँ उसी ओर दुःख प्राप्त होवे-जैसे मृग क्षुधा निवारने के लिये घास खाने जाता है और राग सुनकर मूर्छित हो जाता है तब उसको बधिक पकड़ लेता है तो मृग दुःख पाता है तैसे ही मैं सुख जानकर विषयों को ग्रहण करता था और बड़े दुःखों को प्राप्त होता था हे भगवन्! मैंने चिरकाल तक पाँचों इन्द्रियों और छठे मन सहित दिव्य भोग भोगे हैं जो कुछ कहे नहीं जाते परन्तु मुझे शान्ति न हुई और न इन्द्रियाँ तृप्त हुईं । जैसे घृत से अग्नि तृप्त नहीं होती तैसे ही दिन दिन प्राप्ति तृष्णा वृद्ध होती जाती है और हृदय जलाती है । जो पुरुष इन भोगों के निमित्त यत्न करता है कि मैं इनसे सुखी हूँगा वह मूर्ख है और उसको धिक्कार है- वह समुद्र में तरंग का आश्रय करता है । ये तब तक सुखरूप भासते हैं जब तक इन्द्रियों और विषयों का संयोग है, जब इन्द्रियों से विषयों का वियोग होता है तब महादुःख को प्राप्त होता है, क्योंकि तृष्णा हृदय में रहती है और भोग जाते रहते हैं तब जो जो विषय भोगे होते हैं वे दुःखदायक हो जाते हैं । हे भगवन्! मैंने इसी से बहुत दुःख पाया है । यद्यपि इन्द्रियाँ कोमल हैं तो भी सुमेरु की नाईं कठिन हैं । कोमल भासती हैं परन्तु ऐसी हैं जैसे सर्पिणी और खड्ग की धार कोमल होती है पर स्पर्श किये से मर जाता है । जैसे जल में नाव पवन से भ्रमती है, तैसे ही अज्ञानरूपी नदी में पवनरूपी इन्द्रियों ने मुझे दुःख दिया है । हे भगवन्! ऐसे भी मैंने देखे कि सारा दिन माँगते रहे और भोजन के निमित्त इकट्ठा नहीं हुआ और ऐसे भी देखे हैं कि उन्होंने ब्रह्मा से आदि काष्ठ पर्यन्त सब भोग भोगे हैं । पर जिसको दिन में भोजनमात्र भी प्राप्त नहीं होता और जो सब इन्द्रियों के इष्टरूप भोगों को भोगता है उन दोनों को भस्म होते देखा है और भस्म दोनों की तुल्य हो जाती है-विशेषता कुछ नहीं । इन्द्रियों के बन्धन में बारम्बार जन्मते मरते अज्ञानी शान्ति नहीं पाते । जो तुम कहो कि तू तो सुखी दृष्टि आता है तुझे क्या दुःख है तो हे भगवन्! वह दुःख देखने में नहीं आता परन्तु मेरा हृदय जलता है । हे भगवन्! ब्रह्मा के लोक में मैंने बड़े सुख देखे हैं परन्तु वहाँ भी दुःखी ही रहा हूँ, क्योंकि क्षय और अतिशय वहाँ भी रहता है इससे वे भी जलते हैं । इन्द्रियों का शस्त्र से भी कठिन घाव है जो नाना प्रकार की संसार की विषमता दिखाती हैं और उनमें सर्वदा राग द्वेष रहता है जिससे मैं बहुत जलता रहता हूँ । इससे मुझसे वही उपाय कहिये जिससे मैं शान्ति पाऊँ । वह कौन सुख है जिससे फिर दुःखी न होऊँ और जिसका कदाचित् नाश नहीं और जो आदि अन्त से रहित है । जो उसके पाने में

कष्ट है तो भी मैं यत्न करता हूँ कि किसी प्रकार प्राप्त हो । हे मुनीश्वर! इन्द्रियों ने मुझे बड़ा कष्ट दिया है । ये इन्द्रियाँ गुणरूपी वृक्ष को अग्नि हैं, शुभ गुणों को जलाती हैं और विचार धैर्य, संतोष और शान्ति आदिक गुणरूपी वृक्ष को नाश करनेवाली हैं । हे भगवन्! इन्होंने मुझे दुःख दिया है । जैसे मृग का बच्चा सिंह के वश पड़े तो वह उसको मर्दन करता है, तैसे ही इन्द्रियों ने मुझे मर्दन किया है । हे भगवन्! जिस पुरुष ने इन्द्रियों को वश किया है उसका पूजन सब देवता करते हैं और उसके दर्शन की इच्छा करते हैं और जिसने मन को वश नहीं किया उसको दीन जानते हैं । जिस पुरुष ने इन्द्रियों को वश किया है वह सुमेरु पर्वत की नाईं अपनी गम्भीरता में स्थित है और जिसने इन्द्रियाँ वश नहीं कीं वह तृण की नाईं तुच्छ है । जिसको इन्द्रियाँ के अर्थ में सदातृष्णा रहती है वह पशु है, उसको मेरा धिक्कार है । हे मुनीश्वर! जो बड़ा महन्त भी हो यदि उसके इन्द्रियाँ वश नहीं तो वह महानीच है । हे मुनीश्वर! इन्द्रियों ने मुझे बड़ा दुःख दिया है । जैसे महाशून्य उजाड़ में चोर लूट लेते हैं तैसे ही इन्द्रियों ने मुझे लूट लिया है । इन्द्रियाँरूपी सर्पिणी में तृष्णारूपी विष है इससे इनमें सारा विश्व मोहित देख पड़ता है और कोई बिरला इनसे बचा होगा । इन्द्रियाँ दुष्ट हैं जो अपने-अपने विषय को लेती हैं और को नहीं देती और तुच्छ और जड़ हैं । जैसे बिजली का चमत्कार होता है और फिर छिप जाता है तैसे ही इन्द्रियों को सुख क्षणमात्र दिखाई देते हैं और फिर छिप जाते हैं । जबतक इन्द्रियों और विषयों का संयोग है तबतक सुख छिप जाते हैं । जबतक इन्द्रियों और विषयों का संयोग है तबतक सुख भासता है और जब इनका वियोग होता है तब दुःख उत्पन्न होता है, क्योंकि तृष्णा रहती है । एक सेना है उसमें इन्द्रियों के भोग उन्मत्त हाथी हैं, तृष्णारूपी जंजीर है, इन्द्रियाँरूपी रथ हैं, नाना प्रकार के विषय घोड़े हैं और संकल्प विकल्परूपी खड्गों का धारनेवाला अहंकार है और यह जो क्रिया अहंकारसहित होती है सो शास्त्रों के समूह हैं । हे मुनीश्वर! जिस पुरुष ने इस सेना को नहीं जीता वह मोहरूपी अन्धे कुयें में गिरके कष्ट पाता है और जिसने जीता है वह परमसुख को प्राप्त होता है । हे मुनीश्वर! ये इन्द्रियाँ भोग की इच्छारूपी खाईं में अहंकाररूपी राजा को डाल देती हैं और उसमें से निकलना कठिन होता है । जिस पुरुष ने इनको जीता है उसकी त्रिलोकी में जय होती है और जिसने नहीं जीता वह महादीनता को प्राप्त होता है और जन्म जन्मान्तर पाता है । इन इन्द्रियों में रजो गुण और तमोगुण रहता है । ये तबतक दाह देती हैं जबतक रज तम वृत्ति है । यह भी मन की वृत्ति है । जब इनका अभाव होता है तब शान्ति प्राप्त होती है । यह शोध करके देखा है कि इन्द्रियाँ, तप, यज्ञ, व्रत, तीर्थ और किसी औषध से वश नहीं होतीं और न इनके वश करने का कोई उपाय है, केवल सन्त के संग के निरवासी हो तब वश होती हैं । इससे मैं तुम्हारी शरण हूँ, कृपा करके मुझे आपदा के समुद्र से निकालो, क्योंकि मैं डूबता हूँ । मैं इस संसारसमुद्र में दीन हूँ, तुम पार करो और तुम्हारी महिमा सन्तों से भी सुनी है ।हे भगवन्! जो कोई सब आयु पर्यन्त विषयों के दिव्य भोग भोगता रहे और इनसे शान्ति चाहे तो न प्राप्त होगी । बड़े सुख दुःख समान हैं । आकाश में उड़नेवाले भी इन्द्रियों को वश नहीं कर सकते इससे दीन और दुःखी रहते हैं । कोई पुरुष वीर्यवान हो और फूल की नाईं महामत्त हाथी के दाँत को चूर्ण कर सकता हो परन्तु इन्द्रियों को अन्तर्मुख करना महा कठिन है । हे मुनीश्वर! इतने काल तक मैं महा अध्यात्म तप से दुःखी रहा हूँ । तुम कृपा करके निकालो मैं तुम्हारी शरण हूँ ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विद्याधरवैराग्यवर्णनं नाम शताधिकैकत्रिंशत्तमस्सर्गः ||131||

अनुक्रम

निर्वाण प्रकरण

भुशुण्डिजी बोले, हे वशिष्ठजी! जब इस प्रकार विद्याधर ने मेरे आगे प्रार्थना की तो मैंने कहा, हे अंग! तू धन्य है । अब तू जागा है । जैसे कोई पुरुष अन्धे कुयें में पड़ा हो और उसकी इच्छा हो निकले तो जानिये कि निकलेगा । हे विद्याधर! मैं उपदेश करता हूँ सो तू अंगीकार करियो और सत्य जानके मेरे वचनों में संशय न करना । जो सबके वचन हैं सो तुझसे कहता हूँ । जैसे उज्ज्वल आरसी प्रति बिम्ब को यत्न बिना ग्रहण करती है तैसे ही मेरे वचन शीघ्र ही तेरे हृदय में प्रवेश करेंगे । जिसका अन्तःकरण शुद्ध होता है उसको सन्त उपदेश करें अथवा न करें उसको सहज वचन ही उपदेश हो लगते हैं । जैसे शुद्ध आदर्श प्रतिबिम्ब को यत्न बिना ग्रहण करता है तैसे ही मेरे वचनों को तू धार लेगा तो तेरे दुःख नाश हो जावेंगे और परमानन्द को जो अविनाशी सुख और आदि अन्त से रहित है सो प्राप्त होगा । इन्द्रियों के सुख आगमापायी हैं सो दुःख के तुल्य हैं-इनसे रहित परमसुख है । हे विद्याधरों में श्रेष्ठ! जो कुछ तुझे सुखरूप दृष्ट आवे उसका त्याग कर तब तुझे परमसुख प्राप्त होगा । सब दुःखों का मूल अहंभाव है, जब अहंकार नाश हो तब शान्ति होगी । संसार का बीज भी अहंकार है और संसार मृगतृष्णा के जलवत् है । तबतक संसार नष्ट नहीं होता जबतक अहंतारूपी संसार का बीज है, जब अहंतारूपी बीज नष्ट हो जावे तब संसार भी निवृत्त हो जावे । संसाररूपी वृक्ष के सुमेरु आदिक पर्वत पत्र है, तारागणकली और फूल हैं सातों समुद्र रस हैं, जन्म मरण बेल है, सुख दुःख फल हैं और वह आकाश, दिशा, पाताल को धार के स्थित हुआ है । अहंकाररूपी वृक्ष पृथ्वी पर उत्पन्न हुआ है, अहंकार ही उसका बीज है और वृक्ष मिथ्या भ्रममात्र असत्य और सत्य की नाईं स्थित हुआ है । इससे अहंकाररूपी बीज का नाश करो और निरहंकाररूपी अग्नि से इसको जलाओ तब अत्यन्त अभाव हो जावेगा । यह भ्रम करके भय देता है । जैसे रस्सी में सर्पभ्रम और भय देता है इससे निरहंकाररूपी अग्नि से इसका नाश करो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणे शताधिकद्वात्रिंशत्तमस्सर्ग ||132||

अनुक्रम

संसाराडम्बरोत्पत्तिर्नाम

भुशुण्डिजी बोले, हे विद्याधर! यह ज्ञान जैसे उत्पन्न होता है सो सुनो । ब्रह्म विद्या शास्त्र के सुनने और आत्मविचार से यह उपजता है । उस आत्मज्ञानरूपी अग्नि से संसाररूपी वृक्ष को जलाओ । यह आगे भी नहीं था, अनहोता ही उदय हुआ है और मन के संकल्प से हुए की नाईं स्थित है । जैसे पत्थर में शिल्पी कल्पता है कि इतनी पुतलियाँ निकलेंगी सो हुई कुछ नहीं, तैसे ही मनरूपी शिल्पी यह विश्वरूपी पुतलियाँ कल्पता है । जब मन का नाश करोगे तब संसार भ्रम मिट जावेगा, आत्मविचार करके परमपद को प्राप्त होगे और अपना आप परमात्मरूप प्रत्यक्ष भासेगा । इससे अहंता को त्याग करके अपने स्वरूप में स्थित हो रहो । हे विद्याधर! यह जो संसाररूपी वृक्ष है सो अहंतारूपी बीज से उपजा है, उसको जब ज्ञानरूपी अग्नि से जलाइये तब फिर यह जगत् न उपजेगा । यदि इसको विचार करके देखिये तब अहं त्व नहीं रहता । हे विद्याधर! यह अहं त्वं मिथ्या है-इसके अभाव की भावना करो, यही उत्तम ज्ञान है । हे साधो! जब गुरु के वचन सुनकर उनके अनुसार पुरुषार्थ करे तब परमपद को प्राप्त होता है और जय होती है । हे विद्यारूपी कन्दरा के धारने वाले, पर्वत और विद्यारूपी पृथ्वी के धारनेवाले शेषनाग! यह संसाररूपी एक आडम्बर है और उसके सुमेरु जैसे कई थम्भे हैं जो रत्नों की पंक्ति से जड़े हुए हैं और वन, दिशा पहाड़, वृक्ष, कन्दरा, वैताल, देवता, पाताल, आकाश इत्यादिक ब्रह्माण्ड उसके ऊपर स्थित हैं । रात्रि दिन भूत प्राणी और इनके जो घर हैं सो चौपड़ के खाने हैं, जैसा कर्म करता है वह उसके अनुसार दुःख सुख भोगता है । ऐसे ही सम्पूर्ण प्रपञ्च जो क्रियासंयुक्त दिखाई देता है सो भ्रम से सिद्ध है--इससे मिथ्या है । जैसे स्वप्ने की संकल्प से भासती है तैसे ही यह सृष्टि भी भ्रम से भासती है और अज्ञान की रची हुई है, आत्मा के अज्ञान से भासती है और आत्मा के ज्ञान से लीन हो जाती है । जब सृष्टि है तब भी परमात्मतत्त्व ही है और जब सृष्टि न होगी तब भी परमात्मतत्त्व ही होगा, आगे भी वही था और कुछ प्रपञ्च तुझे दृष्ट आता है सो शून्य आकाश ही है । त्रिगुणमय प्रपञ्च गुणों का रचा हुआ अपने स्वरूप के प्रमाद से स्थित हुआ है और आत्मज्ञान से शून्य हो जावेगा । जब प्रपञ्च ही शून्य हुआ तब आत्मा और अनात्मा का कहना भी न रहेगा और पीछे जो शेष रहेगा सो केवल शुद्ध परमतत्त्व है और तेरा अपना आप है,उसमें स्थित हो रहे दृश्य का त्यागकर कि न मैं हूँ और न जगत् है । जब तू ऐसा होगा तब तेरी जय होगी । आत्मपद सबसे उत्तम है जब तू आत्मपद में स्थित होगा तब सबसे उत्तम होगा और तेरी जय होगी--इससे आत्मपद में ही स्थित हो रह ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे संसाराडम्बरोत्पत्तिर्नाम शताधिकत्रयस्त्रिंशत्तमस्सर्गः ।।133।।

अनुक्रम

चित्तचमत्कारोनाम

भुशुण्डिजी बोले, हे विद्याधर! यह प्रपञ्च भी आत्मा का चमत्कार है आत्मा शुद्ध चैतन्य है जिसमें जड़ और चेतन स्थित हैं और वह सबका अधिष्ठान है सो सत्तामात्र तेरा अपना आप है और अहं त्वं शब्द अर्थ से रहित आत्मत्वमात्र है पर सत्यस्वरूप होके असत्य की नाईं स्थित है। हे विद्याधर! तू इस जड़ और चेतन से अबोधमान हो रह। जब तू अबोध होगा तब शान्त और चिद्घन होगा। ये जो जड़ और चेतन हैं इन दोनों का परमार्थ चैतन्य के आगे अन्तर है, यद्यपि वह अदृश्य है तो भी इनके भीतर ही रहता है। जैसे समुद्र के भीतर बड़वाग्नि रहती है इन जड़ चेतनरूप का कारणरूप वही है, उत्पत्ति भी उसी से होती है और नाश भी वही करता है। हे विद्याधर! जब ऐसे जाना कि मैं चेतनरूप भी नहीं और जड़ भी नहीं तो पीछे जो रहेगा वह तेरा स्वरूप है। जब तेरे भीतर इन जड़ और चेतन दोनों का स्पर्श नहीं हुआ तब सबके भीतर जो चैतन्य है वही ब्रह्म तुझे भासेगा और विश्व आत्मा में कुछ नहीं हुआ। जैसे सूर्य की किरणों का चमत्कारजला भास होता है तैसे ही शुद्ध चैतन्य का चमत्कार विश्व हो भासता है। हे अंग! जैसे भीति पर पुतलियाँ लिखी होती हैं सो भीति से कुछ भिन्न नहीं, चितेरे ने लिखी हैं, तैसे ही शून्य आकाश में चित्तरूपी चितेरे ने विश्वरूपी पुतलियाँ कल्पी सी हैं आत्म रूपी भीति से भिन्न नहीं जैसे सुवर्ण में भूषण कल्पित है सो सुवर्ण से भिन्न नहीं, तैसे ही आत्मा में अज्ञान से विश्व देखते हैं वह आत्मा से भिन्न नहीं। जगत्, ब्रह्म, आत्मा, आकाश, देश, काल सब उसी तत्त्व की संज्ञा हैं। वही शुद्ध चैतन्य आकाश है जिसका चमत्कार ऐसे स्थित है उसी तत्त्व में तू भी स्थित हो रह। यह जगत् ऐसे है जैसे दूर दृष्टि से आकाश में बादल हाथी की सूँड़ से भासते हैं। यह जो अहं त्वं जगत् है सो अबोध से भासता है और बोध करके लीन हो जाता है- जैसे मरुस्थल में सूर्य की किरणों से जल भासता है और गन्धर्वनगर है तैसे ही यह जगत् है-इससे इसका त्याग करो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चित्तचमत्कारोनाम शताधिकचतुस्त्रिंशत्तमस्सर्गः ||134||

अनुक्रम

निर्वाण प्रकरण

भुशुण्डिजी बोले, हे विद्याधर! यह स्थावर जंगम जगत् सब आत्मा से उत्पन्न हुआ है और आत्मा ही में स्थित है और आत्मा ही विश्व में स्थित है । जैसे स्वप्न का विश्व स्वप्नवाले में स्थित है । आत्मा किसी का कारण नहीं, क्योंकि अद्वैत है । हे अंग! जो तू उस पद के पाने की इच्छा करता है तो तू ऐसे निश्चयकर कि न मैं हूँ और न यह जगत् है । जब तू ऐसा होगा तब आत्मपद की प्राप्ति होगी जो देश, काल और वस्तु के परिच्छेद से रहित है और सब यही परमात्मतत्त्व स्थित है । जगत् का कर्ता संकल्प ही है, क्योंकि संकल्प से जगत् उत्पन्न होता है । जैसे पवन से अग्नि उत्पन्न होता है और पवन ही से दीपक निर्वाण होता है, तैसे ही जब संकल्प बहिर्मुख फुरता है तब संसार उदय हो भासता है और जब संकल्प अंतर्मुख होता है तब आत्मपद प्राप्त होता है और सर्वप्रपञ्च लय हो जाता है । इससे संसार की नाना प्रकार की संज्ञा फुरने से ही होती हैं स्वरूप में कुछ नहीं, न सत्य है, न असत्य है, न स्वतः है, न अन्य है । यह सब कलनामात्र है, सत्, असत् और स्वतः, अन्य का अभाव हुआ तो वहाँ अहं त्वं कहाँ पाइये? वह है नहीं और बालक के यक्षवत् भ्रममात्र है । हे साधो! अहं त्वं नष्ट हो गये तहाँ जो सत्ता है सो परमपद है और जहाँ जगत् है वहाँ विचार से लीन हो जाता है वास्तव में पूछो तो ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं -नाममात्र दो हैं-जैसे घट और कुम्भ हैं-परन्तु भ्रम से नानात्व भासते हैं । जैसे समुद्र में आवर्त और तरंग हैं सो जल से कुछ भिन्न नहीं और पवन के संयोग से आकार भासते हैं तैसे ही आत्मा में जगत् कुछ भिन्न नहीं, संकल्प के फुरने से नाना प्रकार का जगत् भासता है । हे अंग! संकल्प के साथ मिलकर चित्त जैसे भावना करता है तैसा ही रूप अपना देखता है स्वरूप से कुछ भिन्न नहीं, परन्तु भावना से और का देखता है । जैसे शुद्ध मणि के निकट कोई रंग रखिये तो तैसा ही रूप भासता है और मणि में कुछ रंग नहीं तैसे ही चित्त शक्ति में कुछ हुआ नहीं और हुए की नाईं स्थित है । इससे अपने स्वरूप की भावना करो और जड़ चैतन्य को छोड़कर शुद्ध चैतन्य में स्थित हो रहो । जब जैसे जानकर अपने स्वरूप में स्थित होगे तब तुम्हें उत्थान भी अपना स्वरूप भासेगा जैसे स्थिर समुद्र में तरंग फुरते हैं सो कारणरूप जल बिना तो नहीं होते, तैसे ही ब्रह्म कारण रूप बिना जगत् नहीं परन्तु ब्रह्मसत्ता अकर्तारूप, अद्वैत और अच्युत है इसी से कहा है कि अकर्ता है और जगत् अकारणरूप है । जो जगत् अकारणरूप है तो न उपजता है और न नाश होता है-मरुस्थल के जलवत् है इसी से कहा है कि जगत् कुछ वस्तु नहीं केवल अज, अच्युत और शान्तरूप आत्मरूप ही अखण्डित स्थित है और शिला कोशवत् अचैत्य चिन्मात्र है । जिसके हृदय में चिन्मात्र की भावना नहीं उस मूर्ख से हमारा क्या है? हे साधो! परमार्थ से कुछ नहीं बना पर जहाँ-जहाँ मन है तहाँ-तहाँ अनेक जगत् हैं और तृण सुमेरु आदिक सबमें जगत् है । जो विचारकर देखिये तो वही रूप है और कुछ नहीं । जैसे सुवर्ण के जानने से भूषण भी स्वर्ण भासता है तैसे ही केवल सत्ता समानपद एक अद्वैत भिन्न कुछ नहीं और भिन्न-भिन्न संज्ञा भी वही है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शताधिकपञ्चत्रिंशत्तमस्सर्गः ||135||

अनुक्रम

भुशुण्डिजी बोले, हे विद्याधर! जब आत्मपद प्राप्त होता है तब ऐसी अवस्था होती है कि जो नग्नशरीर हो और उस पर बहुत शस्त्रों की वर्षा हो तो उससे दुःखी नहीं होता और सुन्दर कण्ठ से मिले तो हर्षवान् नहीं होता अर्थात् दोनों ही में तुल्य रहता है हे विद्याधर! तब तक आत्मपद का अभ्यास करे जबतक संसार से सुषुप्त की नाईं न हो । अभ्यास ही से आत्मपद को प्राप्त होगा । जब आत्मपद की प्राप्ति होगी तब पाञ्चभौतिक शरीर को ज्वर स्पर्श न करेंगे और यद्यपि शरीर में प्राप्त भी हों तो भी उसके भीतर प्रवेश नहीं करते । वह केवल शान्तपद में स्थित रहता है--जैसे जल में कमल को स्पर्श नहीं होता । हे देवपुत्र! जब तक देहादिकों में अभ्यास है तबतक आत्मा के प्रमाद से सुखदुःख स्पर्श करते हैं और जब आत्मा का साक्षात्कार होता है तब सब प्रपञ्च भी आत्मरूप हो जाते हैं । हे विद्याधर! जैसे कोई पुरुष विष पान करता है तो उसको जलन और खाँसी होती है- सो अवस्था विष की है-विष से भिन्न और कुछ नहीं परन्तु नाम संज्ञा हुई है- विष न जन्मता, न मरता है और जलन खाँसी उसमें दृष्टि आती है तैसे ही आत्मा न जन्मता है और न मरता है और गुणों के साथ मिलकर अवस्था को प्राप्त हुआ दृष्टि आता है आत्मा जन्ममरण से रहित है पर गुणों के साथ मिलने से जन्मता मरता भासता है और अन्तःकरण, देह इन्द्रियादिक भिन्न-भिन्न भासते हैं । हे साधो! यह जगत् भ्रम भासता है, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे इस जगत् को गोपद की नाईं अपने पुरुषार्थ से लाँघ जाते हैं और जो अज्ञानी हैं उनको अल्प भी समुद्र समान हो जाता है । इससे आत्मपद पाने का यत्न करो जिसके जानने से संसारसमुद्र तुच्छ हो जावे । वह आत्मतत्त्व सबमें अनुस्यूत और सबसे अतीत है, उसके जानने से अन्तःकरण शीतल हो जाता है और सब ताप नष्ट हो जाते हैं । हे साधो! फिर उसका त्याग करना अविद्या है और बड़ी मूर्खता है । हे साधो! ये सब पदार्थ ब्रह्मरूप ही है और जो ब्रह्मस्वरूप हुए तो मन अहंकार,कलंक आदिक भी वही है, किसी से किसी को कुछ दुःख सुख नहीं । हे विद्याधर! जब आत्मपद को जाना तब अन्तःकरण आदि भी ब्रह्म स्वरूप भासेंगे । जो संकल्प से भिन्न भिन्न जाने जाते हैं वे संकल्प के होते भी ब्रह्मस्वरूप भासेंगे । इससे निःसंकल्प होकर स्थित हो कि न मैं हूँ, न यह जगत् है और न इदम् है । इन शब्दों और अर्थों से रहित होकर स्थित हो रहे कि सब संशय मिट जावें । हे विद्याधर! जब तू ऐसा निर हंकार और निःसंकल्प होगा तब उत्थानकाल में भी बुद्धि, बोध, लज्जा, लक्ष्मी स्मृति, यश, कीर्ति इत्यादिक जो शुभारम्भ अवस्था हैं सब आत्मस्वरूप भासेंगी और सब आत्म बुद्धि रहेगी । इनके प्राप्त हुये भी केवल परमार्थ सत्ता से भिन्न न भासेगा--जैसे अन्धकार में सर्प के पैर का खोज नहीं भासता क्योंकि है नहीं, तैसे ही तुमको सर्व आत्मा न भासेगी-सब आत्मा ही भासेगी और जितने कुछ भावरूप पदार्थ स्थित हैं सो अभाव हो जावेंगे ।हे अंग! जिस पुरुष में विचारकर आत्मपद पाने का यत्न किया है वह पावेगा और जिसने कहा कि मैं मुक्त हो रहूँगा और ईश्वर मुझ पर दया करेंगे वह पुरुष कदाचित् मुक्त न होगा । पुरुष के प्रयत्न बिना कदाचित् मुक्ति न होगी । आत्मस्वरूप में न कोई दुःख है और किसी गुण से मिला हुआ सुख है वह केवल शान्तरूप है किसी से किसी को कुछ सुख दुःख नहीं, न सुख है और न दुःख है, न कोई कर्त्ता है और न भोक्ता है केवल ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शताधिकषट्त्रिंशत्तमस्सर्गः ।।136।।

अनुक्रम

इन्द्रोपाख्यान

भुशण्डिजी बोले, हे विद्याधर! जैसे कोई कलना करे कि आकाश में और आकाश स्थित है तो मिथ्या प्रतीति है, तैसे ही आत्मा में जो अहंकार फुरता है सो मिथ्या है । जैसे आकाश में और आकाश कुछ वस्तु नहीं । परमार्थ तत्त्व ऐसा सूक्ष्म है कि उसमें आकाश भी स्थूल है और ऐसा स्थूल है कि जिसमें सुमेरु आदिक भी सूक्ष्म अणुरूप हैं और राग द्वेष से रहित चैतन्य केवल शान्तरूप है-गुण और तत्त्व के क्षोभ से रहित है । हे देवपुत्र! अपना अनुभवरूपी चन्द्रमा अमृत का वर्षानेवाला है । हे अंग! जितने दृश्य पदार्थ भासते हैं सो हुए कुछ नहीं । हे अंग! आत्मरूप अमृत की भावना कर तू जन्म मरण के बन्धन से मुक्त हो जैसे आकाश में दूसरे आकाश की कल्पना मिथ्या है तैसे ही निराकार चिदात्मा में अहं मिथ्या है, और जैसे आकाश अपने आप में स्थित है तैसे ही आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है और अहं त्वं आदिक से रहित है जब उसमें अहं का उत्थान होता हे तब जगत् फैल जाता है-जैसे वायु फुरने से रहित हुई आकाशरूप हो जाती है तैसे ही संवित् उत्थान अहं से रहित हुई आकाशरूप हो जाती है और जगत्भ्रम मिट जाता है । फुरने से जगत् फुर आया है, वास्तव में कुछ नहीं ज्ञानवान् को आत्मा ही भासता है और देश, काल बुद्धि, लज्जा, लक्ष्मी, स्मृति, कीर्त्ति सब आकाश रूप हैं- ब्रह्म रूपी चन्द्रमा के प्रकाश से प्रकाशते हैं । जैसे बादलों के संयोग से आकाश भ्रमभाव को प्राप्त होता है, तैसे ही प्रमाद से संवित् दृश्यभाव को प्राप्त होती है परन्तु और कुछ नहीं होती । जैसे तरंग उठने से जल और कुछ नहीं होता और जैसे काष्ठ छेदे से और कुछ नहीं होता, तैसे ही दृष्टा से दृश्य भिन्न नहीं होता । जैसे केले के थम्भ में पत्र बिना और कुछ नहीं निकलता और पत्र शून्यरूप है तैसे ही क्रूररूप जगत् भासता है परन्तु आत्मा से भिन्न नहीं शून्य रूप है । शीश, भुजा, नेत्र, चरण आदिक नाना प्रकार भिन्न भिन्न भासते हैं परन्तु सब रूप केले के पत्रों की नाईं भासते हैं और सब असाररूप हैं । हे विद्याधर! चित्त में रागरूपी मलिनता है, जब वैराग्यरूपी झाड़ से झाड़िये तब चित्त निर्मल हो । जैसे दीवार पर चित्र लिखे होते हैं तैसे ही आत्मा जगत् भासता है और देवता, मनुष्य, नाग, दैत्य आदिक सब जगत् संकल्परूपी चितेरे ने चित्र लिखे हैं, स्वरूप के विचार से निवृत्त हो जाते हैं । जब स्नेहरूप संकल्प फुरता है तब भाव अभावरूप जगत् फैल जाता है । जैसे जल में तेल के बूँद फैल जाते हैं और जैसे बाँस से अग्नि निकलकर बाँस को दग्ध करती है तैसे ही संकल्प इससे उपजकर इसी को खाते हैं । आत्मा में जो देश काल पदार्थ भासते हैं यही अविद्या है--पुरुषार्थ से इसका अभाव करो । दो भाग साधु के संग और कथा सुनने में व्यतीत करो, तृतीय भाग शास्त्र का विचार करो और चतुर्थ भाग में आत्मज्ञान का आप ही अभ्यास करो । इस उपाय से अविद्या नष्ट हो जावेगी और अशब्द और अरूपपद की प्राप्ति होगी । विद्याधर ने पूछा, हे मुनीश्वर! चार भागों के उपाय से जो अशब्दपद प्राप्त होता है सो काल का क्रम क्या है? और नाम अर्थ के अभाव हुए शेष रहता क्या है? भुशुण्डिजी बोले, हे विद्याधर! संसार-समुद्र के तरने को ज्ञान वालों का संग करना और जो विकृत निर्वैर पुरुष हैं उनकी भली प्रकार टहल करना इससे अविद्या का अर्धभाग नष्ट होगा, तीसरा भाग मनन करने और चतुर्थ भाग अभ्यास करके नष्ट होगा । जो यह उपाय न कर सको तो यह युक्ति करो कि जिसमें चित्त अभिलाषा करके आसक्त हो उसी का त्याग करो कि जिसमें चित्त अभिलाषा करके आसक्त हो उसी का त्याग करो । एक भाग अविद्या इस प्रकार नष्ट होगी । तीन भाग शास्त्र विचार और अपने यत्न से शनैः शनैः नष्ट होवेगी । साधुरंग सत्शास्त्र विचार और अपना यत्न होवे तो एक ही बार अविद्या नष्ट हो जावेगी । यह समकाल कहे हैं ।

एक एक के सेवने से एक एक भाग निवृत्त होता है । पीछे जो शेष रहता है उसमें नाम अर्थ सब असत्‌्रूप हैं और वे अजर, अनन्त, एकरूप हैं । संकल्प के उपजे से पदार्थ भासते हैं और संकल्प से लीन हो जाते हैं । हे विद्याधर! यह जगत् संकल्प से रचाहै-जैसे आकाश में सूर्य निराधार स्थित होता है तैसे ही देशकाल की अपेक्षा से रहित यह मननमात्र स्थित है! तीनों जगत् मन के फुरने से फुर आते हैं और मन के लय हुए हो जाते हैं-जैसे स्वप्न के पदार्थ जागे से अभाव हो जाते हैं । हे विद्याधर! ब्रह्मरूपी वन में एक कल्पवृक्ष है जिसकी अनेक शाखा हैं! उसकी एक शाख से जगत्- रूपी (गूलर) का फल है जिसमें देवता, सत्य, मनुष्य, पशु आदिक मच्छर हैं । वासनारूपी रस से पूर्ण मज्जा पहाड़ है, पञ्छभूत मुख द्वारा उसका निकलने का खुला मार्ग इत्यादिक सुन्दर रचना बनी है । उसमें त्रिलोकी का ईश्वर इन्द्र एक हुआ और गुरु के उपदेश से उसका आवरण नष्ट हो गया । फिर इन्द्र और दैत्यों का युद्ध होने लगा और इन्द्र अपनी सेना को ले चला पर उसकी हीनता हुई इसलिये वह भागा और दशों दिशाओं में भ्रमता रहा पर जहाँ जावे वहाँ दैत्य उसके पीछे चले आवें । जैसे पापी परलोक में शोभा नहीं पाता तैसे ही इन्द्र ने जब शान्ति न पाई तब अन्तवाहकरूप करके सूर्य की त्रस रेणु में प्रवेश कर गया । जैसे कमल में भँवरा प्रवेश करे तैसे ही उसने प्रवेश किया तो वहाँ उसको युद्ध का वृत्तान्त विस्मरण हो गया तब एक मन्दिर में बैठा आपको देखता हुआ । जैसे निद्रा से स्वप्नसृष्टि भास आवे तैसे ही उसने वहाँ रत्न और मणियों संयुक्त नगर देखा-वह उसमें गया और पृथ्वी, पहाड़, नदियाँ, चन्द्र, सूर्य, त्रिलोकी इसको भासने लगी और उस जगत् का इन्द्र आपको देखा कि दिव्य भोग और ऐश्वर्य से सम्पन्न मैं इन्द्र स्थित हूँ । वह इन्द्र कुछ काल के उपरान्त शरीर को त्याग के निर्वाण हुआ--जैसे तेल से रहित दीपक निर्वाण होता है-तब कुन्दनाम उसका पुत्र हुआ और राज्य करने लगा । फिर उसके एक पुत्र हुआ तब कुन्द भी इन्द्र शरीर को त्यागकर परमपद को प्राप्त हुआ और उसका पुत्र राज्य करने लगा । फिर उसके भी एक पुत्र हुआ, इसी प्रकार सहस्त्र पुत्र होकर राज्य करने लगा । फिर उसके भी एक एक पुत्र हुआ,इसी प्रकार सहस्त्र पुत्र होकर राज्य करते रहे उन्हीं के कुल में यह हमारा इन्द्र राज्य करता है इससे यह जगत् संकल्पमात्र है और उस त्रसरेणु में यह सृष्टि है । इसलिये इस जगत् को संकल्पमात्र जानकर इसकी आस्था त्यागो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे इन्द्रोपाख्याने त्रसरेणुजगतवर्णनन्नाम शताधिकसप्तत्रिंशत्तमस्सर्गः ||137||

अनुक्रम

भुशुण्डिजी बोले, हे विद्याधर! फिर उनके कुल में एक बड़ा श्रीमान् इन्द्र हुआ जो त्रिलोकी का राज्य करता रहा और फिर निर्वाण हुआ । उसके एक पुत्र था जिसको वृहस्पतिजी के वचनों से ज्ञानरूप प्रतिभा उदय हुई तब वह विदितवेद होकर स्थित हुआ, यथाप्राप्ति में इन्द्र होकर राज्य करने लगा और दैत्यों को जीता । एक काल में वह किसी कार्य के निमित्त कमल की तन्तु में घुस गया तो वहाँ उसको नाना प्रकार का जगत् भासने लगा और अपनी इन्द्र की प्रतिभा हुई इससे उसे इच्छा उपजी कि मैं ब्रह्मतत्त्व को प्राप्त हो जाऊँ और दृश्य पदार्थ की नाईं उसे प्रत्यक्ष देखूँ । इसलिये एकान्त बैठकर समाधि में स्थित हुआ तो उसको भीतर बाहर ब्रह्म साक्षात्कार हुआ और उस प्रतिमा के उदय होने से यह निश्चय हुआ कि सर्व ब्रह्म ही है और सब ओर पूजने योग्य है । सब उसी को पूजते भी हैं और सर्व हैं । सर्व शब्द, रूप, अवलोक और मनस्कार से रहित केवल शुद्ध आत्मपद है और सर्व ओर उसी के पाणिपाद हैं । सब शीश और मुख उसी के हैं, सब ओर उसी के श्रवण हैं, सब ओर उसी के नेत्र हैं और सबमें आत्मत्व से वही स्थित हो रहा है । सब इन्द्रियों और विषयों को वही प्रकाशता है और सब इन्द्रियों से रहित है और असक्त हुआ भी सबको धार रहा है । वह निर्गुण है और इन्द्रियों के साथ मिल कर गुणों का भोक्ता है और सब भूतों के भीतर बाहर व्याप रहा है । सूक्ष्म है इससे दुर्विज्ञेय है और इन्द्रियों का विषय नहीं । अज्ञानी को अज्ञान से दूर है और आत्मत्व द्वारा ज्ञानी को ज्ञान से निकट है और अनन्त, सर्वव्यापी केवल शान्तरूप है जिसमें दूसरा कोई नहीं । घट, पट, दीवार, गाय, आवा, बरा, नरा, सबमें वही तत्त्व भासता है और पर्वत, पृथ्वी, चन्द्र, सूर्य, देश, काल, वस्तु सब ब्रह्म ही है-ब्रह्म से भिन्न नहीं । हे विद्या धर!इस प्रकार इन्द्र को ज्ञान हुआ और जीवन्मुक्त हुआ । तब वह सब चेष्टा करे परन्तु अन्तर से बन्धवान् न हो । जब कुछ काल बीता तब इन्द्र उस निर्वाणपद को प्राप्त हुआ जिसमें आकाश भी स्थूल है । फिर उस इन्द्र का एक बड़ा शूरवीर पुत्र सब दैत्यों को जीतकर देवता और त्रिलोकी का राज्य करने लगा और उसको भी ज्ञान उत्पन्न हुआ । सतशास्त्र और गुरु के वचनों से कुछ काल में वह भी निर्वाण हुआ तब उसका जो पुत्र रहा वह राज्य करने लगा । इसी प्रकार कई इन्द्र हुए और राज्य करते रहे और नाना प्रकार के व्यवहारों को देखते रहे । फिर उसके कुल में कोई पुत्र था उसको यह हमारी सृष्टि भासि आई तो वह भी ब्रह्मध्यानी हुआ और इस त्रिलोकी का राज्य करने लगा और अबतक विश्व का इन्द्र वही है । हे विद्याधर! इस प्रकार जो विश्व की उत्पत्ति है सो संकल्पमात्र है और सब मैंने तुझसे कही हैं । पहले उसको त्रसरेणु में सृष्टि भासी, फिर उस सृष्टि के एक कमल की तन्तु में भासी और फिर उसमें कई वृत्तान्त जो संकल्पमात्र थे उसने देखे और उस अणु में अनेक अवस्था देखी । हे विद्याधर! पर वास्तव में वह कुछ हुई नहीं । जैसे आकाश में नीलता भासती है और है नहीं तैसे ही यह विश्व है । आत्मा में विश्व का अत्यन्त अभाव है । यह विश्व अहंभाव से उपजा है । जब अहंभाव फुरता है तब आगे सृष्टि बनती है और जब अहं का अभाव होता है तब विश्व कोई नहीं । इस विश्व का बीज अहं है, इससे तू ऐसी भावना कर कि न मैं हूँ और न जगत् है जब ऐसी भावना की तब आत्मा ही शेष रहेगा जो प्रत्यक्ष ज्ञानरूप अपना आप है । हे विद्याधर! इस मेरे उपदेश को अंगीकार कर ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे संकल्पैकताप्रतिपादनन्नाम शताधिकअष्टत्रिशत्तमस्सर्गः ||138||

अनुक्रम

भुशुण्डिविद्याधरोपाख्यान समाप्ति

भुशण्डिजी बोले, हे विद्याधर! जब अहं का उत्थान होता है तब आगे सृष्टि बनकर भासता है और जब अहं का अभाव होता है तब विश्व कुछ नहीं भासता केवल शुद्धआत्मा ही भासता है हे विद्याधर! इन्द्र ने कहा कि मैं हूँ, उसको सूर्य की किरणों के अणु में ऐसे अहं हुआ तो उसमें नाना विस्तार देखा और कष्ट पाया । जो उसको अहं न होता तो दुःख न पाता । दुःखरूपी वृक्ष का अहंरूपी बीज है और आत्मविचार से इसका नाश होता है । जब अहं का नाश होता है तब आत्मपद का साक्षात्कार होता है और आत्मपद के साक्षात्कार हुए से प्रच्छन्न अहं का नाश होता है । हे विद्याधर! आत्मपद एक पर्वत है जिस पर आकाश रूपी वन है और उसमें संसाररूपी वृक्ष लगा है । उसमें वासनारूपी रस है, अज्ञानरूपी भूमि से उत्पन्न हुआ है, नदियाँ-समुद्र उसकी नाड़ी हैं, चन्द्रमा और तारे फूल हैं वासनारूपी जल से बढ़ता है और अहंकाररूपी वृक्ष का बीज है । सुख-दुःखरूपी इसके फल हैं, आकाश इसकी डालें हैं और जड़ पाताल है । तुम इस वृक्ष को ज्ञानरूपी अग्नि से जलावो और अहंरूपी वृक्ष के बीज का नाश करो । हे विद्याधर! एक खाईं है जिसके जन्ममरणरूपी दो किनारे हैं, अनात्मरूपी उसमें जल है, वासनारूपी तरंग है और विश्व रूपी बुद्बुदे होते भी हैं और मिट भी जाते हैं । शरीररूपी झाग है और अहंकाररूपी वायु है, जब वायु हुई तब तरंग और बुद्बुदे सब होते हैं और जब वायु मिट गई तब केवल स्वच्छ निर्मल ही भासता है । हे विद्याधर! जो वायु हुई तो जल से भिन्न कुछ न हुआ और जो न हुई तो भी जल से भिन्न कुछ नहीं-जल ही है; तैसे ही अज्ञान के होते और निवृत्त हुए भी आत्मपद ज्यों का त्यों है परन्तु सम्यक्दर्शन से आत्मपद भासता है और अज्ञानसे जगत् भासता है । अहं का होना ही अज्ञान है जब अहं हुआ तब मम भी होता है सो `अहं' `मम' नाम संसार का है जब अहं मम मिटता है तब जगत् का अभाव होता है । अहं के होते दृश्य भासता है और दृश्य में अहं होता है, इससे संवेदन को त्यागकर निर्वाणपद में प्राप्त हो । इतना कह भुशुण्डिजी ने मुझसे कहा कि हे वशिष्ठजी! इस प्रकार जब मैंने विद्याधर को उपदेश किया तो वह समाधि में स्थित हुआ और परम निर्वाणपद को प्राप्त हुआ । जैसे दीपक निर्वाण हो जाता है तैसे ही उसका चित्त क्षोभ से रहित शान्ति को प्राप्त हुआ । हे ब्राह्मण! उसका हृदय शुद्ध था इस कारण मेरे वचन शीघ्र ही उसके हृदय में प्रवेश कर गये । जब वह समाधि में स्थित हुआ तो मैंने उसको बारम्बार जगाया परन्तु वह न जागा-जैसे कोई जलता जलता शीतल समुद्र में जाय बैठे और उससे कहिये कि तू निकल तो वह नहीं निकलता, तैसे ही संसारताप से जलता हुआ जब आत्मसमुद्र को प्राप्त होता है तब वह अज्ञानरूपी संसार के प्रवाह को नहीं देखता । हे वशिष्ठजी! जिसका अन्तःकरण शुद्ध होता है उसको थोड़े वचन भी बहुत हो लगते हैं । जैसे तेल की एक बूँद जल में बहुत फैल जाती है तैसे ही जिसका अन्तःकरण शुद्ध होता है उसको थोड़ा वचन भी बहुत होकर लगता है । और जिसका अन्तःकरण मलिन होता है उसको वचन नहीं लगते । जैसे आरसी पर मोती नहीं ठहरता तैसे ही गुरुशास्त्र के वचन उसको नहीं लगते । जब विषयों से वैराग उपजे तो जानिये कि हृदय शुद्ध हुआ है । हे वशिष्ठजी! जब मैंने विद्याधर को उपदेश किया तब वह शीघ्र ही आत्मपद को प्राप्त हुआ क्योंकि उसका चित्त निर्मल था । हे मुनीश्वर! जो तुमने मुझसे पूछा था सो कहा कि उस विद्याधर को मैंने ज्ञान से रहित चिरकाल जीता देखा । इतना कह वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ऐसे कहकर काकभुशुण्डि चुप हो रहा और मैं नमस्कार करके आकाशमार्ग से अपने घर आया । हे रामजी! मेरे और काकभुशुण्डि के इस संवाद को एकादश चौकड़ी युग बीते हैं । हे रामजी यह नियम नहीं है कि थोड़े काल में ज्ञान उपजे वा बहुत काल में, यह हृदय की शुद्धता की बात है, जिसका हृदय शुद्ध होता है उसको गुरु और शास्त्रों का वचन

शीघ्र ही लगता है-जैसे जल नीचे को स्वाभाविक जाता है । हे रामजी! इतना उपदेश जो तुमको मैंने क्रम से किया है उसका तात्पर्य यही है कि फुरने को त्याग करो कि न मैं हूँ और न कोई जगत् है-तब पीछे निर्विकल्प केवल आत्मपद रहेगा जो सबका अपना आप और उसका साक्षात्कार तुमको होगा । जैसे मलिन दर्पण में मुख नहीं दीखता तैसे ही आत्मरूपी दर्पण अहंरूपी मलसे ढपा है, जब इसका त्याग करो तब आत्मपद की प्राप्ति होगी और जगत् भी अपना आप भासेगा । आत्मा से कुछ भिन्न नहीं, क्योंकि केवल आत्मत्वमात्र है और जो कुछ भासता है उसे मृग तृष्णा के जलवत् और बन्ध्या के पुत्रवत् जानो, यह जगत् आत्मा के प्रमाद से भासता है जैसे आकाश में नीलता भासती है पर है नहीं, तैसे ही जगत् प्रत्यक्ष भासता है और है नहीं । जैसे रस्सी में सर्प मिथ्या है तैसे ही आत्मा में जगत् मिथ्या है । जब आत्मा का ज्ञान होगा तब जगत् का अत्यन्त अभाव होगा और केवल आत्मत्वमात्र अपना आप भासेगा ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुशुण्डिविद्याधरोपाख्यान समाप्तिर्नाम शताधिकनवत्रिंशत्तमस्सर्गः ||139||

अनुक्रम

अहंकारअस्तयोगोपदेश

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुम अहं वेदना से रहित हो रहो । संसाररूपी वृक्ष का बीज अहं ही है । वासना से शुभ अशुभरूप कर्म का सुख दुःख फल है और वासना ही से प्रफुल्लित होता है, इससे अहंभाव को निवृत्त करो । जब अहं फुरता है तब आगे जगत् भासता है, जब अहंता से रहित होगे तब जगत्‌भ्रम मिट जावेगा । अहंता आत्मबोध से नष्ट होता है । आत्मबोधरूपी खंभारी से उड़ाया अहंतारूपी पाषाण न जानोगे कि कहाँ गया और सुवर्ण पाषाणतुल्य तुमको हो जावेगा । शरीररूपी पत्र पर अहंतारूपी अणु स्थित है, जब बोधरूपी वायु चलेगी तब न जानोगे कि कहाँ गया । शरीररूपी पत्र पर अहंतारूपी बरफ का कारण स्थित है ,बोधरूपी सूर्य के उदय हुए न जानोगे कि वह कहाँ गया बोध बिना अहंता नष्ट नहीं होती चाहे कीचड़ में रहे और चाहे पहाड़ में जावे, चाहे घर में रहे और चाहे स्थल में रहे, चाहे स्थूल हो और चाहे सूक्ष्म हो चाहे निराकार हो और चाहे रूपान्तर को प्राप्त हो, चाहे भस्म हो और चाहे मृतक हो, चाहे दूर हो अथवा निकट हो जहाँ रहेगा वहीं अहंता इसके साथ है । हे रामजी! संसाररूपी वट का बीज अहंता है उसी से सब शाखा फैली है सब अर्थों का कारण अहंता है, जबतक अहंता है तबतक दुःख नहीं मिटता और जब अहंभाव नष्ट हो तब परमसिद्धि की प्राप्ति हो । हे रामजी! जो कुछ मैंने उपदेश किया है उसको भली प्रकार विचारकर उसका अभ्यास करो तब संसाररूपी वृक्ष का बीज जल जावेगा और आत्मपद की प्राप्ति होगी ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अहंकारअस्तयोगोपदेशो नाम शताधिकचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ||140||

अनुक्रम

विराडात्म वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! संसार संकल्पमात्र सिद्ध है और भ्रम से उदय हुआ है । आत्मस्वरूप में अनेक सृष्टि बसती हैं, कोई लीन होती है कोई उत्पन्न होती हैं और कोई उड़ती हैं, कहीं इकट्ठी होती हैं और कहीं भिन्न भिन्न उड़ती हैं सो सब मुझको प्रत्यक्ष भासती हैं । देखो वे उड़ती जाती हैं सो ये सब आकाशरूप हैं और आकाश ही से मिलती हैं । जैसे केले का वृक्ष देखनेमात्र सुन्दर होता है पर उसमें कुछ सार नहीं होता तैसे ही विश्व देखनेमात्र सुन्दर है पर आकाशरूप है । जैसे जल में पहाड़ का प्रतिबिम्ब पड़ता है और हिलता भासता है तैसे ही यह जगत् है । रामजी ने पूछा, हे भगवन् आप कहते हैं कि सृष्टि मुझे प्रत्यक्ष उड़ती भासती हैं- तुम भी देखो, यह तो मैंने कुछ नहीं समझा कि आप क्या कहते हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अनेक सृष्टि उड़ती हैं सो सुनो । पञ्चभौतिक शरीर में प्राण में चित्त स्थित है और उस चित्त में अपनी-अपनी सृष्टि है । जब यह पुरुष शरीर का त्याग करता है तब लिंगशरीर जो वासना और प्राण हैं वे उड़ते हैं । उस लिंग शरीर में जो विश्व है सो सूक्ष्मदृष्टि से मुझको भासता है । हे रामजी! आकाश में जो वायु है जिसका रूपरंग कुछ नहीं वही वायु प्राणों से मिलकर मुझे प्रत्यक्ष दिखाई देती है-इसी का नाम जीव है । स्वरूप से न कोई आता है न जाता है परन्तु लिंगशरीर के संयोग से आता-जाता और जन्मता-मरता दीखता है और अपनी वासना के अनुसार आत्मामें विश्व देखता है और कुछ नहीं बना । यह वासनामात्र सृष्टि है, जैसी वासना होती है तैसा विश्व भासता है । हे रामजी! यह पुरुष आत्म स्वरूप है परन्तु लिंगशरीर के मिलने से इसका नाम जीव हुआ है और आपको प्रच्छन्न जानता है, वास्तव में ब्रह्मस्वरूप है । देश, काल और वस्तु के परिच्छेद से रहित ब्रह्म है पर उसके प्रसाद से आपको कुछ मानता है इसी का नाम लिंगशरीर है । जैसे घटाकाश भी महाकाश है परन्तु घट के खप्पर से परिच्छिन्न हुआ है तैसे ही यह पुरुष भी आत्मस्वरूप है और अहंकार के संयोग से प्रच्छन्न हुआ है । जैसे घट को एकदेश से उठाकर देशान्तर में ले जा रक्खो तो आकाश तो न कहीं गया और न आया परन्तु आता-जाता भासता है, तैसे ही आत्मा अखण्डरूप है परन्तु प्राण चित्त से चलता भासता है । जब अहंकाररूप चित्त नष्ट हो तब अखण्डरूप हो, जबतक अहंकार नहीं जाता तबतक जगत्ुभ्रम दीखता है और वासना करके भटकता फिरता है । वासनामय सृष्टि अपने अपने चित्त में स्थित है । जब शरीर का त्याग करता है तब आकाश में उड़ता है और प्राणवायु उड़कर जो आकाश में शून्यरूप वायु है उससे जा मिलता है । वहाँसबको अपनी-अपनी वासना के अनुसार सृष्टि भासि आती है और अपनी सृष्टि लेकर इस प्रकार उड़ते हैं जैसे वायु गन्ध को ले जाती है सो ही मुझको सूक्ष्मदृष्टि से उड़ते भासते है । हे रामजी! स्थूलदृष्टि से लिंगशरीर नहीं भासता, सूक्ष्मदृष्टि से दीखता है । जिस पुरुष को सूक्ष्मदृष्टि से लिंगशरीर देखने की शक्ति है और ज्ञान से रहित है वह भी मेरे मत में मूर्ख और पशु है । हे रामजी! जब मनुष्य वासना का त्याग करता है-अर्थात् इस अहंकार को कि मैं हूँ त्याग करता है तो आगे विश्व नहीं देता केवल निर्विकल्प ब्रह्म भासता है और उसके प्राण नहीं उड़ते वहीं लीन हो जाते हैं, क्योंकि उसका चित्त अचित्त हो जाता है । जबतक अहंकार का संयोग है तबतक विश्व भी चित्त में स्थित है । जैसे बीज में वृक्ष और तिलों में तेल स्थित होता है तैसे ही उसके हृदय में विश्व स्थित है । जैसे मृत्तिका में बड़े छोटे बासन, लोहे में सुई और खड़ग और बीज में वृक्षभाव स्थित है चैतन्य अथवा जड़ हो तैसे ही यह संकल्पकलना में भेद है, स्वरूप से कुछ नहीं और वैसे ही यह जगत् भी है । हे रामजी! विश्व संकल्पमात्र है, क्योंकि दूसरी अवस्था में नाश हो जाता है । यह जाग्रत जो तुमको भासती

है सो मिथ्या है । जब स्वप्न आता है तब जाग्रत नहीं रहती और जब जाग्रत् आती है तब स्वप्न नष्ट हो जाता है,जब मृत्यु आती है तब सृष्टि का अत्यन्त अभाव हो जाता है और देश, काल, पदार्थ सहित वासना के अनुसार और सृष्टि भासती है । हे रामजी!यह विश्व ऐसा है जैसे स्वप्न नगर । जैसे संकल्पपुर होते हैं तैसे ही ये सब संकल्प उड़ते फिरते हैं । कई सृष्टि परस्पर मिलती हैं, कई नहीं मिलतीं परन्तु सब संकल्परूप हैं और भ्रम से और का और भासता है । जैसे कोई पुरुष बड़ा होता है और कोई छोटा भासता है तो छोटे को बड़ा भासता है और जैसे हाथी के निकट और पशु तुच्छ भासते हैं और चींटी के निकट और बड़े भासते हैं तैसे ही जो ज्ञानवान् पुरुष है उसको बड़े पदार्थ देश, काल संयुक्त विश्व तुच्छ भासता है और वह उन्हें असत्य जानता और जो अज्ञानी है उसको संकल्पसृष्टि बड़ी होकर भासती है । जैसे पहाड़ बड़ा भी होता है परन्तु जिसकी दृष्टि से दूर है उस को महालघु और तुच्छसा भासता है और चींटी की निकट तुच्छ मृत्तिका का ढेला भी पहाड़ के समान है तैसे ही ज्ञानी की दृष्टि में जगत् नहीं, इससे बड़ा जगत् भी उसको तुच्छ रूप भासता है और अज्ञानी को तुच्छरूप भी बड़ा भासता है । हे रामजी! यह विश्वभ्रम से सिद्ध हुआ है । जैसे भ्रम से सीपी में रूपा और रस्सी में सर्प भासता है तैसे ही आत्मा के प्रमाद से यह भासता है पर आत्मा से यह विश्व भासता है पर आत्मा से भिन्न नहीं । जैसे निद्रादोष से जीव अपने अंग भूल जाते हैं और जागे हुए सब अंग भासते हैं तैसे ही अविद्यारूपी निद्रा में सोया हुआ जब जागता है तब उसे सब विश्व अपना आप दिखाई देता है । जैसे स्वप्न से जगा हुआ स्वप्न के विश्व को अपना आपही देखता है तैसे ही यह विश्व अपना आपही भासेगा । हे रामजी! जब मनुष्य निद्रा में होता है तब उसे शुभ अशुभ विश्व में राग कुछ नहीं होता और जब जागता है तब इष्ट में राग और अनिष्ट में द्वेष होता है इसी प्रकार जबतक विश्व में हेयोपादेय बुद्धि है तबतक जो सर्वज्ञ भी हो तो भी मूर्ख है । हे रामजी! जब जड़ हो जावे तब कल्याण हो । जड़ होना यही है कि दृश्य से रहित आत्मा में स्थित हो वह आत्मा चिन्मात्र है । जबतक आत्मा से भिन्न जो कुछ सत्य अथवा असत्य जानता है तबतक स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती और जब संवित् फुरने से रहित हो तब स्वरूप का साक्षात्कार हो । इससे फुरने का त्याग करो । यह स्थावर-जंगम जगत् जो तुमको भासता है सो सर्व ब्रह्मरूप है । जब तुम ऐसे निश्चय करोगे तबसर्व विवर्त्त का अभाव हो जावेगा और आत्मपद ही शेष रहेगा । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह जीव आपने कहा सो जीव का स्वरूप क्या है, वह आकार को कैसे ग्रहण करता है, उसका अधिष्ठान परमात्मा कैसे है और उसके रहने का स्थान कौन है सो कहिये । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी,! यह जो शुद्ध परमात्मतत्त्व निर्विकल्प चिन्मात्र है, उसमें चैत्योन्मुखत्व हुआ कि `मैं हूँ' ऐसे चित्कला अज्ञानरूप फुरी है और उसको देह का सम-बन्ध हुआ है उसी का नाम जीव है । वह जीव न सूक्ष्म है, न स्थूल है, न शून्य है, न अशून्य है, न थोड़ा है, न बहुत है, केवल शुद्ध आत्मत्व मात्र है । वह न अणु है, न स्थूल है, अनन्त चैतन्य आकाशरुप है उसी को जीव कहते हैं स्थूल से स्थूल वही है और सूक्ष्म से सूक्ष्म वही है । अनुभव चैतन्य सर्वगत जीव है, उसमें वास्तव शब्द कोई नहीं और जो कोई शब्द है सो प्रतियोगी से मिलकर हुआ है । जीव अद्वैत है उसका प्रतियोगी कैसे हो यही जीव का स्वरूप है । चैत्य के संयोग से जीव हुआ है और उसका अधिष्ठान चैतन्य आकाश, निर्विकल्प, चैत्य से रहित, शुद्ध, चैतन्य परमात्मतत्त्व है, उसमें जो संवित फुरी है उसी का नाम जीव है वह सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल और सबका बीज है । उसी को विराट् कहते हैं और उसका शरीर मनोमय है । आदि परमात्मतत्त्व से फुरा है और अन्य अवस्था को प्राप्त नहीं हुआ अर्थात् प्रच्छन्नता को नहीं प्राप्त हुआ-आपको सर्व आत्मा जानता है । इसका नाम विराट् है उसका

प्रथम मनोमात्र और शुद्ध प्रकाशरूप राघद्वेष रूपी मल से रहित अनन्त आत्मा है और सर्व मन, कर्मों और देहों का बीज है, सबमें व्याप रहा है और सब जीवों का अधिष्ठाता है । उसी के संकल्प से ये जीव रचे हैं और पञ्चज्ञान इन्द्रियों, अहंकार, मन और संकल्प यह आठों आकार ग्रहण किये हैं । परमार्थ को त्यागने फुरने से जो आकार उत्पन्न हुए हैं उनको ग्रहण करना इसी का नाम पुर्यष्टका है । फिर इन इन्द्रियों के छिद्र रचे और स्थूल रूप रचकर उनमें आत्मा प्रतीत किया । जैसे जीव शयनकाल में जाग्रत् शरीर को त्यागकर स्वप्न शरीर का अंगीकार करता है तैसे ही शुद्ध, चिन्मात्र, निर्विकार अद्वैतस्वरूप को त्यागकर उसने वासनामय शरीर का अंगीकार किया है पर वास्तवस्वरूप का कुछ त्याग नहीं किया और स्वरूप से नहीं गिरा शुद्ध निर्विकल्प भाव को त्यागकर विराट्भाव हुआ है । इसी प्रकार आगे उस पुरुष ने ज्ञान से चारों वेद रचे और नीति को निश्चय किया । नीति इसे कहते हैं कि यह पदार्थ ऐसे हो और इतने कालतक रहे-निदान यह रचना रची और जो जो संकल्प करता गया सो सो देश, काल, पदार्थ, दिशा, ब्रह्माण्ड सब होते गये । ईश्वर, विराट्, आत्मा, परमेश्वर इत्यादिक जीव के नाम हैं पर जीव का वासनामय स्वरूप झूठ नहीं । वासना के शरीर ग्रहण करने से वासना रूप कहा है पर वास्तवरूप शुद्ध, निर्विकार और अद्वैत है और कदाचित्त स्वरूप से अन्य अवस्था को नहीं प्राप्त हुआ, सदा ज्ञानरूप, अद्वैत और परमशुद्ध है । उसको अपने चैतन्यस्वभाव से चैत्य का संयोग हुआ है इससे कहा है कि उसका वपु वासनारूप है । उसी आदि जीव से ब्रह्मा, विष्णु रुद्र आदि देवता, दैत्य, आकाश, मध्य, पाताल और त्रिलोकी उत्पन्न हुई हैं । जैसे दीपक से दीपक होता है और जल से जल होता है तैसे ही सब विराट्स्वरूप है । महाआकाश उस विराट् का उदर है, समुद्र रुधिर है, नदियाँ नाड़ी हैं और दिशा वपु हैं । उसके उदर में कई ब्रह्माण्ड सुमेरु पर्वत समाये रहते हैं पवन उसका मूँड़ है उञ्चास पवन प्राणवायु हैं, पृथ्वी माँस हैं, सुमेरु आदिक पर्वत हाथ हैं, तारे रोमावली हैं , सहस्त्र शीश नेत्र हैं और अनन्त और अनादि है । चन्द्रमा उसका कफ है जिससे अमृत स्रवता है और भूत उपजते हैं और सूर्य पित्त है जो सबका उत्पन्नकर्ता है और सब मन, कर्मों और सब शरीरों का आदि बीज विराट् है । हे रामजी! इस चित्त के सम्बन्ध से तुच्छ हुआ है पर वास्तव में परमात्मस्वरूप है । जैसे महाकाश घट के संयोग से घटाकाश होता है । तैसे ही विराट् परमात्मा ने फुरने से सृष्टि रची है और उसमें अहं प्रत्यय की है इससे तुच्छ हुआ है, सो इसको मिथ्या भ्रम हुआ है । जैसे स्वप्न में कोई अपना मरना देखता है तैसे ही आपको दृश्य देखता है । लघुता भी आत्मा की अपेक्षा से है, दृश्य में विराट् है और आत्मा से इसका अनुभव है । हे रामजी! इसी प्रकार उसने उपजकर सृष्टि रची है । जैसे एक विराट पुरुष ने आदि निश्चय किया है तैसे ही अबतक है । यह आपही उपजा है और आपही लीन हो जाता है । हे रामजी! जिस प्रकार विराट् की आत्मा से उत्पत्ति हुई है तैसे ही सब जीवों की है । यह सब विराट् रूप है परन्तु जो स्वरूप से उपजकर दृश्य से तद्रूप हुए हैं और जिनको वास्तवरूप भूल गया है सो तुच्छरूप जीव हुए और जो स्वरूप से फुरकर स्वरूप से नगिरे और जिसे आगे अपना ही संकल्परूप विश्व देखकर प्रमाद न हुआ उसका नाम विराट् आत्मा है । हे रामजी जीव चैतन्य और निराकाररूप है इसको शरीर का संयोग कलना से हुआ है । जब आपको दृश्य संयुक्त देखता है तब महाआपदा को प्राप्त होता है और जब द्वैत से रहित निर्वि कल्प होकर देखे तब शुद्ध चैतन्य आत्मपद को प्राप्त होता है । हे रामजी! यह विराट् सबको उत्पन्न करता है । ऐसे कई विराट् आत्मपद से उदय हुए हैं ; कई मिट गये हैं और कई आगे होंगे । जैसे समुद्र से कई तरंग बुदबुदे उठते हैं और लीन होते हैं तैसे ही आत्मारूपी समुद्र से कई विराट् उठते हैं, कई लीन होते हैं और कई उपजेंगे । ऐसा परमात्मा सबका अधिष्ठान है और सबके भीतर बाहर

पूर्ण ज्ञानस्वरूप है । ऐसा तेरा अपना आप अनुभवरूप है । हे रामजी! इस संवेदन को त्यागकर देखो वही परमात्मा स्वरूप है यह जो कुछ तुमको भासता है उसको बिचारकर त्यागो । जब तुम इसका त्याग करोगे तब चिन्मात्र जो परम शुद्ध तुम्हारा स्वरूप है सो तुमको भासेगा-उसके आगे चैतन्यता ही आवरणरूप है । जैसे सूर्य के आगे बादलों का आवरण होता है और जबतक बादल होते हैं तबतक सूर्य का प्रकाश ज्यों का त्यों नहीं भासता पर जब बादल दूर होते हैं तब प्रकाश स्वच्छ भासता है, तैसे ही जब फुरना निवृत्त होवेगा तब शुद्ध आत्मा ही प्रकाशेगा ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विराडात्मवर्णनं नाम शताधिकैकचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ||141||

अनुक्रम

ज्ञानबन्धयोगोनामशताधिक

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह परमात्मा पुरुष फुरने से जीवसंज्ञा को प्राप्त हुआ है फुरने में भी वही है पर अपने स्वरूप को नहीं जानता इसी से दुःख पाता है । जैसे पवन चलता है तो भी वही रूप है और जब ठहरता है तो भी वही रूप है-दोनों में तुल्य है-तैसे ही आत्मा सर्वदा एकरस है कदाचित परिणाम को नहीं प्राप्त हुआ । जीव प्रमाद से दृश्य को कल्पता है और दृश्य को आप जानता है इसी से दुःख पाता है पर जो इसको अपना स्वरूप स्मरण रहे तो दृश्य में भी अपना रूप भासे और जो निःसंकल्प हो तो भी विश्व अपना रूप भासे । विश्व भी इसी का रूप है परन्तु अविचार से भिन्न भासता है । जैसे स्वप्न का विश्व स्वप्नवाले का रूप है परन्तु निद्रादोष से नहीं जानता और जब जागता है तब जानता है कि मैं ही था, तैसे ही यह प्रपञ्च सब तुम्हारा स्वरूप है । तुम अपने स्वरूप में निरहंकार स्थित होकर देखो तो कुछ नहीं बना । जो आत्मा से भिन्न तुम कुछ बनोगे तो प्रपञ्च विश्व भासेगा और जो आत्मस्वरूप में स्थित हो तो अपना आप भासेगा और प्रपञ्च का अभाव हो जावेगा । हे रामजी! शून्याशून्य, जड़, चैतन्य, किंचन निष्किंचन, सत्य-असत्य सब आत्मा ही पूर्ण है तो निषेध किसका करिये? हे रामजी! वह ऐसा अनुभवरूप है जिससे सब पदार्थ सिद्ध होते हैं पर ऐसे आत्मा को मूर्ख नहीं जानते । जैसे जन्म का अन्धा मार्ग को नहीं जानता तैसे ही अज्ञानी महाअन्ध जागती ज्योति आत्मा को नहीं जानते और जैसे उलूकादिक सूर्य उदय हुए को नहीं जानते तैसे ही वासना से घेरे हुए आपको नहीं जान सकते । जैसे जाल में पक्षी फँसा होता है तैसे ही जीव फँसे हुए हैं । इसी का नाम बन्धन है । जब वासना का वियोग हो तो इसी का नाम मुक्ति है । हे रामजी! विषमता से जीव संज्ञा हुई है, जब सम हुआ तब ब्रह्म है सो ब्रह्म अहंकार को त्यागकर होता है जैसे खप्पर के संयोग से घटाकाश कहाता है और जब खप्पर टूट जाता है तब महाकाश हो जाता है, तैसे ही जब अहंकार नष्ट होता है तब आत्मस्वरूप है । हे रामजी! अज्ञान से एक देशी जीव हुआ है, जब प्रच्छिन्नता का वियोग हो तब आत्मस्वरूप ही है । हे रामजी! अपने वास्तव निर्गुणस्वरूप में गुणों का संयोग उपाधि से भासता है सो अनर्थ रूप है । जब निर्गुण और सगुण की गाँठ टूटे तब केवल अद्वैत तत्त्व अपना आप भासेगा जो अनामय और दुःख से रहित है और सत् असत् से परे ज्ञानरूप और आदि-अन्त से रहित है जिसके पाये से फिर कुछ पाना नहीं रहता और जिसके जानने से और कुछ जानना नहीं रहता । ऐसा जो उत्तमपद है उसको आत्मतत्त्व से प्राप्त होंगे । हे रामजी! यह जो ज्ञान तुमसे कहा है उसको आश्रय करके तुम ज्ञानवान् होना, ज्ञानबन्ध न होना । ज्ञानबन्ध से तो अज्ञानी भला है, क्योंकि अज्ञानी भी साधुओं के संग और सत्शास्त्रों के सुनने से ज्ञानवान् होता है पर ज्ञानबन्ध मुक्त नहीं होता । जैसे रोगी कहे कि मुझको कोई रोग नहीं है, मैं अरोग हूँ, तो वह वैद्य की औषध भी नहीं खाता क्योंकि वह आपको अरोग जानता है तैसे ही जो ज्ञानबन्ध है उसको संतों का संग और सत्शास्त्रों का श्रवण भी नहीं होता इससे वह अन्धतम को प्राप्त होता है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ज्ञान और ज्ञानबन्ध का फल क्या है सो कहिये? वशिष्ठजी बोले हे रामजी! जिस पुरुष ने आत्मा के विशेषण शास्त्रों से श्रवण किये हैं कि आत्मा नित्य, शुद्ध, ज्ञान स्वरूप और तीनों शरीरों से भिन्न है और ऐसे सुनकर आपको मानता है पर विषयों को भोगने की सदा तृष्णा करता है कि किसी प्रकार इन्द्रियों के विषय मेरे लिये प्राप्त हों ऐसा पुरुष ज्ञानबन्ध है । वह बोधशिल्पी है जो कर्मफल के विचार से रहित है अर्थात् भला बुरा विचार नहीं करता और उसमें बिचरता है और जो मुख से शुभ अशुभ निरूपण करता है वह शास्त्रशिल्पी है और फल के अर्थ

कर्म करता है । कोई ऐसा है कि शास्त्रोक्त आपको उत्तम मानता है, शास्त्रों के अर्थ बहुत प्रकार भी कहता है, पढ़ता और पढ़ाता भी है पर विषयों से बन्धायमान है और सदा विषयों की चिन्तना करता है- ऐसा पुरुष ज्ञानबन्ध है- और इसी निमित्त अर्थशिल्पी भी कहाता है अर्थात् चितेरा करने को समर्थ है और धारने को समर्थ नहीं । हे रामजी! एक प्रवृत्तिमार्ग है और एक निवृत्तिमार्ग है । प्रवृत्ति संसारमार्ग है और निवृत्ति आत्मज्ञानमार्ग है । जिस पुरुष ने निवृत्ति मार्ग धारण किया है पर प्रवृत्तिमार्ग में अर्थात् बहिर्मुख विषय की ओर बर्तता है, इन्द्रियों के विषयों की वाच्छा करता और विषयों से उपराम नहीं होता एवं उनसे तुष्टिमान होकर स्वरूप का अभ्यास नहीं करता वह ज्ञानबन्ध कहाता है । हे रामजी जो पुरुष श्रुतिउक्त शुभकर्मफल की हृदय में कामना धारता है वह पुरुष ज्ञान के निकटवर्ती है तो भी ज्ञानबन्ध है । जिसको आत्मा में प्रीति भी है पर विषय को चिन्तता है और आपको उत्तम मानता है वह ज्ञानबन्ध कहाता है और जो आत्मतत्त्व का यथार्थ निरूपण करता है और स्थित नहीं वह ज्ञान आभास है और ज्ञान का फल उसको साक्षात्कार नहीं । जिस पुरुष ने सिद्धि और ऐश्वर्य पाया है और उससे आपको बड़ा जअनता है पर आत्मज्ञान से रहित है वह ज्ञानबन्ध कहाता है । हे रामजी! निदिध्यास से ज्ञान की प्राप्ति होती है और उससे शान्ति का प्रकाश होता है जबतक शान्ति प्राप्त नहीं होती तब तक आपको बड़ा ज्ञानी न माने । हे रामजी! ज्ञान से बड़ा होता है, जब तक ज्ञान नहीं उपजा तबतक आत्मपरायण हो, अभ्यास और यत्न करो, शुभ व्यवहार से प्राणों की रक्षा के निमित्त उपजीविका उत्पन्न करो और ब्रह्म जिज्ञासा के अर्थ प्राणों की धारणा करो । ब्रह्मजिज्ञासा इस निमित्त है कि वह दुःख रूप संसारसमुद्र से मुक्त हो फिर संसारी न हो और आत्मपरायण होगे तब सब दुःख मिट जावेंगे । जैसे सूर्य के उदय हुए अंधकार नष्ट हो जाता है तैसे ही आत्मपद के प्राप्त हुए सब दुःख नष्ट हो जाते हैं ।उस पद के प्राप्त होने का उपाय यह है कि सत्ःशास्त्रों से जो विशेषण सुने हों उनको समझकर बारम्बार अभ्यास करना, दृश्य से उपराम होना और उनको मिथ्या जानकर वैराग्य करना । इसी से आत्मपद की प्राप्ति होती है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ज्ञानबन्धयोगोनामशताधिक द्विचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ||142||

अनुक्रम

सुखेनयोगोपदेश

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिज्ञासु ज्ञाननिष्ठ होना और जो कुछ गुरुशास्त्रों से आत्मविशेषण सुने हैं उनमें अहं प्रत्यय करके स्थित होना इसी का नाम ज्ञाननिष्ठा है । इस ज्ञाननिष्ठा से परम उच्चपद को प्राप्त होता है जो सबका अधिष्ठान है । जब उसमें स्थित हुआ तब कर्मों के फल का ज्ञान नहीं रहता, क्योंकि शुभकर्मों के फल का राग नहीं रहता और अशुभ कर्मों के फल में द्वेष नहीं रहता । ऐसा पुरुष ज्ञानी कहाता है और वह शीतल चित्त रहता है, अकृत्रिम शान्ति को प्राप्त होता है, किसी विषय के सम्बन्ध में नहीं फँसता और उसकी वासना की गाँठ टूट जाती है । हे रामजी! बोध वही है जिसको पाये से फिर जन्म न हो और जो जन्म मरण से रहित हो उसी को ज्ञानी कहते हैं ।जब संसार से विमुख हो और संसार की सत्यता न भासे तब जानिये कि फिर जन्म न पावेगा, क्योंकि उसकी संसार की वासना नष्ट हो गई है । हे रामजी! जिससे ज्ञानी की वासना नष्ट होती है वह भी सुनो । वह इस संसार का कारण नहीं देखता । जो पदार्थ कारण से उत्पन्न नहीं हुआ वह सत्य नहीं होता, इससे संसार मिथ्या है । जैसे रस्सी में सर्प भासता है तो उसका कारण कोई नहीं भ्रम से सिद्ध हुआ है, तैसे ही यह विश्व कारण बिना दृष्टि आता है इससे मिथ्या है ।जो मिथ्या है तो उसकी वासना कैसे हो? हे रामजी! जो प्रवाहपतित कार्य प्राप्त हो उसमें ज्ञानी बिचरता है और संकल्प से रहित होकर अपना अभिमान कुछ नहीं करता कि इस प्रकार हो और इस प्रकार न हो । वह हृदय से आकाश की नाईं संसार से न्यारा रहता है और फुरने से शुन्य है । ऐसा पुरुष पण्डित कहाता है । हे रामजी! यह जीव परमात्मरूप है । जब अचेतन अर्थात् संसार के फुरने से रहित तब आत्मपद को प्राप्त हो । जैसे आम का वृक्ष फल से रहित है तो भी उसका नाम आम है परन्तु निष्फल है तैसे ही यह जीव आत्मस्वरूप है परन्तु चित्त के सम्बन्ध से इसका नाम जीव है । जब चित्त को त्याग करे तब आत्मा हो । जैसे जैसे आम के पेड़ में फल लगने से शोभता है और सफल कहाता है तैसे ही जब जीव आत्मपद को प्राप्त होता है तब महाशोभा से विराजता है । हे रामजी! ज्ञानवान् पुरुष कर्म के फल की स्तुति नहीं करता अर्थात् इन्द्रियों के इष्ट विषय की वाञ्छा नहीं करता । जैसे जिस पुरुष ने अमृतपान किया हो वह मद्यपान करने की इच्छा नहीं करता तैसे ही जिसको आत्मसुख प्राप्त होता है वह विषयों के सुख की इच्छा नहीं करता । जो किसी पदार्थ को पाकर सुख मानते हैं वे मूढ़ हैं । जैसे कोई पुरुष कहे कि बन्ध्या के पुत्र के काँधे पर आरूढ़ होकर नदी के पार उतरते हैं तो वह पुरुष महामूढ़ है, क्योंकि जो बन्ध्या के पुत्र है ही नहीं तो उसके काँधे पर कैसे आरूढ़ होगा, तैसे ही जो कोई कहे कि मैं संसार के किसी पदार्थ को लेकर मुक्त हूँगा तो वह महामूढ़ है । हे रामजी! ऐसा पुरुष ज्ञान से शून्य है उसकी इन्द्रियाँ स्थिर नहीं होतीं और वह शास्त्रों के अर्थ प्रकट भी करता है परमात्मा के ज्ञान से रहित है उसको इन्द्रियाँ बल से विषयों में गिरा देती हैं जैसे चील पक्षी आकाश में उड़ता- उड़ता माँस को देखकर पृथ्वी पर गिर पड़ता है तैसे ही अज्ञानी विषय को देखकर गिर पड़ता है । इससे इन इन्द्रियों को मन संयुक्त वश करो और युक्ति से तत्परायण और अंतर्मुख हो रहो । यह जो संवेदन फुरती है उसका त्याग करो । जब फुरना निवृत्त होगी तब परमात्मा का साक्षात्कार होगा और जब परमात्मा का साक्षात्कार होगा तब रूप अवलोक और मनस्कार, जो त्रिपुटी है उसके सब अर्थ की भावना जाती रहेगी, केवल आत्मतत्व ही प्रत्यक्ष भासेगा और संसार का अत्यन्त अभाव हो जावेगा । हे रामजी! संसार का आदि परमात्मतत्त्व है और अन्त भी वही है जैसे स्वर्ण गलाइये तो भी स्वर्ण है और जो न गलाइये तो भी स्वर्ण है, तैसे ही जब सृष्टि का अभाव होता है तो

भी आत्मा ही शेष रहता है जब उपजी न थी तब भी आत्मा ही था और मध्य भी वही है परन्तु सम्यक्‌दर्शी को भासता है और असम्यक्‌दर्शी को आत्मसत्ता नहीं भासती । हे रामजी! विश्व आत्मा का परिणाम नहीं, चमत्कार है । जैसे सुवर्ण गलता है तो उसकी रेणीसंज्ञा होती है अथवा शलाका कहाती है । यद्यपि उसमें भूषण नहीं हुए तो भी उसका चमत्कार ऐसा ही होता है कि उससे भूषण उपजकर लीन हो जाता है और जैसे सूर्य की किरणें जलाभास हो भासती है तैसे ही विश्व आत्मा का चमत्कार है और बना कुछ नहीं आत्मसत्ता ज्यों की त्यों है और उसका चमत्कार विश्व होकर स्थित हुआ है । हे रामजी! जब तुमने ऐसे जाना कि केवल आत्मसत्ता है तब वासना क्षय हो जावेगी और चेष्टा स्वाभाविक होगी । जैसे वृक्ष के पत्र पवन से हिलते हैं तैसे ही शरीर की चेष्टा प्रारब्धवेग से होगी । हे रामजी! देखनेमात्र तुम्हारे में क्रिया होगी और हृदय में शून्य भासेगा । जैसे यन्त्र की पुतली संवेदन बिना तागे से चेष्टा करती है तैसे ही शरीर की चेष्टा प्रारब्ध से स्वाभाविक होवेगी और तुमको अभिमान न होगा । जैसे कोई पुरुष दूध के निमित्त अहीर के पास वासन ले जाय और उसको दूध दुहने में कुछ विलम्ब हो तो कहे कि वासन यहाँ रक्खा है मैं गृह से कोई कार्य शीघ्र ही कर आऊँ तो यद्यपि वह गृह का कार्य करने लगता हे पर उसका मन दूध की ओर रहता है कि शीघ्र ही जाऊँ, ऐसा न हो कि वह दुहता हो, तैसे ही तुम्हारी क्रिया प्रारब्धवेग से होगी पर मन आत्मतत्त्व में रहेगा और अहंकार से रहित होगे । जबतक अहंकार फुरता है तबतक परिच्छिन्न अर्थात् तुच्छ जीव है और उसको शरीर मात्र का ज्ञान होता है और अन्तःकरण में जो प्रतिबिम्बित जीव है उसको नखशिखपर्यन्त शरीर का ज्ञान होता है । इसी में आत्मअभिमान होता है और ज्ञान नहीं होता इससे जीव है और विराट् जो आगे तुमसे कहा है सो ईश्वर है, सर्व शरीर और अन्तःकरण का ज्ञाता है, सर्वलिंगशरीर का अभिमानी है और सबको अपना आप जानता है । हे रामजी! यद्यपि विश्वरूप है तो भी अहंकार से तुच्छ सा हुआ है । जैसे मेघ से भिन्न हुआ एक बादल कहाता है और घट से घटाकाश कहाता है पर वह बादल भी मेघ है और घटाकाश भी महाकाश है तैसे ही अहं फुरने से परिच्छिन्न हुआ है सो फुरना दृश्य में हुआ है दृश्य फुरने में हुई है । जैसे फूलों में गन्ध और तिलों में तेल है तैसे ही फुरने में दृश्य है । हे रामजी! आत्मा में बुद्धि आदिक फुरना है कि `मै हूँ' जब ऐसे फुरता है तब आगे दृश्य होती है और जब अहंकार होता तब आगे देह इन्द्रियादिक विश्व रचता है, इससे फुरने में दृश्य हुआ और फुरना दृश्य में हुआ । देह, इन्द्रियाँ, मन आदिक जो दृश्य हैं उसमें अहंप्रत्यय से फुरना हुआ है इसी कारण से इसकी जीवसंज्ञा हुई है, जब फुरना नष्ट हो जावे तब आत्मा का साक्षात्कार हो । यह जन्म, मरण, आना, जाना आदिक विकारसंयुक्त प्रपंच भासता है तो भी मिथ्या है, क्योंकि विचार किये से कुछ नहीं रहता । जैसे केले के थंभे में कुछ सार नहीं तैसे ही विचार किये से प्रपञ्च नहीं रहता और जैसे स्वप्न में जन्म, मरण, आना, जाना देखता है परन्तु मिथ्या है तैसे ही जाग्रत् क्रिया भी सर्व मिथ्या है । हे रामजी! जो परावर दर्शी है वह इतनी अवस्थाओं में निर्विकल्प है और जन्मता भी है परन्तु नहीं जन्मता और सब क्रिया करता भी है परन्तु नहीं करता-वह सबको स्वप्नवत् समझता है और स्वरूप से कदाचित् कुछ नहीं हुआ । हे रामजी! ज्ञानी जाग्रत् में भी ऐसे ही देखता है । जब यह आत्मपद में जागता है तब सब विकार का अभाव हो जाता है और कोई विकार नहीं भासता । हे रामजी! जो पुरुष इन्द्रियों के विषय की चिन्तना करता रहता है सो बन्ध है, क्योंकि अभिलाष ही दुःखदायक है । यद्यपि वह राजा हो पर उसके हृदय में अभिलाष है इससे उसे दरिद्री जानो और जिस पुरुष का छादन, भोजन, शयन कष्ट से देखते हो कि भोजन तो भिक्षा से होता है अथवा किसी और यत्न से होता है और छादन भी निर्गुणसा पहिरता है और शयन करने का

स्थान भी जैसा तैसा हो पर ज्ञान से सम्पन्न है तो उसको चक्रवर्ती जानो । यथा- दोहा--सात गाँठ कोपीन की, साधु न मानै शंक । राम अमल माता फिरै, गिनै इन्द्र को रंक ।। हे रामजी! उसको चक्रवर्ती से भी अधिक जानो । यद्यपि वह आरम्भ क्रिया करता भी दृष्ट आता है पर संकल्प से रहित है तो कुछ नहीं करता, उसका करना, न करना दोनों तुल्य हैं, क्योंकि वह निरभिमान है और शुभकर्मों के करने से स्वर्ग नहीं भोगता और अशुभकर्म से नरक नहीं भोगता-उसको दोनों एक समान हैं । हे रामजी! ज्ञानी अज्ञानी की चेष्टा समान है परन्तु अज्ञानी अहंकारसहित करता है इससे दुःख पाता है । इससे तुम अहंकार का त्याग करो और अपना स्वरूप जो चैत्य से रहित चैतन्य है उसमें स्थित हो रहो कि सब संशय मिट जावे । जितने जीव तुमको भासते हैं सो सब संवित् अर्थात् ज्ञानरूप हैं परन्तु बहिर्मुख जो फुरते हैं उससे भ्रम को प्राप्त हुए हैं और जब अन्तर्मुख हो तब केवल शान्तरूप हो जहाँ गुणों और तत्त्वों का क्षोभ नहीं । वह शान्तपद कहाता है । हे रामजी! जैसे विराट् का मन चन्द्रमा है तैसे ही सब जीवों का है अर्थात् सब विराट रूप हैं परन्तु प्रमाद से वास्तव स्वरूप नहीं भासता । हे रामजी! जैसे गुलाब की सुगन्ध संपूर्ण वृक्ष में व्यापक है परन्तु फूल ही में भासती है तैसे ही चैतन्य सत्ता सब शरीर में व्यापक है परन्तु हृदय में भासती है जो त्रिलोकरूप निर्मलचक्र है वहीं अहंब्रह्म का उत्थान होता है, वहाँ से वृत्ति फैलकर पञ्चइन्द्रियों के छिद्र से निकलकर विषय को ग्रहण करती है और उन इन्द्रियों के इष्ट अनिष्ट की प्राप्ति में राग द्वेष मानता है । इससे हे रामजी! इतना कष्ट प्रमाद से है, जब बोध होता है तब संसारभ्रम मिट जाता है । हे रामजी! वासनारूप जो संसार है उसका बीज अहंभाव है और वह प्रत्यक्ष संसार में फुरता है । जब इसकी अचिन्तना हो और स्वरूप में अहंप्रत्यय हो तब संसारभ्रम मिट जावे । अहंभाव के शान्त हुए ज्ञानवान् यन्त्र की पुतलीवत् चेष्टा करता है । हे रामजी! जो पदार्थ सत्य है उसका कदाचित् अभाव नहीं होता और जो असत्य है वह सत्य नहीं होता और यद्यपि होने की भावना कीजिये तो भी नहीं होता । जैसे अग्नि को जानकर स्पर्श कीजिये तो भी जलाती है और बिना जाने स्पर्श करिये तो भी जलाती है, क्योंकि सत्य है और जैसे जल की भावना से मृग मरुस्थल में धावता है परन्तु जल नहीं पाता क्योंकि असत्य है, तैसे ही हे रामजी! अहंकार जो फुरता है सो असत्य है, भ्रम से सिद्ध है और विचार से नष्ट हो जावेगा । हे रामजी! यह अहंकाररूपी कलंक उठा है । यदि निरहंकार होकर देखो तो मुक्तरूप हो और यदि अहंकार संयुक्त हो तो बन्ध है । निरहंकार होकर परम निर्वाण को प्राप्त हो रहो यही हमारा सिद्धान्त है और परमभूमिका भी यही है । जैसे पूर्णमासी है तैसे ही तुम ब्राह्मी लक्ष्मी से शोभा पावोगे । हे रामजी! ज्ञानवान् का चित्त सत्पद को प्राप्त होता है इससे अहंकार नहीं रहता और उसके चित्त की चेष्टा फलदायक नहीं होती । जैसे भूना बीज नहीं उगता तैसे ही उसका जन्म नहीं होता और अज्ञानी का चित्त जन्ममरण का कारण होता है । जैसे कच्चा बीज उगता है तैसे ही अज्ञानी की चेष्टा जन्म देती है । हे रामजी! जितने पदार्थ हैं उन सबसे निरास हो रहो कि हृदय में किसी की अभिलाषा न फुरे और न किसी का सद्भाव फुरे और पाषाण की नाई तुम्हारा हृदय हो । हे रामजी! जिसका हृदय कोमल स्नेहसंयुक्त है वह अज्ञानी है और जिसका हृदय पाषाण समान और स्नेह से रहित है वह ज्ञानी है, इससे निर्मम और निरहंकार होकर स्थित हो रहो । ये भोग मिथ्या हैं- इनकी इच्छा में सुख नहीं । हे रामजी! जब संसार से उपराम और अन्तर्मुख आत्मपरायण होगे तब अहंकार निवृत्त हो जावेगा और आत्मा ही भासेगा । जैसे वसन्तऋतु आता है तो वृक्ष प्रफुल्लित होते हैं और पुरातन पत्र त्यागकर नूतन हो आते हैं तैसे ही जब तुम अन्तर्मुख होगे तब अहंकार निवृत्त हो जावेगा, विभुता को

प्राप्त होगे, अहंप्रत्यय जाती रहेगी और परम निर्वाण पद पावोगे ।इससे एक अहंकार संवेदन का त्याग करो और कोई यत्न न करो । तुमको यही हमारा उपदेश है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सुखेनयोगोपदेशो नाम शताधिकत्रिचत्वारिंशत्तस्मस्सर्गः ||143||

अनुक्रम

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह जो वासनारूपी संसार है उससे तुम मङ्कीऋषि के सदृश तर जाओ । रामजी ने पूछा , हे भगवन् मंकीऋषि किस प्रकार तरे हैं सो कृपा करके कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मंकीऋषि का वृत्तान्त सुनो, उसने महातीक्ष्ण तप किया था । एक समय मैं आकाश में अपने गृह में था और तुम्हारे पितामह राजा अज ने मेरा आवाहन किया तब मैं राजा अज के निमित्त आकाश से उतरा तो मार्ग में एक वन देखा जिसमें अनेक वन के समूह थे जो भयानक और शून्य थे वहाँ न कोई मनुष्य दृष्टि आता था और न कोई पशु, केवल महाशून्य वन था--मानो एकान्त ब्रह्मस्थान है- और कई योजन पर्यन्त मरुस्थल ही दृष्टि आता था । मध्याह्न का समय था और अतितीक्ष्ण धूप पड़ती थी, ऊरूपर्यन्त तपी हुई रेत में मैंने प्रवेश किया और कई वृक्ष वहाँ दग्ध हुए दृष्टि आये । हे रामजी! उस शून्यस्थल में एक अतिदुःखित विदेशी मुझको आता दृष्टि आया और उसने यह वाक्य मुख से निकाला कि हाय हाय! मैंने महाकष्ट पाया है । जैसे किसी को दुष्टजन दुःख देते हैं और दया नहीं करते तैसे ही मुझको धूप और मंजिल ने जलाया है और मैं अतिदुःख को प्राप्त हुआ हूँ । हे रामजी! ऐसे वचन कहता हुआ वह मेरे साथ चला जाता था । जब कुछ मार्ग आगे गया तो एक धीवरों का गाँव दृष्टि पड़ा जहाँ पाँच अथवा सात गृह थे, उसको देखकर वह शीघ्र चलने लगा कि वहाँ मुझको शान्ति होगी और मैं जलपान करके छाया के नीचे बैठूँगा हे रामजी! उसको देखकर मुझे दया उपजी तो मैंने कहा कि हे मार्ग के मति! तू कहाँ जाता है? जिनको सुखदायी जानकर तू धावता है सो दुःखदायक हैं जैसे मरुस्थल को नदी जानकर मृग जलपान के निमित्त धावता है कि शान्ति पाऊँ सो अतिदुःख पाता है तैसे ही जिस स्थान को तू सुखरूप जानता है सो दुःखरूपी है । हे अंग! ये इस गाँव के वासी हैं उनका संग कदापि न करना । इनका संग दुःखरूप है जो पुरुष विचारपूर्वक चेष्टा करता है उसको दुःख नहीं होता और जो विचारे बिना चेष्टा करता है सो दुःख पाता है । ये जो नगर वासी हैं वे आप जलते हैं तो तुझको सुख कैसे देंगे । जैसे कोई पुरुष अग्निकुण्ड में जलता हो और उससे कहिये कि तू मेरी तपन शान्त कर तो कहनेवाला मूढ़ होता है क्योंकि वह तो आपही जलता है और की तपन कैसे शान्त करेगा, तैसे ही वे तो आप इन्द्रियों के विषय की तृष्णारूपी अग्नि में जलते हैं तुझको कैसे शान्त करेंगे? हे मार्ग के मीत! पृथ्वी के छिद्र में सर्प होना, मरुस्थल का मृग होना और पाषाण की शिला में कीट होकर रहना अंगीकार कीजिये, अज्ञानी का संग न कीजये, जिनको इन्द्रियों के सुख की तृष्णा रहती है । इन्द्रियों के सुख कैसे हैं कि आपातरमणीय हैं अर्थात् यह कि जबतक इन्द्रियों का विषय के साथ संयोग है तबतक सुख है और जब वियोग होता है तब दुःख होता है । विषयी जनों की प्रीति भी विषवत् है और विचारवती बुद्धि रूपी कमलिनी के नाश करनेवाली बरफ है । इनकी संगति में वचनरूपी पवन से राख उड़ती है और पास बैठने वाले को अन्ध कार में डालती है । इससे इन ग्रामवासी अज्ञानियों का संग न करना । ये अज्ञानी विचार वती बुद्धिरूपी सूर्य के आवरण करनेवाले बादल हैं । जैसे बेलि पर अग्नि डालिये तो जलाती है तैसे ही वैराग्य को ग्रहण करने वाली बुद्धि के नाश करनेवाली इनकी संगति है इससे इनका संग न करना । हे साधो! संग उसका कर जिसके संग से तेरा ताप मिटे । इनके संग से शान्ति न पावेगा । हे रामजी! इस प्रकार जब मैंने कहा तब वह मेरे निकट आकर बोला, हे भगवन्! तुम कौन हो और तुम्हारा नाम क्या है? तुम्हारे वचन सुनकर मैं शान्ति को प्राप्त हुआ हूँ । तुम शून्य दृष्टि आते हो, पर सब गुणों से पूर्ण हो और तुम्हारा दिव्य प्रकाश मुझको भासता है । तुम आदि पुरुष विराट् हो और तुम सुन्दर दृष्टि

आते हो । हे भगवन्! जो सुन्दर होता है उसको देखकर राग उपजता है और चित्त क्षोभ को भी प्राप्त होता है । तुम ऐसे सुन्दर हो कि तुम्हारे दर्शन से मुझको शान्ति आती जाती है । तुम दिव्य तेज को धारे हुए दृष्टि आते हो और ऐसे तेजवान् हो कि देखने नहीं देते-अर्थ यह है कि तुम्हारे समान किसी की सुन्दरता नहीं और तुम्हारा तेज हृदय में शान्ति उपजाता है और शीतल प्रकाश है । हे भगवन् तुम धर्म से उन्मत्त वत् दृष्टि आते हो सो तुम कैसी शान्ति को लेकर एकान्त में स्थित हो? अपने स्वरूप प्रकाश को तुम दया करते दृष्टि आते हो और पृथ्वी पर स्थित भी दृष्टि आते हो, परन्तु त्रिलोकी के ऊपर विराजमान भासते हो । एकही दृष्टि आते हो परन्तु सर्वात्मा हो और किंचन -अकिंचन और सब भावपदार्थों से शून्य दृष्टि आते हो पर सब पदार्थ तुम्हारी सत्ता से प्रकाशते हैं । तुम सब पदार्थों के अधिष्ठान हो और तुम्हारे नेत्रों के खोलने से उत्पत्ति होती है और मूँदने से लय हो जाता है, इससे ईश्वर हो । तुम सकलंक दृष्टि आते हो परन्तु निष्कलंक हो अर्थात् तुम्हारे में फुरना दृष्टि आता है परन्तु हृदय से शून्य हो । तुम किसी अमृत को पान करके आये हो और बड़े ऐश्वर्य से सम्पन्न दृष्टि आते हो । इससे हे भगवन् तुम कौन हो? यदि मुझसे पूछो कि तू कौन है तो मैं माण्डव्य ऋषि के कुलमें हूँ और मेरा नाम मंकी है । मैं ब्राह्मण हूँ और तीर्थयात्रा के निमित्त निकला था । मैं सब दिशाओं में भ्रमा और अति भयानक स्थानों में जो तीर्थ हैं वहाँ भी गया परन्तु मुझको शान्ति न हुई । ऐसी शान्ति कहीं न पाई कि इन्द्रियों की जलन से रहित हो रहूँ-अब मैं अपने गृह को चला हूँ । हे भगवन्! अब गृह से भी मेरा चित्त विरक्त हुआ है कि यह संसार ही मिथ्या है तो गृह किसका है? संसार में सुख कहीं नहीं ।यह प्राण ऐसे हैं जैसा दामिनी का चमत्कार होता है और तैसे ही यह संसार भी नष्ट होता दृष्टि आता है । शरीर उपजते भी हैं और मिट भी जाते हैं-दृष्टिमात्र हैं । जैसे रात्रि आती है और फिर नहीं जान पड़ती कि कहाँ गई । हे भगवन्! इस संसार को असार जानकर मैं उदासीन हुआ हूँ क्योंकि अनेक जन्म पाये हैं सो नष्ट हो गये हैं और इसी प्रकार भ्रमता फिरता हूँ । अब तुम्हारी शरणागत हूँ और जानता हूँ कि तुमसे मेरा कल्याण होगा । तुम कल्याणरूप दृष्टि आते हो इससे कृपा करके कहो कि कौन हो? इतना सुन मैंने कहा, हे मङ्कीऋषि! मैं वशिष्ठ ब्राह्मण हूँ और मेरा गृह आकाश में है । मुझको राजा अज ने स्मरण किया है इसलिये मैं इस मार्ग से जाता हूँ । अब तुम संशय मत करो ज्ञानमार्ग को पावोगे । हे रामजी! जब मैंने ऐसे कहा तब वह मेरे चरणों पर गिर पड़ा और उसके नेत्रों से जल चलने लगा, और महाआनन्द को प्राप्त हुआ । तब मैंने कहा कि हे ऋषे! तू संशय मत कर मैं तुझको अकृत्रिम शान्ति को प्राप्त करके जाऊँगा । जो कुछ तू पूछा चाहता है सो पूछ, मैं तुझको उपदेश करूँगा और मैं जानता हूँ कि तू कल्याणकृत है इसलिये जो कुछ मैं कहूँगा सो तू धारेगा । तू कुछ प्रश्न कर, क्योंकि तेरे कषाय परिपक्व हुए हैं । और तू मेरे वचनों का अधिकारी है तुझको मैं उपदेश करूँगा । अब तू संसार के तट को प्राप्त हुआ है और अब तुझको निकालने का विलम्ब है अर्थात् तू वैराग्य से पूर्ण है और संसार का तट वैराग्य ही है, इससे संशय मत कर ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शताधिकचतुश्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ||144||

अनुक्रम

मंकिवैराग्ययोगोनाम

मंकी बोले, हे भगवन्! अब मैं जानता हूँ कि मेरा कार्य सिद्ध हुआ है। मुझको अज्ञान से मोह था उसके नाश करने को तुम समर्थ दृष्टि आते हो और मेरे हृदय के तम नाश करने को तुम सूर्य उदय हुए हो। हे भगवन्! यह संसार असार है पर लोगों की बुद्धि विषयों की और ही धावती है जहाँ दुःख ही होते हैं। जैसे जल नीचे स्थान को चला जाता है तैसे ही हमारी बुद्धि नीचे स्थानों में धावती है और वही चाहती है। हे भगवन्! जितने भोग हैं उनको मैंने भोगा है परन्तु शान्ति न पाई, बल्कि उलटी तृष्णा बढ़ती गई जैसे तृषा लगे और खारा जलपान करिये तो तृषा नहीं मिटती बल्कि बढ़ती ही जाती है, तैसे ही विषयों के भोगने से शान्ति नहीं प्राप्त होती-तृष्णा बढ़ती जाती है। हे मुनिराय! देह जर्जरीभाव हो जाती है दाँत गिर पड़ते हैं और अतिक्षोभ होता है तो भी तृष्णा नहीं मिटती, इससे अब मैं दुःख चाहता हूँ, सुख नहीं चाहता क्योंकि संसार के जितने सुख हैं उनका परिणाम दुःख है। जो प्रथम दुःख हैं उनका परिणाम सुख है इसी से दुःख चाहता हूँ और संसार के सुख नहीं चाहता। हे भगवन्! अपनी वासना ही दुःखदायक है। जैसे कुसवारी घर बनाकर उसमें आपही फँस मरती है तैसे ही अपनी वासना से जीव आपही बन्धायमान होता है। हे मुने! वह कौन काल था जब अज्ञानरूपी हाथी ने मुझको वश किया था और उसका नाश करनेवाला ज्ञानरूपी सिंह कब प्रकट होगा? कर्मरूपी तृणों का नाशकर्ता विवेकरूपी वसन्त कब प्रकटेगा और वासनारूपी अँधेरी रात्रि का नाशकर्ता ज्ञानरूपी सूर्य कब उदय होगा? हे भगवन्! वैताल तबतक भासता है जबतक निशा है और जब सूर्य उदय होता है तब निशा जाती रहती है और वैताल नहीं भासता तैसे ही अहंकाररूपी वैताल तबतक है जबतक अज्ञानरूपी रात्रि दूर नहीं हुई। हे भगवन्! जब सन्तजनों के उपदेश से आत्मज्ञानरूपी सूर्य प्रकट होता है तब अहंकार रूपी वैताल वहाँ नहीं विचरता। सन्तजनों का संग और सत्‌शास्त्रों का देखना चाँदनी रात्रिवत् है, उससे जब स्वरूप का साक्षात्कार हो तब दिन हुआ जानिये और जब तक सन्तजनों का संग न करे- और सत्‌शास्त्रों को न देखे तबतक अँधेरी रात्रि है। हे भगवन्! जो सत्‌शास्त्रों को भी सुने और फिर विषयों की ओर भी गिरे उसे बड़ा अभागी जानिये सो मैं हूँ, परन्तु अब मैं तुम्हारी शरण आया हूँ मेरे हृदयरूपी आकाश में जो अज्ञानरूपी कुहिरा है सो तुम्हारे वचन रूपी शरत्‌काल से नष्ट हो जावेगा और हृदयाकाश निर्मल होगा। हे भगवन्! मैंने त्रिदण्ड साधे हैं अर्थात् मन, शरीर और वाणी से तीन तप दीर्घ काल पर्यन्त किये हैं परन्तु आत्मप्रकाश नहीं हुआ। अब मैं तुम्हारी शरणागत होके तरूँगा इसलिये कृपा करके उपदेश करो कि मेरे हृदय का तम दूर हो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मंकिवैराग्ययोगोनाम शताधिकपञ्चचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥154॥

अनुक्रम

मंकिऋषिप्रबोध

वशिष्ठजी ने कहा, हे तात! संवेदन, भावना, वासना, और कलना ये अनर्थ के कारण हैं । जब इनका अभाव हो तब कल्याण हो । शुद्ध चिन्मात्रपद प्रत्यक्ष चैतन्य अपने आप में स्थित है । जो अहंकार का उत्थान है सोही संवेदन है । भाव यह है कि पहले आप कुछ बना फिर चेता और अपना आप चित्त स्मरण हुआ तब भ्रम मिट जाता है और जो कुछ बना उसकी भावना होती है कि मैं यह हूँ यह तो इससे संसार दृढ़ होता है फिर तैसे ही वासना दृढ़ होती है और अपने शरीर के अनुसार नाना प्रकार की कलना होती है और फिर संसार के संकल्प विकल्प उठते हैं । हे ब्राह्मण! ये अनर्थ के कारण हैं । जब इनका अभाव हो तब कल्याण हो । जितने शब्द अर्थ हैं उनका अधिष्ठान प्रत्येक चैतन्य है, सर्ब शब्द उसी के आश्रित हैं और सर्व वही है, जब तू ऐसे जानेगा तब वासना क्षय हो जावेगी । जब अहंसंवेदन फुरती है तब आगे संसार भासता है । जैसे जब वसन्त ऋतु आती है तब बेलैं प्रफुल्लित होती हैं तैसे ही जब संवेदन फुरती है तब आगे संसार सिद्ध होता है और जब संसार हुआ तब नाना प्रकार की वासना फुरती हैं और संसार नहीं मिटता । हे अंग! संसार इसी का नाम है कि संसरता है । जब संसरना मिटे तब आत्मपद ही शेष रहेगा सो तेरा अपना आप है इससे इस फुरने को त्यागकर अपने आप में स्थित हो रह-तब तेरा ही रूप है जबतक वासना फुरती हे तबतक संसार दृढ़ रहता है । जैसे वृक्ष को जल दीजिये तो बढ़ता जाता है तैसे ही वासनारूपी जल देने से संसाररूपी वृक्ष वृद्ध हो जाता है । इससे वासना का नाश करो कि यह संवेदन न फुरे । जब जल से रहित होता है तब आपही सूख जाता है । हे पुत्र! आत्मा में जगत् कुछ हुआ नहीं केवल परमार्थसत्ता है । जैसे रस्सी में सर्प कुछ वस्तु नहीं रस्सी के अज्ञान से ही भासता है तैसे ही आत्मा के अज्ञान से संसार भासता है । जब तू आत्मपद को जानेगा तब परमार्थ सत्ता ही भासेगी । जैसे बालक अपनी परछाहीं में भूत कल्प कर भय पाता है और जब विचारकर देखता है तब भूत कोई नहीं सब भय दूर हो जाता है, तैसे ही आत्मा के अज्ञान से संसार के रागद्वेष जलाते हैं । ज्ञानवान् को वासनासंयुक्त संसार का अभाव हो जाता है और केवल अद्वैत आत्मसत्ता ही भासती है जैसे स्वप्न से जागकर स्वप्न के प्रपञ्च का वासना संयुक्त अभाव हो जाता है, तैसे ही जब आत्मा का साक्षात्कार होता है तब वासना संयुक्त संसार का अभाव हो जाता है, क्योंकि है नहीं । जैसे घटादिक में मृत्तिका से भिन्न कुछ नहीं तैसे ही सब प्रपञ्च चिन्मात्र स्वरूप कुछ भिन्न नहीं । जितने शब्द अर्थ हैं सब आत्मा ही हैं । हे मित्र ! जो कुछ आत्मा से इतर भासता है उसको भ्रममात्र जानो । जैसे आकाश में नीलता भासती है सो भ्रम मात्र है तैसे ही विश्व असम्यक्ृदृष्टि से भासता है और सम्यक्ृ दृष्टि से सब प्रपञ्च आत्मरूप हैं और दृष्टा, दर्शन, दृश्य-त्रिपुटी भी बोधस्वरूप हैं । बोध ही त्रिपुटीरूप होकर स्थित होता है । जैसे स्वप्न में एक ही अनुभव त्रिपुटीरूप हो भासता है तैसे ही यह जाग्रत की त्रिपुटी भी आत्मस्वरूप है । हे अंग! जितने स्थावर जंगम पदार्थ हैं सो सर्व आत्मस्वरूप हैं-जो परमात्म स्वरूप न हों तो भासे नहीं । दृष्टारूप जो अनुभव करता है सो एक अद्वैतरूप है-उसी स्वरूप के प्रमाद से भिन्न भिन्न त्रिपुटी भासती है, जो अनुभव न हो तो क्यों भासे? तैसे ही यह त्रिपुटी भी अनुभव आत्मा से भासती है । इससे सर्व परमात्मस्वरूप है कुछ भिन्न नहीं और जो भिन्न नहीं तो है ही नहीं क्योंकि सबकी एकता परमार्थस्वरूप में होती है । हे ऋषीश्वर! सजातीय वस्तु मिल जाती है । जैसे जल में जल की बूंद डालिये तो मिल जाती है, क्योंकि एकरूप है, तैसे ही बोध से सब पदार्थों की एकता भासती है, क्योंकि द्वैतसत्ता नहीं है । जैसे स्पन्द और निस्पन्द दोनों पवन ही हैं और जल और तरंग अभेदरूप हैं

तैसे ही विश्व परमार्थस्वरूप है । इससे ऐसे निश्चय करो कि सब ब्रह्मस्वरूप है अथवा आपको उठा दो कि मैं नहीं- जब तू न होगा तब विश्व कहाँ से होगा । हे मङ्कीऋषि! प्रथम जो अहं होता है तो पीछे ममत्व भी होता है; इसलिये जो अहं ही न रहेगा तो ममत्व कहाँ रहेगा? इस अहं का होना भी बन्धन है और इसके अभाव का नाम मुक्ति है । हे मित्र! इस युक्ति में क्या यत्न है? यह तो अपने आधीन है कि मैं नहीं जब अहंकार को निवृत्त किया तब शेष वही रहेगा जो सब का परमार्थरूप है और उसी को ब्रह्म कहते हैं । हे मुनीश्वर! जब अहंकार फुरता है तब नाना प्रकार की वासना होती है और उन वासनाओं के अनुसार अनेक जन्म पाता है जो वर्णन नहीं किये जाते । जैसे पवन से तृण भटकते फिरते हैं तैसे ही वासना करके जीव भटकते फिरते हैं । जब पर्वत से कंकड़ गिरता है तब चोंटे खाता नीचे को चला जाता है तैसे ही स्वरूप के प्रमाद से जीव जन्मजन्मान्तर पाते चले जाते हैं और वासनानुसार घटीयन्त्र की नाईं कभी ऊर्ध्व और कभी अधः को जाता है । हे अंग! इस संसार का बीज वासना है । जब वासना निवृत्त हो तब सबकी एकता हो जाती है और जबतक संसार की वासना दृढ़ है तब तक एकता नहीं होती । जैसे दूध और जल मिलता है तो उनका संयोग हो जाता है तैसे ही आत्मा और विश्व का संयोग नहीं-आत्मा केवल अद्वैत और सबका अपना आप है । जैसे मृत्तिका ही घटादिकरूप हो भासती है तैसे ही आत्मसत्ता ही जगत्‌रूप हो भासती है- इससे आत्मा से भिन्न कुछ वस्तु नहीं । हे साधो! आत्मा और दृश्य का काष्ठ और लाखवत् अथवा घट और आकाशवत् कुछ संयोग नहीं क्योंकि आत्मा अद्वैत है और सर्वदृश्य बोधमात्र है । हे साधो! जो जड़ है सो चैतन्य नहीं होता और चैतन्य जड़ नहीं होता इससे न कोई जड़ है, न चैतन्य है, चैतन्य आत्मा ही भावना से जड़ दृश्य हो भासता है और उसके बोध से एक अद्वैतरूप हो जाता है तो जानता है कि सब वही है भिन्न कुछ नहीं । हे मित्र! अज्ञान से नाना प्रकार का विश्व भासता है । जैसे मेघ की वर्षा से नाना प्रकार के बीज प्रफुल्लित हो आते हैं तैसे ही अहंरूपी बीज से संसाररूपी वृक्ष वासना द्वारा प्रफुल्लित होता है । जब अहंकाररूपी बीज नष्ट हो तब संसाररूपी वृक्ष भी नष्ट हो जावेगा । हे अंग! जैसे वानर चपलता करता है तैसे ही आत्मतत्त्व से विमुख अहंकार रूपी वानर वासना से चपलता करता है । जैसे गेंद हाथ के प्रहार से अधः और ऊर्ध्व को उछलता है तैसे ही जीव वासना से जन्मांतरों में भटकता फिरता है और कभी स्वर्ग, कभी पाताल और कभी भूलोक में आता है स्थित कदाचित् नहीं होता । इससे वासना को त्याग कर आत्मपद में स्थित हो रहो । हे तात! यह संसार रात की मंजिल है देखते देखते नष्ट हो जाती है इसको देखकर इसमें प्रीति करनी और सत्य जानना ही अनर्थ है । इससे संसार को त्याग करके आत्मपद में स्थित हो रहो । चित्त की वृत्ति जो संसरती है इसी का नाम संसार है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मंकिऋषिप्रबोधो नाम शताधिकषट्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ||146||

अनुक्रम

मंकिऋषिनिर्वाणप्राप्तिर्नाम

वशिष्ठजी बोले, हे तात! यह संसार का मार्ग गहन है और इसमें जीव भटकते हैं । यह चैतन्यवृत्ति जो संसरती है यही संसार है जब यह संसरना मिटे तब स्वच्छ अपना आप ही (स्वरूप) भासे । चेतनावृत्ति जो बहिर्मुख फुरती है इसी का नाम बन्धन है, और कोई बन्धन नहीं हे साधो! यह जगत् वासना से बँधा है । जैसे वसन्त ऋतु में रस फैलता है तैसे ही वासना से जगत् फैलता है । बड़ा आश्चर्य है कि मिथ्यावासना से जीव भटकते फिरते हैं, दुःख भोगते हैं और बारम्बार जन्म मृत्यु पाते हैं । बड़ा आश्चर्य है कि विषमरूप वासना के वश हुए जीव अविद्यमान जगत् को भ्रम से सत्य जानते हैं । हे साधो! जो इस वासनारूप संसार से तर गये हैं वे धन्य हैं और वे प्रत्यक्ष चन्द्रमा की नाईं हैं । जैसे चन्द्रमा अमृतरूप, शीतल और प्रकाशवान् है और सबको प्रसन्न करता है तैसे ही ज्ञानी पुरुष है । इससे तू धन्य है जो आत्मपद की इच्छा हुई है । यह संसार तृष्णा से जलता है जिनकी चेष्टा तृष्णासंयुक्त है उनको तू बिलाव जान । जैसे बिलाव तृष्णा से चूहे को ग्रहण करता है तैसे ही वे भी तृष्णासंयुक्त चेष्टा करते हैं । मनुष्य शरीर में यही विशेषता है कि किसी प्रकार आत्मपद को प्राप्त हो । जो नर देह पाकर भी आत्मपद पाने की इच्छा न करे तो वह पशु समान है । हे मित्र! मूढ़ जीव ऐसी चेष्टा करते हैं कि प्राणों के अन्तपर्यन्त भी तृष्णा करते रहते हैं । हे अंग! ब्रह्मलोक से काष्ठपर्यन्त जितने इन्द्रियों के विषय हैं उनके भोगने से शान्ति नहीं होती, क्योंकि आपातरमणीय हैं–इनमें सुख कदाचित् नहीं–जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनकी शान्ति ऐसी है जैसे चन्द्रमा में, और वे सूर्य की नाईं प्रकाशते हैं विषयों की तृष्णा कदाचित् नहीं करते । जैसे कोई पुरुष अमृतपान करके तृप्त हुआ तो वह खली खाने की इच्छा नहीं करता, तैसे ही जिस पुरुष को आत्मानन्द प्राप्त होता है वह विषयों के भोगने की इच्छा नहीं करता । इससे इसी वासना का त्याग करो । वासना का बीज अहंकार है उसको निवृत्त करो कि `मैं नहीं' क्योंकि मेरा होना ही अनर्थ है । हे साधो! शुद्ध चिन्मात्र निरहंकारपद में जो कुछ आपको मानता है कि `मैं यह हूँ' यही अनर्थ है । हे ऋषे! नेत्रों के खोलने से संसार उत्पन्न होता है और नेत्रों के मूँदने से नष्ट हो जाता है, सो नेत्र अहंकार का फुरना है, इसी से आगे विश्व सिद्ध होता है । इससे तेरा होना ही अनर्थ है । हे अंग! जैसे रस्सी में सर्प भ्रममात्र उदय होता है तैसे ही आत्मा में अहंकार उदय हुआ है । इसी के अभाव से शान्ति होती है जब अहंकार होता है तब आगे स्त्री, कुटुम्ब और धन होते हैं सो ही बन्धन हैं । इनके चमत्कार ऐसे हैं जेसे दामिनी का चमत्कार क्षण में उदय होकर नष्ट हो जाता है, इससे इनमें बन्धवान् न होना चाहिये । हे अंग! जब तू कुछ बना तब सब आपदा तुझे प्राप्त होगी और यदि तू अपना अभाव जानेगा तो पीछे आत्मपद ही शेष रहेगा जो परमशान्त रूप है और जिसकी अपेक्षा से चन्द्रमा भी अग्निवत् जान पड़ता है । वह परमशून्य और सब पदार्थों की सत्ता और आकाशरूप है । हे मित्र! मेरे इन वचनों को धारण कर कि तेरा मोह नष्ट हो जाय । यह विश्व कुछ हुआ नहीं । जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासता है पर है नहीं तैसे ही विश्व नहीं आत्मा के प्रसाद से भासता है । हे ऋषे! तू उसी को जान जिसके अज्ञान से विश्व भासता है और जिसके ज्ञान से लय हो जाता है । हे मंकी! जैसे आकाश शून्यमात्र है, पवन स्पन्दमात्र है और जल तरंगमात्र है तैसे ही जगत् संवितमात्र है उस संवित् आकाश से जो भिन्न भासता है उसे भ्रममात्र जानो । जैसे असम्यक्‌दृष्टि से जल पहाड़रूप भासता है तैसे ही असम्यक् दृष्टि से जगत् भासता है और सम्यक् अवलोकन से परमार्थसत्ता ही भासती है । जिसके अज्ञान से विश्व भासता है उसको ही ज्ञानवान् ब्रह्म कहते हैं । उस ब्रह्म में अहंकार ही

व्यवधान है सो ज्ञान वान् का नष्ट भया है इससे वह सबका अधिष्ठान एक परमार्थस्वरूप देखता है उसी में तू भी एक हो रह । जैसे आकाश अनेक घट के संयोग से भिन्न भिन्न भासता है और घट को फोड़िये तो सब एक ही हो जाता है तैसे ही अहंकार रूपी घट फोड़िये तो सब पदार्थ एक हो जाते हैं । हे अंग! सबकी परमार्थसत्ता एक ब्रह्मपद है जो अजन्मा, अच्युत, आनन्द, शान्तरूप, निर्विकल्प, अद्वैत, सब का अधिष्ठान है, उस शिलावत् आत्मसत्ता से भिन्न कुछ न फुरे, इससे निर्बोध बोध हो जावो । हे मंकी ऋषि! ये जो पदार्थ दुःख के देनेवाले हैं और ऐसे जो अर्थ हैं सो आकाश के फूल हैं, इससे शोक मतकर, क्योंकि सब परमार्थसत्ता ही है । तैसे पुरुष निराकार है पर उसकी अभावना से अंगों का संयोग होता है तैसे ही विश्व भी इसकी भावना से होता है । जैसी संसार की भावना दृढ़ होती है तैसा ही रूप आगे दृष्टि आता है । जो विश्व उपादान से नहीं हुआ तो आरम्भ परिणाम से भी कुछ नहीं बना । हे मित्र! शुद्ध परमात्मा का पाना साध्य है, क्योंकि विश्व निरुपादान है सो शब्दमात्र है । आत्मा अद्वैत है सो इसका हेतु नहीं है और अचिन्त्य है इसी से विश्व निरुपादान स्वप् न वत्ु है । जैसे स्वप्न की सृष्टि निरुपादान होती है तैसे ही जाग्रत सृष्टि भी है जैसे मृत्तिका से घटकार्य बनता है आत्मा विश्व का उपादान ऐसे भी नहीं, क्योंकि मृत्तिका परिणाम से घटाकार होती है और आत्मा अच्युत है । जैसे भीत बिना चित्र हो सो है ही नहीं-इससे यह विश्व आकाश में चित्र है । जैसे स्वप्न में नाना प्रकार का विश्व आधार भी बिना चित्र होते हैं तैसे ही यह विश्व भी आकाश में चित्र हुआ है । इसी से आत्मा अकर्ता है और विश्व जो दृष्टि आता है सो निरुपादान है इसका शोक और हर्ष क्यों करें? यह प्रपञ्च सब आत्मरूप है प्रमाद से नहीं जाना जाता । हे साधो जो अहंकार फुरता है तब विश्व भासता है । जैसे स्वप्न में जो कुछ बनता है सो अपने स्वप्न में जो कुछ बनता है सो अपने स्वरूप से भिन्न देखता है और उसी में रागदेष भासते हैं पर जागे हुए और कुछ नहीं सब कल्पना ही थी, तैसे ही जब संवेदन उठ गया तब सब विश्व अपना आप हो जाता है । अहंकार होना ही विश्व है, जब अहंकार नष्ट हो तब सब शब्द अर्थ कि मैं दुःखी हूँ, मैं सुखी हूँ यह नरक है, यह स्वर्ग है इत्यादिक परमार्थसत्ता ही में फुरते हैं । सबका अधिष्ठान आत्मा है इससे सब आत्मस्वरूप है जो दृश्य से रहित दृष्टा है, ज्ञेय से रहित ज्ञाता है और निर्बोध बोध है, इच्छा से रहित इच्छा है, अद्वैत है और नानात्व भी वही है, निराकार है और आकार भी वही है, अकिञ्चन और किञ्चन भी वही है और सब अक्रिय है और सब क्रिया भी वही करता है ऐसे आत्मज्ञान को पाकर आत्मवेत्ता विचरते हैं और जगत् का भान उसको किंचित भी नहीं होता । जैसे सुवर्ण के भूषण जल के तरंग होते हैं तैसे ही सब विश्व उसको आत्मस्वरूप भासता है । ऐसे जानकर वे सब चेष्टा करते हैं । जैसे यन्त्र की पुतली में संवेदना नहीं फुरती तैसे ही उनको जगत् में सत्यता नहीं फुरती, क्योंकि वे निरहंकार हुए हैं हे मंकी ऋषि! जैसे सुवर्ण में भूषण बन आये हैं तैसे ही आत्मा में विश्व फुर आया है सो अहंकार फुरा है, इससे इसके अभाव की भावना करो और निरहंकार होकर चेष्टा करो । जैसे पालने में बालक के अंग स्वाभाविक हिलते हैं तैसे ही ज्ञानी की निर्वेदन चेष्टा होती है । हे ऋषे! जब तू इस मेरे उपदेश को धारेगा तब सुख से ही आत्मपद की प्राप्ति होगी और यह विश्व भी आत्मस्वरूप ही भासेगा । जो कुछ विश्व भासता है सो सब आत्मरूप ही है । हे रामजी! जब मैंने इस प्रकार कहा तब मंकी ऋषि परमनिर्वाणपद को प्राप्त हुआ और परमसमाधि में एक वर्ष स्थित रहा-शिलावत् कुछ न फुरा । हे रामजी! जैसे मंकी ऋषि स्वरूप को प्राप्त हुआ है तैसे ही तुम भी स्थित हो रहो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मंकिऋषिनिर्वाणप्राप्तिर्नाम शताधिकसप्तचत्वारिंशत्तमस्सर्गः

||147||

सुखेन योगोपदेशो

वशिष्ठजीबोले, हे रामजी! यह विश्व आत्मा का चमत्कार है और सब वही चिन्मात्रस्वरूप है । हे रामजी! मेरा आशीर्वाद है कि तुम चिन्मात्रस्वरूप को प्राप्त हो रहो और जो तुम्हारा अपना आप है उसको अपना आप जानो कि तुम्हारे दुःख नष्ट हो जावें । हे रामजी तुम निर्वाण शान्त आत्मा हो रहो, यथालोभ में सन्तुष्ट रहो, सत्य हुए भी असत्य की ना ईं स्थित हो रहो और रागद्वेष का रंग तुमको स्पर्श न करे । हे रामजी! यह सब जगत् एक ही स्थित है और वास्तव में एक में कुछ स्थित नहीं- आदि अन्त से रहित एक चिदाकाश अपने आपमें स्थित है और शरीरादिक के नाश में भी अखण्डरूप है उसी का यह जगत् चमत्कार है जो उपज उपजकर लय हो जाता है । हे रामजी! ध्याता, ध्यान, ध्येय, त्रिपुटी भ्रान्तिमात्र है और वास्तव में दृष्टा, दर्शन, दृश्य सब आत्मस्वरूप है, उससे भिन्न कुछ नहीं और सदा एकरस है कदाचित् क्षोभ को नहीं प्राप्त होता । यद्यपि यह न दशा हो कि अमावस का चन्द्रमा दृष्टि आवे और प्रलयकाल बिना प्रलयकाल की वायु चले तो भी आत्मा को क्षोभ नहीं होता--आत्मपद सदा ज्यों का त्यों है । हे रामजी! ऐसे आत्मा के प्रमाद से जीव दुःख पाते हैं । जब आत्मा का प्रमाद होता है तब देह और इन्द्रियाँ अपने आपमें प्रत्यक्ष भासती हैं पर जैसे बालू से तेल नहीं निकलता, आकाश में बन नहीं होता और चन्द्रमा के मण्डल में ताप नहीं होता तैसे ही आत्मा में देह इन्द्रियाँ कदाचित् नहीं । हे रामजी! ये सब जीव आत्मरूप हैं, इससे इनको देह इन्द्रियों का सम्बन्ध कुछ नहीं, परन्तु इनका जो क्रिया में अभिमान होता है इसी से बन्धवान् होते हैं । हे रामजी! जैसे नाव पर बैठे हुए पुरुष को भ्रान्ति से नदी तट के वृक्ष चलते भासते हैं तैसे ही मन के भ्रम से आत्मा में चित्त और देह इन्द्रियाँ भासती हैं । वास्तव में चित्त,देह और इन्द्रियाँ कुछ भिन्न नहीं । ये भी आत्मरूप ही है तो निषेध किसका कीजिये? हे रामजी! मन और इन्द्रियादिक को अपनी सत्ता कुछ नहीं भ्रान्ति से भासती हैं । जैसे पर्वत पर उज्ज्वल मेघ होता है और उसमें वस्त्रबुद्धि निष्फल होती हैं तैसे ही देहादिक हैं, इनमें अहंबुद्धि निष्फल है । इससे हे रामजी! एक अखण्ड आत्मतत्त्व है और द्वैत कुछ नहीं जब तुम ऐसे धारो तो निरञ्जन स्वरूप हो । हे रामजी! ये सब शरीर चित्त के फुरने से स्थित हैं जैसे चित्त के फुरने से शरीर है तैसे ही जीव में चित्त है और परमात्मा में जीव है । हे रामजी! इस प्रकार फुरनेमात्र दृश्य तो द्वैत कुछ न हुआ? इस प्रकार विचार पूर्वक दृश्यभ्रम को त्यागकर स्वरूप में स्थित हो रहो । हे रामजी! ऐसी धारणा करके सुख से बिचरो और जो कुछ चेष्टा नीति से प्राप्त हो उसको करो परन्तु अपना अभिमान न हो । जब अपना अहंभाव दूर होगा तब स्पन्द हो अथवा निस्पन्द हो समाधि में स्थित हो अथवा राज्य करो तुमको दोनों तुल्य हो जावेंगे । जब अपनी अभिलाषा दूर होती है तब जैसे चेष्टा प्राप्त हो तैसा ही हो वह फुरना भी अफुर है और एक अद्वैत सत्ता ही भान होगी । जैसे सम्यक्‌्दर्शी को तरंग और सोमजल एक भासता है तैसे ही तुमको भी एक ही भासेगा । चाहे जीवन्मुक्त हो रहो अथवा विदेहमुक्त हो, समाधि हो अथवा राज्य हो तुमको दोनों तुल्य हैं । हे रघुकुल आकाश के चन्द्रमा रामचन्द्रजी! जीव को अपनी अभिलाषा ही बन्धन करती है- जब अभिलाषा मिटती है तब कर्म करो अथवा न करो कुछ बन्धन नहीं, क्योंकि करने में भी आत्मा को अक्रिय देखता है और न करने में भी वैसे ही देखता है और उसको द्वैतभावना निवृत्त हो जाती है इसे उसको चित्त, देह, इन्द्रियादिक सब पदार्थ आत्मरूप ही भासते हैं । हे रामजी! मैं जानता हूँ कि तुम्हारे हृदय का मोह निवृत्त हुआ है अब तुम जागे हो । यदि कुछ तुमको संशय रहा हो तो फिर प्रश्न करो कि मैं उत्तर दूँ ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सुखेन योगोपदेशो नाम शताधिकाष्टचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ||148||

अनुक्रम

निराशयोगोपदेशो

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! एक संशय मुझको और है उसको भी आप निवृत्त कीजिये । कोई कहते हैं कि बीज से अंकुर होता है और कोई कहते हैं कि अंकुर से बीज होता है, कोई कहते हैं कि जो कुछ करता है सो दैव ही करता है और कोई कहते हैं कि कर्म करते हैं तब तब जन्म पाते हैं और कर्म ही से सब कुछ होता है किसी के अधीन नहीं, कोई कहते हैं कि जब देह होती है तब कर्म करते हैं और कोई कहते हैं कि कर्मों से देह होती है, बाजे कहते हैं देह से कर्म होते हैं और कोई पुरुषप्रयत्न मानते हैं सो यह जैसे हैं तैसे तुम कहो । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! एक एक में तुमसे क्या कहूँ, कर्म से दैव और घट से आकाश पर्यन्त जितने क्रिया, कर्म और द्रव्य हैं, ये सब विकल्पजाल भ्रान्तिमात्र हैं केवल आत्मस्वरूप अपने आपमें स्थित है-द्वैत कुछ नहीं हुआ । हे रामजी! जब संवेदन फुरता है तब सब कुछ भासता है और निःसंवेदन हुए कुछ नहीं । जैसे शीत, श्वेत आदिक बरफ के पर्याय हैं तैसे ही कर्म, पुरुषप्रयत्न आदि सब आत्मा के पर्याय हैं । दैव पुरुष है और पुरुष दैव है, कर्म देह है और देह कर्म है, बीज अंकुर है और अंकुर बीज है, दैव कर्म है और कर्म दैव है और वही पुरुष प्रयत्न हैं, जो इनमें भेद मानते हैं वे पण्डितों में पशु हैं क्योंकि उनका बीज अहंकार है-जब अहंकार हुआ तब सब कुछ सिद्ध हुआ । जैसे बीज से वृक्ष, फल,फूल और डाल होते हैं पर जो बीज ही न हो तो वृक्ष कैसे उपजे । हे रामजी! इनका बीज संवेदन है । अहंकार, संकल्प और संवेदन तीनों पर्याय हैं । जब फुरना हुआ तब कर्म, देह, दैव सब सिद्ध होते हैं और जब फुरना मिट गया तब कुछ नहीं भासता । इसी को ज्ञान अग्नि से जलाओ कि फूल, फल, टहनी सब जल जावें । यह जो संवेदन फुरता है कि `मैंहू' यही संसार बीज है, इसे ज्ञानरूपी अग्नि से जलाओ । जब अहंकार नष्ट होगा तब द्वैत कुछ न भासेगा । हे रामजी! यह जो प्रपञ्च भासता है उसका बीज संवेदन है और संवेदन का बीज शुद्ध संवित्ृतत्व है पर उसका बीज और कोई नहीं । हे रामजी! आदि जो स्पन्द संवेदन फुरना हुआ है उसी का नाम दैव है, क्योंकि वह कर्म से आदि ही फुरता है, फिर जो आगे क्रिया होती है सो कर्म है और इसी का नाम पुरुषप्रयत्न है । वह जो कर्म से आदि दैवरूप फुरा है सो क्या रूप है? इसी का जो पहिला कर्म है उसी को दैव कहते हैं । इन सबका बीज संवेदन है । हे रामजी! वह स्वतः पुरुष चिन्मात्रपद एक ही था, जब उससे विकारसंयुक्त उत्थान हुआ तब प्रपञ्च भासने लगा और फिर जब उत्थान का अभाव हो तब प्रपञ्च का भी अभाव हो जावे । हे रामजी! जब जीव कुछ बनता है तब सर्व आपदा उसको प्राप्त होती हैं । जैसे सुई वस्त्र में प्रवेश करती है तो उसके पीछे तागा भी चला जाता है और जो सुई न प्रवेश करे तो तागा कहाँ से जावे तैसे ही जब अहंकार प्रवेश करता है तब सब आपदा भी आती है और जब अहंकार निवृत्त हो तब सब विश्व आनन्दरूप और अपना आप भासता है । इससे अहंकार का अभाव करो, क्योंकि विश्व भ्रान्ति से सिद्ध है, आगे कुछ हुआ नहीं, सर्व आत्मस्वरूप है । हे रामजी! विश्व वासनामात्र है, जब वासना नष्ट हो तब परमकल्याण है । जिस प्रकार वासना क्षय हो वही युक्ति श्रेष्ठ है । जब युक्ति से वासना क्षय होगी तब चेष्टा भी होगी परन्तु फिर जन्म न देगी । हे रामजी ज्ञानी और अज्ञानी की चेष्टा तुल्य दृष्टि आती है परन्तु ज्ञानी का संकल्प दग्धबीज वत् है-फिर जन्म नहीं देता और अज्ञानी का संकल्प कच्चे बीजवत् है-फिर जन्म देता है पर वास्तव में देखिये तो न कोई जन्म ही पाता है और न कोई मृतक होता है केवल अपने आपमें स्थित है और भ्रान्ति करके भिन्न भिन्न भासते हैं । स्वरूप से सब अपना ही आप है-द्वैत कुछ नहीं हुआ और जो भासता है सो मिथ्या है । जैसे केले के थम्भ में सार कुछ नहीं

होता तैसे ही सर्वप्रपञ्च मिथ्या है इसमें सार कुछ नहीं–इससे इसकी वासना त्यागकर अपने आपमें स्थित हो। हे रामजी! जिस प्रकार तुम्हारी वासना निर्मूल हो उसी यत्न से निर्मूल करो तब परम शिवपद ही शेष रहेगा। हे रामजी! पुरुषप्रयत्न से जब निरहंकार होगे तब वासना आपही क्षय हो जावेगी। वासना क्षय का उपाय अपने पुरुषप्रयत्न के सिवा और कोई नहीं। इससे हे रामजी! पुरुषार्थ करके इसी एक देव के परायण हो रहो। कर्म, देव आदिक वही पुरुष होकर भासता है और कुछ हुआ नहीं–जैसे एक ही पुरुष देवन का स्वाँग धारे। हे रामजी! इस प्रकार विचारपूर्वक सब एषणा को त्यागकर स्वरूप में स्थित हो रहो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे निराशयोगोपदेशो नाम शताधिकनवचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ||149||

अनुक्रम

भावनाप्रतिपादनोपदेश

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ज्ञानवान् की बुद्धि निर्मल हो जाती है । उसके हृदय में शीतलता होती है और उसकी बुद्धि चैतन्य से पूर्ण होती है और दूसरा भान उठ जाता है । इससे तुम भी नित अन्तर्मुख और वीतराग निर्वासी हो रहो और चिन्मात्र, निर्मल और शान्तरूप सर्वब्रह्म की भावना करो । उस ब्रह्मपद को पाकर नीति के अनुसार अज्ञानी के समान चेष्टा करो, जो हर्ष का स्थान हो उसमें हर्ष करो और शोक के स्थान में शोक करो पर हृदय में आकाश की नाईं रहो । हे रामजी! जब इष्ट की प्राप्ति हो तो इससे स्पर्श करो परन्तु हृदय में तृष्णा न करो जब युद्ध प्राप्त हो तब शूरमा होकर युद्ध करो, जो दीन हो उस पर दया करो, जो राज्य प्राप्त हो तो उसको भोगो और जो कोई कष्ट प्राप्त हो तो उसको भी भोगो ये सब चेष्टा अज्ञानी की नाईं करो पर हृदय में समता रक्खो, आत्मा से भिन्न कुछ न फुरने दो और रागद्वेष से रहित सदा निर्मल हो रहो । जब तुम ऐसे निश्चय को धारोगे तब तुमको कुछ खेद न होगा । यद्यपि बड़ा दुःख और इन्द्र का वज्र पड़े तो भी तुमको स्पर्श न करेगा । हे रामजी! तुम्हारा रूप न शस्त्र से कटता है, न अग्नि से जलता है, न जल से गलता है और न पवन से सूखता है-केवल निराकार, अजर, अमर और सबका अपना आप है । हे रामजी! कष्ट तब होता है जब विलक्षण वस्तु होती है और अग्नि तब जलती है जब काष्ठ आदिक भिन्न वस्तु होती हैं, अग्नि को अग्नि तो नहीं जलाती और जल को जल तो नहीं गलाता? इसमें तुम अपने आप में स्थित हो रहो । हे रामजी! संवित्ूरूप आलयवत् स्थिर स्थान है उसीमें स्थित हो रहो-जैसे पक्षी सब ओर से संकल्प को त्यागकर आलय में स्थित होता है तब सुख पाता है तैसे ही जब तुम सर्वकलना को त्याग कर अन्तर्मुख संवित् में स्थित होगे तब रागद्वेषरूपी द्वन्द्व कोई न रहेगा हे रामजी! संसाररूपी समुद्र का बड़ा प्रवाह है, आश्रय बिना उससे नहीं निकल सकता, सो आश्रय मैं तुमसे कहता हूँ कि अनुभवरूप आत्मा को आश्रय करके संसारसमुद्र के पार हो रहो, विलम्ब न करो और अपने आपमें स्थित हो रहो । हे रामजी! यदि कोई संसाररूपी वृक्षका अन्त लिया चाहे तो नहीं ले सकता । संसाररूपी एक वृक्ष है उसमें चैतन्यमात्र सुगन्ध है सो तेरा अपना आप है उसको ग्रहण कर । जो सबका अधिष्ठान है जब उसको ग्रहण किया तब सबको ग्रहण किया । हे रामजी! जो कुछ प्रपञ्च तुमको बासता है सो सब आत्मरूप है-उसी की भावना करो जाग्रत करो जाग्रत में सुषुप्ति हो रहो और सुषुप्ति में जाग्रत् हो रहो । संसार की सत्ता जो जाग्रत है उसकी ओर से सुषुप्त हो रहो अर्थात् फुरने से रहित होकर तुरीयापद में स्थित हो रहो जहाँ गुणों का क्षोभ नहीं और निर्मल शान्तरूप है और जहाँ एक और दो की कलना कोई नहीं । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ऐसे जो शान्तरूप तुरीयापद में स्थित होना तुमने कहा सो तुम्हारे में यह नहीं फुरता कि मैं वशिष्ठ हूँ, उसका रूप क्या है कि अहंप्रतीति तुमको नहीं होती है? इतना कह वाल्मीकिजी बोले, हे भारद्वाज! जब इस प्रकार रामजी ने प्रश्न किया तब वशिष्ठजी चुप हो गये और सब सभा संशय के समुद्र में मग्न हुई । तब रामजी बोले, हे भगवन्! चुप होना तुम्हारा अयोग्य है । तुम साक्षात् विश्वगुरु और ब्रह्मवेत्ता हो । ऐसी कौन बात है जो तुमको न आवे? क्या मुझको समर्थ नहीं देखते? जब ऐसे रामजी ने कहा तब वशिष्ठजी एक घड़ी के उपरान्त बोले, हे रामजी! असामर्थ्य से मैं चुप नहीं हुआ परन्तु जैसा तेरे प्रश्न का उत्तर है वही दिखाया कि तेरे प्रश्न का चुप ही उत्तर है । जो प्रश्न करनेवाला अज्ञानी हो तो उसको अज्ञान लेकर उत्तर देते हैं और जो ज्ञानवान् हो उसको ज्ञान से उत्तर देते हैं । आगे तुम अज्ञानी थे तब मैं सविकल्प उत्तर देता था और अब तुम ज्ञानवान् हो तुम्हारे प्रश्न का उत्तर

तूष्णीं ही है । हे रामजी! जो कुछ कहना है सो प्रतियोगी से मिला हुआ है,प्रतियोगी बिना शब्द में कैसे कहूँ? आगे तुम सविकल्प शब्द के अधि कारी थे और अब तुमको निर्विकल्प का उपदेश किया है । हे रामजी! शब्द चार प्रकार के हैं-एक सूक्ष्म अर्थ का,दूसरा परमार्थ का, तीसरा अल्प और चौथा दीर्घ । तीन कलंक इनमें रहते हैं-एक संशय, दूसरा प्रतियोगी और तीसरा भेद । जैसे सूर्य की किरणों में त्रसरेणु रहते हैं तैसे ही शब्द में कलंक रहते हैं पर जो पद मन और वाणी से अतीत है उसको कलंकित शब्द कैसे ग्रहण करे? हे रामजी! काष्ठमौन उसको कहते हैं जहाँ इन्द्रियाँ न फुरें, न मन फुरें, और कोई फुरना न फुरे -ऐसे पदको मैं वाणी से कैसे कहूँ जो कुछ बोला जाता है सो सविकल्प होता है-तुम्हारे उस प्रश्न का उत्तर तूष्णी है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! तुम कहते हो कि बोलना सविकल्प और प्रतियोगी सहित होता है तो जो कुछ ब्रह्म में दूषण है उसका निषेध करके कहो मैं प्रतियोगी को न विचारूँगा । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मैं चिदाकाशस्वरूप, चैत्य से रहित चिन्मात्र शान्तरूप, सम और सर्वकलना से रहित केवल आत्मतत्त्वमात्र हूँ और तुम और जगत् भी चिदाकाश है अहं त्वं कोई नहीं, क्योंकि दूसरी सत्ता कोई नहीं सब अहंसंवेदन से रहित शुद्ध चिदाकाश है । जो सापेक्षक अहं-अहं फुरती है और मोक्ष की भी इच्छा होती है तो सिद्ध नहीं होती, क्योंकि आपको कुछ मानकर फुरती है इससे एक अहंकार के कई अहंकार हो जाते हैं । यही अहं गले में फाँसी पड़ती है, जब अहन्ता से रहित हो तब आत्मपद को प्राप्त हो । हे रामजी! जब शव की नाईं हो जावे और कुछ अभिमान न फुरे तब संसारसमुद्र से पार हो और जब तक द्वैत है तब तक बन्धन है कदाचित मुक्त नहीं होता । जैसे जन्म का अन्धा चित्र की पुतली को नहीं देख सकता तैसे ही अहंतासंयुक्त मुक्ति नहीं पाता । जब अहन्ता का अभाव हो तब कल्याण हो-स्वरूप के आगे अहन्ता ही आवरण है । हे रामजी! जब जीव चेतन होकर फुरा तब उसको बन्धन पड़ा और जब जड़ अफुर हो तब कल्याण हो । जब चैतन्योन्मुखत्व होता है तब जीव होता है और मनुष्य का शरीर पाकर जब चैत्य से रहित शुद्ध चैतन्य प्रत्येक आत्मा में स्थित होता है तब मनुष्यजन्म सफल होता है । मनुष्यजन्म पाकर पाने योग्य पद पा सकता है । हे रामजी! यदि मनुष्यजन्म को पाकर न जानेगा तो और किस जन्म में जानेगा? यह संसार चित्त के फुरने से उत्पन्न हुआ है, जब चित्त संसरने से रहित हो तब केवल केवलीभाव स्वरूप भासे । ज्ञानवान् की दृष्टि में अब भी कुछ नहीं हुआ केवल आत्मस्वरूप ही भासता है और फुरना व फुरन दोनों तुल्य दिखाई देते हैं । अन्तःकरण चतुष्टय आत्म स्वरूप है और अज्ञानी को भिन्न-भिन्न बासते हैं इसी से चित्त आदिक जड़ और मिथ्या हैं और आत्मस्वरूप से सब आत्मस्वरूप हैं आत्मा देश, काल और वस्तु के परिच्छेद से रहित है-ज्ञानी को सब आत्मा ही भासता है चाहे वह कैसी ही चेष्टा करे वह लोक धन, पुत्र आदि सर्व एषणा से रहित है, केवल आत्म अनुभवरूप में स्थित है और सबको अपना आप जानता है । हे रामजी! जिस पद को वह प्राप्त होता है उस पद को वाणी नहीं कह सकती वह अनिर्वाच्यपद है जो पुरुष कहता है कि "अहं ब्रह्मास्मि" अर्थात् मैं ब्रह्म हूँ और यह जगत् है तो जानिये कि उसको ज्ञान नहीं उपजा-उसको शास्त्रश्रवण का अधिकार है । जैसे कोई कहे कि मेरे हाथ में दीपक है और अन्धकार भी मुझको दृष्टि आता है तो जानिये कि इसके हाथ में दीपक नहीं , तैसे ही जब लग जगत् भासता है तबलग ज्ञान नहीं उपजा । हे रामजी! अब भी निर्वाणपद है, किससे किसको कौन उपदेश करे? केवल एक रस शून्य और आत्मा में कुछ भेद नहीं और जो कुछ भेद है उसको ज्ञानवान् जानते हैं वाणी की गम नहीं । उसमें जो संवेदन फुरता है उससे संसार फुरता है और असंवेदन से लीन होता है । जैसे पवन से अग्नि प्रज्वलित होता है और पवन ही में लीन होता है तैसे ही जब संवेदन बहिर्मुख फुरता है तब संसार भासता है और

जब अन्तर्मुख होता है तब जगत् लीन हो जाता है-इससे संसार फुरनेमात्र है। जैसे आकाश में नीलता भ्रम से भासती है तैसे ही आत्मा में जगत् कुछ बना नहीं केवल ब्रह्मसत्ता ज्यों की त्यों है- उसी में स्थित हो रहो। जब उसमें स्थित होगे तब भेद मिट जावेगा।हे रामजी! तब ग्राह्य और ग्राहकसम्बन्ध भी जाता रहेगा और केवल परमात्मतत्त्व जो शुद्ध, अजर और अमर है उसमें खाते पीते, चलते फिरते वृत्ति रहेगी।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भावनाप्रतिपादनोपदेशो नाम शताधिकपञ्चाशत्तमस्सर्गः ||150||

अनुक्रम

हंससंन्यासयोग

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिस प्रकार पुरुष आत्मपद को प्राप्त होता है सो सुनो । जब निरहंकार होता है तब आत्मपद को प्राप्त होता है । जो सर्वात्मा है उसको आवरण करनेहारी अविद्या ही है । जैसे सूर्यमण्डल को बादल ढाँप लेता है तैसे ही अविद्या आत्मा में आवरण करती है । उस अविद्या से उन्मत्त की नाईं मूर्ख चेष्टा करते हैं और जो अहंता से रहित ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको कोई दुःख नहीं स्पर्श करता- संदेह भी निर्दुःख होता है । जैसे भीत पर लिखी युद्ध की सेना देखने मात्र क्षोभित दृष्टि आती है परन्तु शान्तरूप है, तैसे ही ज्ञानवान् की चेष्टा में भी क्षोभ दृष्टि आता है परन्तु सदा अक्षोभ और निर्वाणरूप है और वासना सहित दृष्टि आता है पर सदा निर्वासिनक है । जैसे जल में लहर और चक्र क्षोभ दृष्टि आते हैं परन्तु जल से भिन्न नहीं, तैसे ही ज्ञानवान् को ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं भासता । जिसके हृदय से दृश्यभाव शान्त हो गया है और बाहर से क्षोभवान् दृष्टि आता है तो भी वह मुक्तरूप है जैसे बादल आकाश में हाथी, घोड़ा और पहाड़रूप दृष्टि आते हैं परन्तु हैं कुछ नहीं, तैसे ही जगत् दृष्टि आता है परन्तु है कुछ नहीं, अहंकार से भासता है और अहंकार से रहित निर्विकार शान्तरूप हो जाता है । ऐसा जो निरहंकार आत्मपद है उसको पाकर ज्ञानवान् शोभता है । शरत्ऀकाल का आकाश, क्षीरसमुद्र और पूर्णमासी का चन्द्रमा भी ऐसा नहीं शोभता जैसा ज्ञानवान् पुरुष शोभता है । हे रामजी! अहन्ता ही इस पुरुष को मल है, जब अहन्ता नष्ट हो तब स्वरूप की प्राप्ति हो और संसार के पदार्थों की भावना निवृत्त हो क्योंकि भ्रम से उपजी थी । जो वस्तु भ्रम से उपजी होती है उसका भ्रम के अभाव हुए अभाव हो जाता है । जैसे आकाश में धुयें का बादल नाना प्रकार के आकार हो भासता है पर है नहीं, तैसे ही यह विश्व अनहोता भासता है और विचार किये से नहीं रहता । हे रामजी! जबतक संसार की वासना है तबतक बन्ध है और जब वासना निवृत्त हो तब आत्मपद की प्राप्ति हो, संपूर्ण कलना मिट जावे और इन्द्रियों के इष्ट अनिष्ट में तुल्य हो जावे । तब वह यद्यपि व्यवहारकर्ता हो तो भी शान्तरूप है । जैसे शव को रागद्वेष नहीं फुरता तैसे ही ज्ञानी निर्वाणपद को प्राप्त होता है जिसमें सत् असत् शब्द कोई नहीं केवल ब्रह्म स्वरूप है बल्कि ब्रह्म कहना भी वहाँ नहीं रहता केवल आत्मतत्त्व मात्र है और अद्वैत है । हे रामजी! विश्व भी वही रूप चैतन्य आकाश है । जैसी जैसी भावना होती है तैसा ही तैसा चैतन्य होकर भासता है । जब जगत् की भावना होती है तब नाना प्रकार के आकार दृष्टि आते हैं और ब्रह्म भी भावना से ब्रह्म भासता है । जैसे विष में यदि अमृत की भावना होती है और विधिसंयुक्त खाते हैं तो वह विष भी अमृत हो जाता है और जो विधि बिना खाइये तो मृत्यु का कारण होता है, तैसे ही इस संसार को यदि विधि संयुक्त देखिये अर्थात् विचार करके देखिये तो ब्रह्म स्वरूप भासता है और जो विचार बिना देखिये तो जगद्ऀरूप भासता है पर विचार तब होता है जब अहंकार निवृत्त होता है । अहंकार आकाश में उपजता है, आकाश शून्यता में उपजा है और शून्यता आत्मा के प्रमाद से उपजी है । फिर अहंकार से जगत् हुआ है और अहंकार मिथ्या है । हे रामजी! शरीर आदिक चित्तपर्यन्त विचारकर देखिये तो दृष्टि कहीं नहीं आते, इनमें जो अहंप्रत्यय है वह भ्रान्तिमात्र है जब तुम विचार करके देखोगे तब मरीचिका के जलवत् भासेगा । हे रामजी! जैसे स्वप्न के पर्वत के त्यागने में कुछ यत्न नहीं तैसे ही मिथ्या संसार के त्यागने में कुछ यत्न नहीं- फिर इसका निर्णय क्या कीजिये? जैसे बन्ध्या के पुत्र की वाणी विचारिये कि सत्य कहता है अथवा असत्य कहता है तो मिथ्या कल्पता है, क्योंकि बन्ध्या का पुत्र है ही नहीं तो उसका विचार क्या करिये, तैसे ही प्रपञ्च है नहीं तो इसका निर्णय क्या कीजिये? इससे तुम ऐसे हो रहो जैसे मैं कहता हूँ तब आत्मपद की प्राप्ति होगी । हे रामजी! ऐसी भावना करो न मैं हूँ

और न जगत् है जब अहंकार ही न रहा तब कलना कहाँ हो, इसका होना ही अनर्थ है । जब ऐसा विचार उत्पन्न होता है तब भोगों की वासना क्षय हो जाती है और सन्तों की संगति होती है–अन्यथा भोग की वासना नष्ट नहीं होती । हे रामजी! जब तक अहन्ता उठती है अर्थात् दृश्य और प्रकृति से मिलाप है तब तक द्वैतभ्रम नहीं मिटता और जब अहंकार का उत्थान मिट जावे तब शुद्ध चिन्मात्र आत्मसत्ता ही रहेगी ।

इति श्रीयोगवाशिष्टे निर्वाणप्रकरणे हंससंन्यासयोगो नाम शताधिकैकपञ्चाशत्तमस्सर्गः ||151||

अनुक्रम

निर्वाणयुतयुक्त्युपदेश

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब अहन्ता का उत्थान होता है तब स्वरूप का आवरण होता है और जब अहन्ता मिट जाती है तब स्वरूप की प्राप्ति होती है । इस संसार का बीज अहन्ता ही है, सो अहंकार ही मिथ्या हे तो उसका कार्य कैसे सत्य हो और जो प्रपञ्च मिथ्या हुआ तो पदार्थ कहाँ से सत्य हों? हे रामजी! ऐसा जो ब्रह्म है उसके पाने की युक्ति क्या है? संकल्पपुरुष भी असत्य है, उसका संशय भी मिथ्या है और जिसके प्रति प्रश्न करता है सो भी मिथ्या है । जैसे स्वप्न में द्वैत कलना होती है सो असत् है तैसे ही यह जगत् भी असत्य है । हे रामजी! यह सब जगत् इसके भीतर स्थित है और प्रमाद से बाहर भासता है । यह अपना ही स्वप्ना दृष्टि आता है कि भीतर की सृष्टि बाहर भासती है । इससे यह जगत् सब चिद्रूप है-भिन्न कुछ नहीं । यह चैतन्यसत्ता आकाश से भी अतिसूक्ष्म और स्वच्छ है । हे रामजी! यह जगत् चित्त ने चेता है इससे कहीं हुआ नहीं और न किसी का नाश होता है, न कोई उत्पन्न होता है, न कहीं जन्म है और न मरण है-सर्वब्रह्म ही है । हे रामजी! जगत् के नाश हुए कुछ नाश नहीं होता, क्योंकि हुआ कुछ नहीं । जैसे स्वप्न के पहाड़ और संकल्पपुर नष्ट हुए तो क्या नष्ट हुये वे तो उपजे ही नहीं, तैसे ही यह जगत् है । यह विचार करके देखा है कि जो वस्तु अविचार से उपजी होती है सो विचार करने से नहीं रहती । जैसे जो पदार्थ तम से उपजा होता है सो प्रकाश हुए से नहीं रहता तैसे ही यह जगत् है, अविचार से भासता है और विचार करे से नाश हो जाता है । हे रामजी! यह जगत् संकल्पमात्र है-जैसे संकल्पनगर होता है तैसे ही यह संसार है इसमें कोई पदार्थ सत्य नहीं, इससे रूप, इन्द्रियाँ और मन के अभाव की चिन्तन करना । यह संसार ऐसा है जैसे समुद्र में चक्र इसमें प्रीति करना अज्ञानता है । हे रामजी! कोई ऐसे हैं कि बाहर से शान्तरूप दृष्टि आते हैं पर उनके हृदय में क्षोभ होता है और कोई पुरुष ऐसे हैं कि हृदय से शीतल हैं और बाहर नाना प्रकार की चेष्टा करते हैं पर जिनके दोनों मिट जाते हैं वे मोक्ष के भागी होते हैं और उनके भीतर बाहर एकता होती है-जैसे समुद्र में घट भरके रखिये तो उनके भीतर बाहर जल ही होता है । हे रामजी! जिस पुरुष ने आत्मा को ज्यों का त्यों जाना है उसको भय, शोक और मोह नहीं होता वह केवल स्वच्छरूप शान्त आत्मा में स्थित है । भय तब होता है जब दूसरा भासता है सो उसको सर्वद्वैत का अभाव होकर शान्तरूप होता है । हे रामजी! सम्यक्‌दर्शी को जगत् दुःख नहीं देता और असम्यक्‌दर्शी को दुःख देता है । जैसे रस्सी को जो जानता है उसको रस्सी ही भासती है और जो नहीं जानता उसको सर्प भासता है और भय पाता है, तैसे ही जिसको आत्मा का साक्षात्कार है उसको जगत्‌कल्पना कोई नहीं भासती केवल चिदानन्द ब्रह्म अधिष्ठान रूप भासता है और जिसको अधिष्ठान का अज्ञान है उसको जगत् द्वैतरूप होकर भासता है और वह रागद्वेष से जलता है । हे रामजी! और जगत् कोई नहीं इसके अनुभव में ही जगत् कल्पना होती है और अज्ञान से द्वैतरूप हो भासता है पर जब अपने स्वभावसत्ता में जागता है तब सब अपना आप भासता है । जैसे स्वप्न में अपना आपही द्वैतरूप हो भासता है और रागद्वेष उपजता है पर जब जागता है तब सब आत्मरूप हो भासता है, तैसे ही यह जगत् है, न इस जगत् का कोई निमित्त कारण है और न कोई उपादान कारण है । जो पदार्थ कारण बिना भासे उसे असत् जानिये वह वास्तव में उपजा नहीं भ्रम में सिद्ध हुआ है । जैसे स्वप्नसृष्टि अकारण है तैसे ही यह जगत् अकारण है और भ्रम करके भासता हे । हे रामजी! शास्त्र की युक्ति से विचार करके देखो तो द्वैत भ्रम मिट जावे रञ्चकमात्र भी कुछ बना नहीं । जैसे आकाश में नीलता नहीं और मरुस्थल में नदी नहीं तैसे ही इस जगत् को भी जानो

। आत्मा शुद्ध और अद्वैत है उसमें अहं का फुरना ही दुःख है और दुःख का कारण है । जो स्वरूप का प्रमाद न हो तो अहं भी दुःख का कारण नहीं और जो स्वरूप भूला तो अहं कारादि दृश्य विष की बेलि बढ़ती जाती है और नाना प्रकार के आकार धारती है और वासना दृढ़ होती है । जबतक वासना होती है तबतक बन्ध है और जब वासना निवृत्त हो तब ही कल्याण होता है । हे रामजी! जिस दृश्य की जीव भावना करता है वह जैसे समुद्र में तरंग और चक्र होते हैं सो समुद्र से भिन्नकुछ नहीं होते तैसे ही अहंकार आदिक जो दृश्य हैं सो हैं नहीं और जो हैं नहीं तो उनकी इच्छा करनी मूर्खता है । ज्ञानवान् की वासना क्षय हो जाती है और उसको बन्धन का कारण नहीं होती क्योंकि संसार की सत्यता उसके हृदय में नहीं रहती और सत्यता इससे नहीं रहती कि आत्मा का साक्षात्कार हुआ । जब आत्मा का प्रमाद होता है तब अहन्ता उदय होती है और दृश्य भासती है । जैसे नेत्र के खोलने से दृश्य का ग्रहण करता है और जब नेत्र मूँद लिये तब दृश्यरूप का अभाव हो जाता है तैसे ही अहन्ता उदय होती है तब दृश्य भी होती है और जब अहन्ता नष्ट होती है तब संसार का अभाव हो जाता है । हे रामजी! अहन्ता का उदय होना ही अज्ञानता है और अहन्ता से ही बन्ध है, अहन्ता से रहित मोक्ष है-आगे जो इच्छा हो सो करो । हे रामजी! देह, इन्द्रियादिक मृगतृष्णा के जलवत् हैं, उनमें अहन्ता करनी मूर्खता है । ज्ञानवान् अहन्ता को त्याग कर आत्मपद में स्थित होता है और संसार के इष्ट अनिष्ट में हर्ष और शोक नहीं करता । जैसे आकाश में बादल हुआ तो भी वह ज्यों का त्यों है, तैसे ही ज्ञानी ज्यों का त्यों तैसे ही ज्ञानी ज्यों का त्यों है । उसमें अहंकार नहीं होता इससे वह सुखरूप है । हे रामजी! रूप दृश्य, इन्द्रियाँ और मन उसके जाते रहते हैं । जैसे बन्ध्या के पुत्र का नृत्य नहीं होता तैसे ही ज्ञानी के रूप, अवलोक, मनस्कार नष्ट हो जाते हैं, क्योंकि उसको सर्व ब्रह्म भासता है और द्वैत भावना उसकी नष्ट हो जाती है संसार का बीज अहन्ता अज्ञानियों में दृढ़ है । हे रामजी! अहन्ता से जीव की बुद्धि बुरी हो जाती है इससे वह दुख पाता है । इस दुःख के नाश का उपाय यह है कि सन्तजनों के वचनों की भावना करना और विचार करके हृदय में धारणा-इससे अहन्तारूपी दुःख नष्ट हो जाता है । सन्तों के वचनों का निषेध करना मुक्ति फल का नाश करनेवाला है और अहन्तारूपी वैताल को उपजानेवाला है इसलिये सन्तों की शरण में जाओ और अहन्ता को दूर करो इसमें कुछ खेद नहीं, यह अपने आधीन है । अपने अभाव के चिन्तने में क्या खेद है । हे रामजी! आत्मपद सन्तों की संगति द्वारा बहुत सुगमता से प्राप्त होता है ज्ञानवानों की पृथक् पृथक् सेवा करो और उनके वाक्य विचार करके बुद्धि को तीक्ष्ण करो, जब बुद्धि तीक्ष्ण होगी तब अहन्ता विष की बेलि का नाश करेगी । यह विचार करना चाहिये कि मैं कौन हूँ और `यह जगत् क्या है', इस प्रकार सन्तों के वचनों और शात्रों के वचनों के निर्णय किये से सत्य सत्य होता है और जो असत्य है वह असत्य हो जाता है । सत्य जानकर आत्मा की भावना करना और असत्य जगत् को मृगतृष्णा के जलवत् जानकर भावना त्यागना तो जिनको सुख जानकर पाने की भावना करता था सो दुःखदायी भासते हैं जैसे अधिष्ठान के अज्ञान से मरुस्थल में जल जानकर मृग दौड़ता है तो दुःख पाता है तैसे ही सबका अधिष्ठान आत्मतत्त्व है, सो शुद्धरूप, परमशान्त और परमानन्दस्वरूप है जिसको पाकर फिर दुःखी नहीं होता । हे रामजी! बन्धन का कारण भोग की वासना है पर भोगों से शान्ति नहीं होती, जब सन्तों की संगति होती है तब कल्याण होता है और अनात्म में अहंभाव छूट जाता है, और प्रकार शान्ति नहीं होती । हे रामजी! बालक की नाईं हमारे वचन नहीं हैं, हमारा कहना यथार्थ है, क्योंकि हमको स्वरूप का स्पष्ट भान है । जब अहन्ता मिट जावे तब सुखी हो । इससे अहंता का नाश करो । जब अहंता नास हो तब जानिये कि चैत्य की भावना मिट गई है । हे रामजी! जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय

होता है तब अहंतारूपी अन्धकार नष्ट हो जाता है । ज्ञान तब होता है जब सन्तों का संग और विचार, विषयों से वैराग्य और स्वरूप का अभ्यास करे-इससे स्वरूप की प्राप्ति होती है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे निर्वाणयुतयुक्त्युपदेशो नाम शताधिकद्विपञ्चाशत्तमस्सर्गः ||152||

अनुक्रम

शान्तिस्थितियोगोपदेश

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिन पुरुषों ने ज्ञान से अपना अज्ञान नष्ट नहीं किया उन्होंने करने योग्य कुछ नहीं किया । अज्ञान से पहले अहंभावना होती है तब आगे जगत् भासता है और लोक परलोक की भावना करता है और इसी वासना से जन्म मरण पाता है । हे रामजी! जबतक हृदय में संसार का शब्द अर्थ दृढ़ है तबतक शब्द अर्थ के अभाव की चिन्तना करे और जहाँ जगत् भासता है तहाँ ब्रहम की भावना करे । जब ब्रहमभावना करेगा तब संसार के शब्द अर्थ से रहित होगा और आत्मपद भासेगा । हे रामजी! इस संसार में दो पदार्थ हैं-एक यह लोक और दूसरा परलोक । अज्ञानी इस लोक का उद्यम करते हैं और परलोक का नहीं करते इससे दुःख पाते हैं और तृष्णा नहीं मिटती और विचार वान् पुरुष परलोक का उद्यम करते हैं इससे यहाँ भी शोभा पाते हैं और परलोक में भी सुख पाते हैं और उनके दोनों लोकों के कष्ट मिट जाते हैं । जो इसी लोक का उद्यम करते हैं उनको दोनों ही दुःखदायक होते हैं अर्थात् यहाँ तृष्णा नहीं मिटती और आगे जाकर नरक भोगते हैं । जिन पुरुषो ने आत्मा यत्न किया है उनको वही सिद्ध होता है- और वे सुखी होते हैं और जिसने यत्न नहीं किया वह दुःखी होता है । इससे अहंकार से रहित होने से ही आत्मपद की प्राप्ति है । जबतक परिच्छिन्न अहंकार होता है तबतक दुःखी होता है तब इसका नाम जीव होता है । जो कुछ फुरता है उससे विश्व की उत्पत्ति होती है । जैसे नेत्रों के खोलने से रूप भासता है और नेत्रों के मूँदने से रूप का अभाव हो जाता है, तैसे ही जब अहंता फुरती है तब दृश्य भासता है और जब अहंता का अभाव होता है तब दृश्य का भी अभाव हो जाता है । अहंता अज्ञान से सिद्ध होती है और ज्ञान के उपजे से निवृत्त हो जाती है । हे रामजी! यदि पुरुष अपना प्रयत्न करे और साथही सत्संग करे तो इस संसारसमुद्र से तर जावेगा, और किसी प्रकार नहीं तरता । हे रामजी! युक्ति करके जैसे विष भी अमृत हो जाता है तैसे ही पुरुषार्थ से सिद्धि प्राप्त होती है । हे रामजी! इस जीव को दो रोग हैं-एक यह लोक और दूसरा पर लोक है उनमें दुःख पाता है । जिन पुरुषों ने सन्तों के मिलापरूपी औषध से चिकित्सा की है वे मुक्तरूप हैं और जिन्होंने वह औषध नहीं की वे पुरुष पंडित हों तो भी दुःख पाते हैं । सो औषध क्या है? शम, दम और सत्संग इन साधनों के यत्न से जिसने आत्मपद पाया है वह कल्याणमूर्त्ति है । हे रामजी! चिकित्सा भी यही है । जिसने औषध की वह कृतार्थ हुआ और जिन्होंने न की वे भोग में लम्पट रहे । वे मूर्ख वहाँ पड़ेंगे जहाँ फिर कोई औषध न पावेंगे । इससे , हे रामजी! इन भोगों का त्याग करो और आत्मविचार में सावधान हो रहो-यही औषध है । हे रामजी! जिस पुरुष ने मन नहीं जीता वह मूढ़ है-वह भोगरूपी कीचड़ में मग्न है और आपदा का पात्र है । जैसे समुद्र में नदियाँ प्रवेश करती हैं, तैसे ही उसको आपदा प्राप्त होती है । जिसकी तृष्णा भोग से निवृत्त हुई है और वैराग्य उपजा है वह मुक्त होता है । जैसे जीवन का आदि बालक अवस्था है तैसे ही निर्वाणपद का आदि वैराग्य है । हे रामजी! जैसे दूसरा चन्द्रमा, संकल्पनगर और मृगतृष्णा का जल भ्रम से भासता है तैसे ही यह जगत् भ्रम से भासता है । संसार का बीज अहंता है, जब अहंता उदय होती है तब रूप और अवलोक भासते हैं, इससे यही चिन्तना करो कि मैं नहीं । जब यही भावना करोगे तब शेष जो रहेगा सो तुम्हारा शान्तरूप है, जिसमें आकाश भी शून्य है और अहं के उत्थान से रहित जड़ अजड़ केवल आत्मत्वमात्र है । जड़ता का उसमें अभाव है इससे अजड़ है और केवल ज्ञानमात्र है । उसमें विश्व ऐसे है जैसे जल में तरंग, पवन में स्पन्द और आकाश में शून्यता । आत्मा से भिन्न कुछ नहीं जो आत्मा से कुछ भिन्न होता तो प्रलय में नाश हो जाता पर आत्मा तो प्रलयकाल में भी

रहता है । जैसे सूर्य की किरणों में सदा जलाभास रहता है तैसे ही आत्मा में विश्व का चमत्कार रहता है और जैसे स्वप्नसृष्टि अनुभवरूप होती है तैसे ही यह जाग्रत्‌सृष्टि भी अनुभव है । आत्मा भीतर बाहर से रहित, अद्वैत, अजर, अमर, चैत्य से रहित, चैतन्य और सर्व शब्द अर्थ का अधिष्ठान है, फुरने से दूसरा भासता है और फुरना न फुरना वही है। जैसे चलना और ठहरना दोनों पवन के रूप हैं-जब चलता है तब भासता है और जब ठहरता है तब नहीं भासता, तैसे ही जब चित्तशक्ति फुरती है तब विश्वरूप होकर भासती है और जब अफुर होती है तब केवलमात्र पद रहता है सो निराभास, अविनाशी, निर्विकल्प और सबका अपना आप है और सत्य, असत्य, जड़, चैतन्य आदिक शब्द अर्थ सब उसी अधिष्ठानसत्ता में फुरते हैं । इससे उसी अपने स्वरूप में स्थित हो रहो जो परमार्थसत्ता आत्मतत्त्व अपने स्वभाव में स्थित और अहं त्वं से रहित केवल आकाशरूप सबका अधिष्ठान है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शान्तिस्थितियोगोपदेशो नाम शताधिकत्रिपञ्चाशत्तमस्सर्गः ||153||

अनुक्रम

परमार्थयोगोपदेश

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिनको दुःख सुख चलाते हैं और जो इन्द्रियों के इष्ट में सुखी और अनिष्ट में दुःखी होते हैं और रागद्वेष के अधीन बर्तते हैं उनको ऐसे जानो कि वे नष्ट हुए हैं । जिनका पुरुष प्रयत्न नष्ट हुआ है वे बारम्बार जन्म पावेंगे और जिनको सुख दुःख नहीं चलाते उनको अविनाशी जानो । वे जन्ममरण की फाँसी से मुक्त हुए हैं और उनको शास्त्र का उपदेश नहीं है । हे रामजी! रागद्वेष तब फुरता है जब मन में इच्छा होती है और इच्छा तब होती है जब संसार की सत्यता दृढ़ होती है जिसको असत्य जानता है उसको बुद्धि नहीं ग्रहण करती और इच्छा भी नहीं होती और जिसको सत्य जानता है उसमें बुद्धि दौड़ती है ।हे रामजी! अज्ञानी को संसार सत्य भासता है इससे वह दुःख पाता है । जब वह शान्तपद का यत्न करे तब दुःख से मुक्त हो । जिससे अहं, त्वं, जगत् ब्रह्म आदि शब्द कोई नहीं और जो केवल चिन्मात्र आकाशरूप है उसमें ये शब्द कैसे हों? ये शब्द विचार के निमित्त कहे हैं पर वास्तव में शब्द कोई नहीं अद्वैत और चैत्य से रहित चिन्मात्र है । जब सर्व शब्दों का बोध किया तब शेष शान्तपद रहता है, इसी से आत्मत्वमात्र कहा है और जगत् फुरने से उसी को भासता है । उस जगत् में जहाँ ज्ञप्ति जाती है उसका ज्ञान होता है । हे रामजी! एक अधिष्ठान ज्ञान है और दूसरा ज्ञप्ति ज्ञान है, अधिष्ठान ज्ञान सर्वज्ञ ईश्वर को है और ज्ञप्तिज्ञान जीव को है । एक लिंग शरीर का जिसको अभिमान है वह जीव है और सर्वलिंग शरीरों का अभिमानी ईश्वर है । जहाँ इस जीव की ज्ञप्ति पहुँचती है उसको जानना है । जैसे शय्या पर दो पुरुष सोये हों और एक को स्वप्ना आवे उसमें मेघ गर्जते हैं और दूसरा उस मेघ का शब्द नहीं सुनता, क्योंकि ज्ञप्ति उसको नहीं आई परन्तु मेघ तो उसके स्वप्न में है । जैसे सिद्ध विचरते हैं और जीव को दृष्टि नहीं आते, क्योंकि इसकी ज्ञप्ति नहीं जाती और सब सृष्टि बसती है तिसका ज्ञान ईश्वर को है सृष्टि भी संकल्पमात्र है, कुछ भी नहीं और भ्रम से भासती है । जैसे बादल में हाथी, घोड़े, मनुष्य आदिक विकार भासते हैं वे भ्रान्तिमात्र हैं तैसे ही आत्मा के अज्ञान से यह सृष्टि नाना प्रकार की भासती है । हे रामजी! यह आश्चर्य है कि आत्मा में अहंकार का उत्थान होता है कि मैं हूँ और अपने को वर्णाश्रमी मानता है पर विचार करके देखिये तो अहं कुछ वस्तु नहीं सिद्ध होती और अहं अहं फुरती है । यह आश्चर्य है कि भूत कहाँ से उठा है और शुद्ध आत्मब्रह्म में कैसे हुआ? अनहोते अहंकार ने तुमको मोहित किया है इसके त्यागने में तो कुछ यत्न नहीं इसका त्याग करो । हे रामजी! यह मिथ्या संकल्प उठा है । जब अहंकार का उत्थान होता है तब जगत होता है- और जब अहन्ता मिट जाती है तब जगत् का भी अभाव हो जाता है, क्योंकि कुछ बना नहीं भ्रममात्र है । जैसे संकल्पनगर और स्वप्न की सृष्टि भ्रममात्र है तैसे ही यह विश्व भी भ्रममात्र है । कुछ बना नहीं और आत्मतत्त्व है-भिन्न नहीं । जैसे पवन के दो रूप हैं चलता है तो भी पवन हैं और ठहरता है तो भी पवन हैं, तैसे ही विश्व भी आत्म स्वरूप है जैसे पवन चलता है तब भासता है और ठहर जाता है तब नहीं भासता, तैसे ही चित्त चैत्यशक्ति का चमत्कार है, जब फुरता है तब विश्व भासता है पर तो भी चिद्घन है और जब ठहर जाता है तब विश्व नहीं भासता परन्तु आत्मा सदा एकरस है । जैसे जल में तरंग और सुवर्ण में भूषण हैं सो भिन्न नहीं, तैसे ही आत्मा में विश्व कुछ हुआ नहीं-आत्मस्वरूप ही है । ज्ञप्ति भी ब्रह्म है और ज्ञप्ति में फुरा विश्व भी ब्रह्म है तो विधि निषेध और हर्ष, शोक किसका करें? सब वही है । हे रामजी! संकल्प को स्थिर करके देखो कि सब तुम्हारा ही स्वरूप है । जैसे मनुष्य शयन करता है तो उसको स्वप्नसृष्टि भासती है और जब जागता है तब देखता है कि सब मेरा ही स्वरूप

है, तैसे ही जाग्रत विश्व भी तुम्हारा स्वरूप है । जैसे समुद्र में तरंग उठते हैं सो जलस्वरूप है तैसे ही विश्व आत्मस्वरूप है और जैसे चितेरा काष्ठ में कल्पना करता है कि इतनी पुतलियाँ निकलेंगी और जैसे मृत्तिका में कुम्हार घटादिक कल्पता है कि इसमें इतने पात्र बनेंगे पर काष्ठ और मृत्तिका में तो कुछ नहीं, ज्यों का त्यों काष्ठ है और ज्यों की त्यों मृत्तिका है परन्तु उनके मन में आकार की कल्पना है, तैसे ही आत्मा में संसाररूपी पुतलियाँ मन कल्पता है जब मन का संकल्प निवृत्त हो तब ज्यों का त्यों आत्मपद भासे । जैसे तरंग जलरूप है, जिसको जल का ज्ञान है तो तरंग भी जलरूप जानता है और जिसको जल का ज्ञाननहीं सो भिन्न भिन्न तरंग के आकार देखता है, तैसे ही जब निस्संकल्प होकर स्वरूप को देखे तब फुरने में भी आत्मसत्ता भासेगी । अहंत्वमादिक सब जगत् ब्रह्मस्वरूप ही है तो भ्रम कैसे हो और किसको हो । सब विश्व आत्मस्वरूप है और आत्मा निरालम्ब अर्थात् चैत्य और अहंकार से रहित केवल आकाशरूप है । जब तुम उसमें स्थित होगे तब नाना प्रकार की भावना मिट जावेगी, क्योंकि नाना प्रकार की भावना जगत् में फुरती है । जगत् का बीज अहन्ता है, जब अहन्ता नष्ट हो तब जगत् का भी अभाव हो जावेगा । हे रामजी! अहन्ता का फुरना ही बन्धन है और निरहंकार होना ही मोक्ष है । एक चित्तबोध है और दूसरा ब्रह्मबोध है-चित्तबोध जगत् है और ब्रह्मबोध मोक्ष है । चित्तबोध अहन्ता का नाम है, जबतक चित्तबोध फुरता है तब तक संसार है और जब चित्त का अभाव होता है तब मुक्त होता है । इस चित्त के अभाव का नाम ब्रह्म, बोध है । हे रामजी! जैसे पवन फुरता है तैसे ही ब्रह्म में चित्तबोध है । और जैसे पवन ठहर जाता है तैसे ही चित्त का ठहरना ब्रह्मबोध है । जैसे फुर अफुर दोनों पवन ही हैं तैसे ही चित्तबोध और ब्रह्मबोध ब्रह्म ही है-भिन्न कुछ नहीं । हमको तो ब्रह्म ही भासता है जो चैतन्यमात्र और शान्तरूप अपने स्वभाव में स्थित है । जिसको अधिष्ठान का ज्ञान होता है उसको विवर्त भी वही रूप भासता है और जिसको अधिष्ठान का ज्ञान नहीं होता उसको भिन्न भिन्न जगत् भासता है । जैसे एक बीज में पत्र डाल, फूल और फल भासते हैं पर जिसको बीज का ज्ञान नहीं उसको भिन्न भिन्न भासते हैं । हे रामजी! हमको अधिष्ठान आत्मतत्त्व का ज्ञान है इससे सब विश्व आत्म स्वरूप भासता है और अज्ञानी को नाना प्रकार का विश्व और जन्म मरण भासते हैं । हे रामजी! सब शब्द आत्मतत्व में फुरते हैं और सबका अधिष्ठान निराकार निर्विकार, शुद्ध आत्मा सबका अपना आप है, इससे सब विश्व आकाशरूप है कुछ भिन्न नहीं । जैसे तरंग जलरूप है तैसे ही विश्व आत्मस्वरूप है चित्त जो फुरता है उसके अनुभव करनेवाली चैतन्य सत्ता है सो ही ब्रह्म है और तुम्हारा स्वरूप भी वही हैं, इससे अहं त्वं आदिक जगत् सब ब्रह्मरूप है तुम संशय त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित हो । अगे तुमसे जो द्वैत अद्वैत कहा है वह सब उपदेशमात्र है एकचित्त की वृत्ति को स्थित करके देखो सब ब्रह्म है भिन्न कुछ नहीं तो निषेध किसका कीजिये? हे रामजी! चित्त की दो वृत्ति ज्ञानवान् कहते हैं-एक मोक्षरूप है और दूसरी बन्धरूप है जो वृत्ति स्वरूप की ओर फुरती है सो मोक्षरूप और जो दृश्य की ओर फुरती है सो बन्ध रूप है । जो तुमको शुद्ध भासती हो वही करो । जो दृष्टा है सो दृश्य नहीं होता और जो दृश्य है वह दृष्टा नहीं होता पर आत्मा तो अद्वैत है इससे दृष्टा में दृश्य पदार्थ कोई नहीं । तुम क्यों दृश्य की ओर फुरते हो और अनहोती दृश्य को ग्रहण करते हो? दृष्टा भी तुम्हारा नाम दृश्य से होता है । जब दृश्य का अभाव जाना तब अवाच्यपद है उसको वाणी से कहा नहीं जाता । हे रामजी! जैसे अंगी और अंग वाले, आकाश और शून्यता, जल और द्रवता और बरफ और शीतलता में कुछ भेद नहीं तैसे ही ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं । कोई जगत् कहे अथवा ब्रह्म कहे एक ही पर्याय है, जगत् ही ब्रह्म है और ब्रह्म ही जगत् है । इससे आत्मपद में स्थित हो रहो, भ्रम करके जो आपको कुछ और

मानते हो उसको त्यागकर ब्रह्म ही की भावना करो और आपको मनुष्य कदाचित् न जानो जो आपको मनुष्य जानोगे तो यह निश्चय अधोगति को प्राप्त करनेवाला है इससे अपने स्वरूप में स्थित हो रहो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमार्थयोगोपदेशो नाम शताधिकचतुःपञ्चाशत्तमस्सर्गः ||154||

अनुक्रम

परमार्थयोगोपदेश

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब देश से देशान्तर को वृत्ति जाती है तो उसके मध्य जो संवित्ृतत्त्व है उसको जो अनुभव करता है सो तुम्हारा स्वरूप है उसमें स्थित हो रहो जैसी चेष्टा आवे तैसी करो । देखो, सुनो, स्पर्श करो, गन्ध लो, बोलो, चलो, हँसो, सब क्रिया करो परन्तु इनके जाननेवाली जो अनुभवसत्ता है उसी में स्थित हो रहो । यह जाग्रत में सुषुप्त है । चेष्टा शुभ करो और हृदय में फुरने से रहित शिलावत् हो रहो हे रामजी! तुम्हारा स्वरूप निराभास, निर्मल और शान्तरूप है जैसे सुमेरु पर्वत है तैसे ही हो रहो । यह दृश्य अज्ञान से भासता है पर तमरूप है और आत्मा सदा प्रकाशरूप है, उस प्रकाश में अज्ञानी को तम भासता है । जैसे सूर्य सदा प्रकाशरूप है पर उलूक को नहीं भासता और अज्ञान करके तम ही भासता है तैसे ही अज्ञानी को जो अविद्या जगत् भासता है सो अविचार से सिद्ध है । अविद्या से इसकी विपर्यय दृष्टि हुई है- पर इसका वास्तवस्वरूप निर्विकार है अर्थात् जायते, अस्ति, वर्द्धते, परिणमते, विपक्षीयते, नश्यते इन षट् विकारों से रहित है पर उसको विकारी जानता है, आत्मा निर्विकार है पर उसको साकार जानता है, आत्मा आनन्दरूप है पर उसको दुःखी है, आत्मा शान्तरूप है पर उसको अशान्त जानता है, आत्मा महत् है पर उसको लघु जानता है आत्मा पुरातन है पर उसको उपजा मानता है, आत्मा सर्वव्यापक है पर उसको परिच्छिन्न मानता है, आत्मा नित्य है पर उसको अनित्य देखता है, आत्मा चैत्य से रहित शुद्ध चिन्मात्र है पर यह उसे चैत्यसंयुक्त देखता है, आत्मा चैतन्य है यह उसे जड़ देखता है, आत्मा अहं से रहित सदा अपने स्वभाव में स्थित है और यह अनात्म अहंकार में अहं प्रतीति करता है और आत्मा में अनात्मभावना करता है और अनात्मा में आत्म भावना करता है, आत्मा निरवयव है उसको यह अवयवी देखता है, आत्मा अक्रिय है उसको यह सक्रिय देखता है, आत्मा निरामय है पर उसको रोगी देखता है, आत्मा निष्कलंक है पर उसको कलंकसहित देखता है, आत्मा सदा प्रत्यक्ष है उसको परोक्ष जानता है और जो परोक्ष है उसको प्रत्यक्ष जानता है । हे रामजी! यह सब विकार आत्मा में अज्ञान से देखता है परमात्मा शुद्ध और सूक्ष्म से सूक्ष्म, स्थूल से स्थूल, बड़े से बड़ा और लघु से लघु है और सर्वशब्द और अर्थ का अधिष्ठान है । हे रामजी! ब्रह्मरूपी एक डब्बा है उसमें जगत्ृरूपी रत्न है । पर्वत और वन सहित भी जगत् दृष्ट आता है परन्तु आत्मा के निकट रुई के रोम सा लघु है आत्मरूपी वन है उसमें संसाररूपी मञ्जरी उपजी है । पाँचों तत्व पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश उसके पत्र हैं उनसे शोभती है सो अहंता के उदय हुए होती है और अहन्ता के नाश हुए नष्ट होती है । आत्मरूपी समुद्र है उसमें जगत्ृरूपी तरंग हैं सो उठते भी है और लीन भी हो जाते हैं । आत्माकाश में संसार भ्रममात्र है और आकाश वृक्ष की नाईं है और आत्मा के प्रमाद से भासता है । हे रामजी! मायारूपी चन्द्रमा की किरणें जगत् है और नेतिशक्ति नृत्य करनेवाली है सो तीनों अविचार सिद्ध हैं और विचार किये से शान्त हो जाते हैं- जैसे दीपक हाथ में लेकर अन्धकार देखिये तो दृष्ट नहीं आता तैसे ही विचार करके देखिये तो जगत् का अभाव हो जाता है और केवल शुद्ध आत्मा ही प्रत्यक्ष भासता है । हे रामजी! जगत् कुछ बना नहीं-जैसे किसी ने बरफ कही और किसी ने शीतलता कही तो उसमें भेद नहीं, तैसे ही आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं जो भेद भासता है सो भ्रममात्र है । जैसे तागे और पट में भेद कुछ नहीं तैसे ही आत्मा और जगत् है । हे रामजी! आत्मरूपी पट में जगत्ृरूपी चित्र पुतलियाँ हैं और आत्मरूपी समुद्र में जगत् रूपी तरंग हैं सो जलरूप हैं, तैसे ही आत्मा और जगत् में भेद कुछ नहीं-आत्मा ही है आत्मा से भिन्न कुछ नहीं बना ।

जिससे सर्व पदार्थ सिद्ध होते हैं, जिससे सर्व क्रिया सिद्ध होती हैं और जो अनुभवरूप सदा अप्रौढ़ है उसको प्रौढ़ जानना ही मूर्खता है । हे रामजी! यह विश्व तुम्हारा ही स्वरूप है तुम जागकर देखो तुमही एक हो और स्वच्छ आकाश, सूक्ष्म, प्रत्यक्ष ज्योति अपने आपमें स्थित है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमार्थयोगोपदेशो नाम शताधिकपञ्चपञ्चाशत्तमस्सर्गः ||155||

अनुक्रम

इच्छानिषेधयोगोपदेश

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे जल में लहर और तरंग उठते हैं सो जलरूप हैं तैसे ही आत्मा में रूप, अवलोक और मनस्कार फुरते हैं सो सब आत्मरूप हैं-भिन्न नहीं । हे रामजी! यह शुद्ध परमात्मा का चमत्कार है और आत्मा दृश्य से रहित, शुद्ध, चिन्मात्र निर्मल और अद्वैत है उसमें जगत् कुछ नहीं बना । हमको तो सदा वही भासता है-जगत् कुछ नहीं भासता । जैसे कोई आकाश में नगर कल्पता है और उसमें सब रचना देखता है सो उसके हृदय में दृढ़ हो जाती है और जो संकल्प की सृष्टि को मिथ्या जानता है उसको शून्या काश ही भासता है । तैसे ही यह विश्व मूर्ख के हृदय में दृढ़ होता है और ज्ञानवान् को आत्मरूप ही भासता है । जैसे मिट्टी के खिलौने की सेना होती है तो जिसको मिट्टी का ज्ञान है वह उसमें राग द्वेष नहीं करता और बालक मिट्टी के ज्ञान से रहित है इससे वह उसमें राग द्वेष करता है, तैसे ही ज्ञानवान् इस जगत् में राग द्वेष नहीं करते और अज्ञानी राग द्वेष करते हैं । जैसे खिलौने में सारभूत मृत्तिका होती है तैसे ही इस जगत् में सारभूत चैतन्य आत्मा है । जो कुछ पदार्थ भासते हैं वे आत्मा के विवर्त्त है और मिथ्या ही भ्रम से सिद्ध हुए हैं । जो वस्तु मिथ्या हो उसमें सुख के निमित्त इच्छा करना ही मूर्खता है । हे रामजी! हमको तो इच्छा कुछ नहीं, क्योंकि हमको जगत् मृगतृष्णा के जलवत् भासता है किसकी इच्छा करें । जिसमें सत्य प्रतीति होती है उसमें इच्छा भी होती है और जो सत्य ही न भासे तो इच्छा कैसे हो? हे रामजी! इच्छा ही बन्धन है और इच्छा से होने का नाम मुक्ति है । इससे ज्ञानवान् को इच्छा कुछ नहीं रहती उसकी अनिच्छित ही चेष्टा होती है । जैसे सूखे बाँस के भीतर बाहर शून्य होता है और संवेदन उसको कुछ नहीं फुरती तैसे ही ज्ञानवान् के अन्दर शान्ति होती है, अन्तर में संकल्प कोई नहीं उठता और बाहर भी कोई उपाधि नहीं निःसंकल्प निरुपाधि उसकी चेष्टा होती है । हे रामजी! जिस पुरुष के हृदय से संसार का रस सूख गया है वह संसार समुद्र से पार हुआ है और जिसका रस नहीं सूखा उसको रागद्वेष फुरते हैं उसे संसार बन्धन में जानो हे रामजी! मैं तुमसे ऐसी समाधि कहता हूँ कि जो सुख से प्राप्त हो और जिससे मुक्त हो । सर्व इच्छा से रहित होना ही परमसमाधि है । जिस पुरुष को इच्छा फुरती है उसको उपदेश भी नहीं लगता । जैसे आरसी के ऊपर मोती नहीं ठहरता तैसे ही उसके हृदय में उपदेश नहीं ठहरता । इच्छा ही जीव को दीन करती है और इच्छा से रहित हुआ शान्तरूप होता है और फिर शान्ति के निमित्त कर्तव्य कुछ नहीं रहता । हे रामजी! हम तो निरिच्छित हैं इससे हमको भीतर बाहर शान्ति है और हमको कर्तव्य करने योग्य कुछ नहीं-यह सब प्रारब्ध के अनुसार रागद्वेष से रहित चेष्टा होती है और बोलते हैं परन्तु बाँसुरी की नाईं । जैसे बाँसुरी अहंकार से रहित बोलती है तैसे ही ज्ञानवान् अहंकार से रहित हैं और स्वाद को ग्रहण करते हैं । जैसे करछी सब व्यञ्जनों में डाली जाती है और उसी द्वारा सब व्यञ्जन निकलते हैं परन्तु उसको कुछ रागद्वेष नहीं फुरता , तैसे ही ज्ञानवान् स्वाद लेता है । जैसे पवन भली बुरी गन्ध को लेता परन्तु रागद्वेष से रहित है- तैसे ही ज्ञानवान् रागद्वेष की संवेदन से रहित गन्ध को लेता है और इसी प्रकार सर्व इन्द्रियों की चेष्टा करता है परन्तु इच्छा से रहित होता है इसी से परमसुखरूप है । जिसकी चेष्टा इच्छासहित है वह परमदुःखी है । हे रामजी! जिस पुरुष को भोग रस नहीं देते वही सुखी है और जिसको रस देते हैं और जिसकी राग से तृष्णा बढ़ती जाती उसको ऐसे जानो जैसे किसी के मस्तक पर अग्नि लगे और उसपर तृण बुझाने के निमित्त डाले तो वह बुझती नहीं बल्कि बढ़ती जाती है, तैसे ही विषयों की इच्छा भोगने से तृप्त नहीं होगी । इच्छा ही बन्धन है और इच्छा की निवृत्ति का नाम मोक्ष

है । हे रामजी! संसाररूपी विष का वृक्ष है और उसका बीज इच्छा है जिसकी इच्छा बढ़ती जाती है उसका संसार बढ़ता जाता है और उससे वह बारम्बार जन्म पाता है । हे रामजी! ऐसा सुख ब्रह्मा के लोक में भी नहीं जैसा सुख इच्छा की निवृत्ति में है और ऐसा दुःख नरक में भी नहीं जैसा दुःख इच्छा के उपजाने में है । इच्छा के नाश का नाम मोक्ष है और इच्छा के उपजाने का नाम बन्धन है । जिस पुरुष को इच्छा उत्पन्न होती है वह दुःख पाता है और संसाररूपी गढ़े और खत्ते में पड़ता है इच्छारूपी विष की बेल है उसको समतारूपी अग्नि से जलाओ । सम्यक्‌्दर्शन से जलाये बिना बड़ा दुःख देगी और बढ़ती जावेगी । हे रामजी! जिस पुरुष ने इच्छा के दूर करने का उपाय नहीं किया उसने अन्धे कूप में प्रवेश किया है । शास्त्र का श्रवण और तप, दान, यज्ञ इसी निमित्त है कि किसी प्रकार इच्छा निवृत्ति हो जो एक बार निवृत्त न कर सको तो शनैः शनैः निवृत्त करो । हे रामजी! यह विष की बेलि बढ़ी हुई दुःख देती है । जो पुरुष शास्त्रों को पढ़ता और इच्छा को बढ़ाता है वह मानो दीपक हाथ में लेकर कूप में गिरता है इच्छा रूपी कँटिआरी का वृक्ष है जिसमें सर्वदा कण्टक लगे रहते हैं-उसमें कदाचित् सुख नहीं जो पुरुष काँटे की शय्या पर शयन करके सुखी हुआ चाहे तो नहीं होता, तैसे ही संसार से कोई सुख पाया चाहे तो कदाचित् न होगा । जिसमें इच्छा निवृत्त हो वही उपाय किया चाहिये । इच्छा के निवृत्त होने में सुख है और इच्छा के उत्पन्न होने में बड़ा दुःख है । हे रामजी! जो अनिच्छित पद में स्थित हुआ है उसको यदि एक क्षण भी इच्छा उपजती है तो वह रुदन करता है । जैसे चोर से लूटा रूदन करता है तैसे ही वह रुदन और पश्चाताप करता है और उसके नाश करने का उपाय करता है । हे रामजी! इच्छारूपी क्षेत्र में रागद्वेषरूपी विष की बेलि है । जो पुरुष उसके दूर करने का उपाय नहीं करता वह मनुष्यों में पशु है । यह इच्छारूपी विष का वृक्ष बढ़ा हुआ नाश का कारण है । इससे तुम इसका नाश करो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे इच्छानिषेधयोगोपदेशो नाम शताधिकषट्पञ्चाशत्तमस्सर्गः ||156||

अनुक्रम

जगदुपदेश

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इच्छारूपी विष के नाश करने का उपाय तुमसे आगे भी कहा है और अब फिर स्पष्ट करके कहता हूँ । इच्छा त्याग करने के योग्य संसार है, यदि आत्म सत्ता से भिन्न कीजिये तो मिथ्या है उसमें क्या इच्छा करनी है और जो आत्मा की ओर देखिये तो सर्व आत्मा ही है तो क्यों इच्छा करनी, इच्छा दूसरे में होती है पर दूसरा तो कुछ है ही नहीं तो इच्छा किसकी कीजिये? हे रामजी! दृष्टा और दृश्य भी मिथ्या है, दृष्टा इन्द्रियाँ और दृश्य विषय, ग्राहक इन्द्रियाँ और ग्राह्य विषय अविचार सिद्ध हैं भ्रम करके भासते हैं आत्मा में कोई नहीं । जैसे स्व्प्ने में भ्रम से रूप भासते हैं तैसे ही यह ग्राह्य-ग्राहक भ्रम भासते हैं और सुख दुःख भी इन्हीं से होता है आत्मा में कोई नहीं । हे रामजी! दृष्टा, दर्शन और दृश्य तीनों ब्रह्म में कल्पित हैं और वास्तव में ब्रह्म ही है, चिरकाल से हम खोज रहे हैं परन्तु द्वैत हमको दृष्टि नहीं आता, एक ब्रह्मसत्ता ही ज्यों की त्यों भासती है जो निराभास, फुरने से रहित और ज्ञानरूप है, आकाश से भी सूक्ष्म है और सर्व जगत् भी वही है-सो मैं हूँ । हे रामजी! जैसे जल में तरंग हो आकाश में शून्या, पवन में स्पन्द और अग्नि में उष्णता है सो सबही अनन्यरूप है तैसे ही आत्मा में जगत् अनन्यरूप है । आत्मा ही विश्वआकार होकर भासता है और कुछ नहीं हुआ । हे रामजी! जो वही है तो इच्छा किसकी करते हो । यह जो मैं मोक्ष उपाय कहता हूँ तो तुम आपको क्यों बन्धन करते हो । बड़ा बन्धन इच्छा ही है जिस पुरुष की इच्छा बढ़ती जाती है वह जगत्रूपी वन का मृग है, उस पशु का संग कदाचित् न करना । मूर्ख का संग बुद्धि को विपर्यय कर डालता है इससे विपर्यय बुद्धि को त्यागकर आत्मपद में स्थित हो रहो । विश्व भी सब तुम्हारा अनुभव है इसका सुख-दुःख विद्यमान भी दीखता है परन्तु आत्मा में भ्रममात्र भासता है-कुछ है नहीं । विश्व भी आनन्दरूप शिव ही है, तुम विचार करके देखो दूसरा तो कुछ नहीं जैसे मृत्तिका में नाना प्रकार की सेना हाथी, घोड़ा आदि होते हैं परन्तु मृत्तिका से भिन्न कुछ नहीं तैसे ही सब विश्व आत्मरूप है, भिन्न नहीं और उसमें कारण कार्यभाव देखना भी मूर्खता है । क्योंकि जो दूसरी वस्तु ही नहीं तो कारण कार्य किसका हो और इच्छा किसकी करते हो? जिस संसार की इच्छा करते हो वह है ही नहीं । जैसे सूर्य की किरणों में जलाभास होता है और सीपी में रूपा भासता है सो दूसरी वस्तु कुछ नहीं अधिष्ठान किरण और सीपी है, तैसे ही अधिष्ठानरूप परमार्थसत्ता ही है । न सुख है, न दुःख है, यह जगत् केवल शिवरूप है । उस शिव चिन्मात्र से मृत्तिका की सेनावत् अन्य कुछ नहीं तो इच्छा कैसे उदय हो? रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! जो सर्व ब्रह्म ही है तो इच्छा अनिच्छा भी भिन्न नहीं? इच्छा उदय हो चाहे न हो । फिर आप कैसे कहते हैं कि इच्छा का त्याग करो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिस पुरुष की ज्ञप्ति जागी है अर्थात् जो ज्ञानरूप आत्मा में जागा है उसको सब ब्रह्म ही है और इच्छा अनिच्छा दोनों तुल्य हैं । इच्छा भी ब्रह्म है और अनिच्छा भी ब्रह्म है । हे रामजी! ज्यों ज्यों ज्ञानसंवित् होती है त्यों त्यों वासना क्षय होती है जैसे सूर्य के उदय हुए रात्रि नष्ट हो जाती है तैसे ही ज्ञान के उपजे से वासना नहीं रहती । हे रामजी! ज्ञानवान् को ग्रहण और त्याग का कर्तव्य नहीं और उसे इच्छा अनिच्छा तुल्य है । यद्यपि ऐसे ही है परन्तु स्वाभाविक ही उसे वासना नहीं रहती । जैसे सूर्य के उदय हुए अन्धकार नहीं रहता तैसे ही आत्मा के साक्षात्कार हुए द्वैतवासना नहीं रहती । ज्यों ज्यों ज्ञानकला जागती है त्यों त्यों द्वैत नाश होता जाता है और द्वैत के निवृत्त होने से वासना भी निवृत्त हो जाती है । हे रामजी! ज्यों ज्यों स्वरूपानन्द उसको प्राप्त होता है त्यों त्यों संसार विरस होता जाता है और जब संसार विरस हो गया तब

वह वासना किसकी करे? हे रामजी! अमृत में इसको विष की भावना हुई थी इससे अमृत विष भासता था पर जब विष की भावना का त्याग हुआ तब अमृत तो आगे ही था सोई हो जाता है तैसे ही जो कुछ तुमको भासता है सो सब ब्रह्मरूपी अमृत ही है । जब उस ब्रह्मरूपी अमृत में अज्ञान से जगत्‌रूपी विष की भावना होती है तब दुःख पाता है और जब संसार की भावना त्यागी तब आनन्दरूप ही है और उसको करना न करना दोनों तुल्य हैं । यद्यपि ज्ञानवान् में इच्छा दृष्टि आती है तो भी उसके निश्चय में नहीं उसकी इच्छा भी अनिच्छा ही है क्योंकि उसके हृदय में संसार की भावना नहीं तो इच्छा किसकी रहे? हे रामजी! यह संसार है नहीं, हमको तो आकाशरूप भासता है । जैसे और के मनोराज में आने जाने का खेद नहीं होता तैसे ही यह जगत् हमको और को चिन्तनावत् है । जैसे किसी पुरुष ने मनोराज से मार्ग में कोई स्थान रचकर उसमें किवाड़ लगाये हों और नाना प्रकार का प्रपञ्च रचा हो तो दूसरे पुरुष को उसमें जाने के लिये कोई नहीं रोकता और न कोई किवाड़ हैं, न कोई पदार्थ है, उसको शून्यमार्ग का निश्चय होता है, तैसे ही हमको तो सब प्रपञ्च शून्य ही भासता है । अज्ञानी के हृदय में हमारी चेष्टा है पर हमको ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं भासता । हे रामजी! जिसको जगत् ही न भासे उसको इच्छा किसकी हो? जिसके हृदय में संसार की सत्यता है उसको इच्छा भी फुरती है और रागदेष भी उठता है । जिसको रागद्वेष उठता है तो जानिये कि संसार सत्ता उसके हृदय में स्थित है और जिसको नाना पदार्थ सहित संसार सत्य भासता है सो मूर्ख है और वह अज्ञान निद्रा में सोया हुआ है । जैसे निद्रादोष से कोई स्वप्न में अपना मरण देखता है तैसे ही जिसको यह जगत् सत्य भासता है सो निद्रा में सोया है । हे रामजी! मैंने बहुत प्रकार के स्थान देखे हैं जिनमें रोग और औषध भी नाना प्रकार के हैं परन्तु इच्छारूपी छुरी के घाव की औषध नहीं दृष्टि आई । वह जप,तप, पाठ, यज्ञ, दान और तीर्थ से निवृत्त नहीं होती और जितने संसार के पदार्थ हैं उनसे भी इच्छारूपी रोग नष्ट नहीं होता, जब आत्मरूपी औषध की जावे तब ही नाश होता है अन्यथा किसी प्रकार यह रोग नहीं जाता । हे रामजी! जिस पुरुष को ज्ञान प्राप्त होता है उसकी इच्छा स्वाभाविक ही निवृत्त हो जाती है और आत्मज्ञान बिना अनेक यत्न से भी न जावेगी । जैसे स्वप्न की वासना जागे बिना नहीं जाती और अनेक उपाय करिये तो भी दूर नहीं होती । हे रामजी! ज्यों-ज्यों वासना क्षीण होती है त्यों-त्यों सुख की प्राप्ति होती है और ज्यों-ज्यों वासना की अधिकता है त्यों-त्यों दुःख अधिक हैं । यह आश्चर्य है कि मिथ्या संसार सत्य हो भासता है । जैसे बालक को वृक्ष में वैताल हो भासता है और उससे वह भय पाता है पर वह है नहीं, तैसे ही मूर्खता से आत्मा में संसार कल्पना है उससे जीव दुःखी होता है । हे रामजी! स्थावर-जंगम जो कुछ जगत् भासता है सो सब ब्रह्मरूप है, ब्रह्म से भिन्न नहीं पर भ्रमसे भिन्न- भिन्न हो भासता है । जैसे आकाश में शून्यता, जल में द्रवता और सत्य में सत्यता ही है, तैसे ही आत्मा में जगत् है सो न सत्य है और न असत्य है- आत्मा अनिर्वाच्य है! हे रामजी! दूसरा कुछ बना नहीं तो क्या कहिये? केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है सो सबका अपना आप वास्तवरूप है । जब उसका साक्षात्कार होता है तब अहं रूप भ्रम मिट जाता है । जैसे सूर्य के उदय हुए अन्धकार का अभाव हो जाता है तैसे ही आत्मा के साक्षात्कार हुए अनात्म अभिमानरूपी अन्धकार का अभाव हो जाता है और परम निर्वाण भासता है । उसको एक और दो भी नहीं कह सकते, वह केवल शान्तरूप परम शिव है । जैसे आकाश में नीलता भासती है तैसे ही आत्मा में जगत् भासता है । हे रामजी! जिन्होंने ऐसे निश्चय किया है उनको इच्छा अनिच्छा दोनों तुल्य हैं तो भी मेरे निश्चय में यह है कि इच्छा के त्याग में सुख है । जिसकी इच्छा दिन दिन घटती जावे और आत्मा की ओर आवे उसको ज्ञानवान् मोक्षभागी कहते हैं, क्योंकि संसार भ्रम सिद्ध है और अपनी ही

कल्पना जगत्ूरूप होकर भासती है, विचार किये से कुछ नहीं निकलता संसार के उदय होने से आत्मा को कुछ आनन्द नहीं और नाश होने से खेद नहीं होता, क्योंकि कुछ भिन्न नहीं । जैसे समुद्र में तरंग उपजते और विनशते हैं तो जल को हर्ष और शोक कुछ नहीं होता, क्योंकि वे जल से भिन्न नहीं है, तैसे ही सम्पूर्ण जगत् ब्रह्मस्वरूप है तो इच्छा क्या और अनिच्छा क्या? हे रामजी! आदि जो परमात्मा से चित्तशक्ति फुरी है उसमें जब अहं हुआ तब स्वरूप का प्रमाद हुआ और वही चित्तशक्ति मनरूप हुई, फिर आगे देह इन्द्रियाँ हुई और अज्ञान से मिथ्याभ्रम उदय हुआ इसी प्रकार अपने साथ मिथ्या शरीर देखता है । जैसे जल जड़ता से बरफरूप हो जाता है तैसे ही चित्तसंवित् प्रमाद की दृढ़ता से मन, इन्द्रियाँ, देह-रूप होता है । जैसे कोई स्वप्न में अपना मरना देखता है तैसे ही अपने साथ जीव शरीर को देखता है । जब चित्त शक्ति नष्ट होती है तब शरीर कहाँ-और मन कहाँ यह कोई नहीं भासता? जैसे स्वप्न में भ्रम से शरीरादिक भासते हैं तैसे ही इस जगत् को भी जानो कि मिथ्याभ्रम से उदय हुए हैं । जब अपने स्वरूप की ओर आवे तब सबही भ्रम मिट जाते हैं । हे रामजी! जैसे भ्रम से आकाश में नीलता भासती है तैसे ही विश्व भी अनहोता ही भ्रम से भासता है, आत्मा में कुछ आरम्भ और परिणाम करके नहीं बना-वही स्वरूप है । जैसे आकाश और शून्यता और पवन और स्पन्द में भेद नहीं, तैसे ही आत्मा और जगत् में भेद नहीं । जैसे स्वप्न की सृष्टि अनुभवरूप है-कुछ भिन्न नहीं, तैसे ही जगत् और आत्मा अनुभव से कुछ भिन्न नहीं । हे रामजी! चैतन्य आकाश परम शान्तरूप है, उसमें देह और इन्द्रियाँ भ्रम से भासती हैं और क्रिया, काल, पदार्थ सब भ्रममात्र हैं जब आत्म स्वरूप में जागकर देखोगे तब द्वैतभ्रम निवृत्त हो जावेगा और केवल अद्वैत आत्मा ही भासेगा- दृश्य का अभाव हो जावेगा । यह पृथ्वी आदिक तत्त्व जो भासते हैं सो अविद्यमान हैं और इनकी प्रतिभा मिथ्या उदय हुई है । जैसे स्वप्न में अनहोते पृथ्वी आदि तत्त्व भासते हैं परन्तु हैं नहीं तैसे ही आत्मा में यह जगत् भासता है । हे रामजी! पृथ्वी, दीवार, कीट, पर्वत आदि प्रपञ्च आकाशरूप हैं तो ग्रहण-त्याग किसका हो? आकाशरूपी दीवार परसंकल्प ने चित्र रचे हैं और चेतना है इससे विश्व संकल्प मात्र है और जैसा-जैसा निश्चय होता है तैसी सृष्टि भासती है । यदि कुछ बना होता तो और का और न भासता, इससे कुछ बना नहीं जैसा संकल्प होता है तैसा ही आगे रूप हो भासता है । हे रामजी! सिद्धों के पास एक चूर्ण होता है उससे वे जो चाहते हैं सो करते हैं पर्वत को आकाश और आकाश को पर्वत करते हैं-वह चूर्ण मैं तुमसे कहता हूँ । जब चित्तरूपी सिद्धसंकल्परूपी चूर्ण से फुरता है तब आत्मरूपी आकाश में पर्वत हो भासता हैं और जब चित्ूरूपी सिद्ध का संकल्प उलटता है तब पर्वत भी आकाश रूप हो भासता है । जैसे स्वप्न में संकल्प फुरता है तब अनुभव में पर्वत आदिक पदार्थ भासि आते हैं और जब संकल्प से जागता है तब स्वप्न के पर्वत आकाशरूप हो जाते हैं तो आकाश ही पर्वत रूप हुआ और पर्वत ही आकाशरूप होता है, तैसे ही हे रामजी! यह सृष्टि कुछ बनी नहीं संकल्पमात्र है, जैसा संकल्प होता है तैसा भासता है । जब विश्व के अत्यन्त अभाव का संकल्प किया तब तैसे ही भासता है । जैसे विश्व का अभ्यास किया है और विश्व भासा है तैसे ही आत्मा का अभ्यास कीजिये तो क्यों न भासे? वह तो अपना आप है, जब आत्मा का अभ्यास कीजियेगा तब आत्मा ही भासेगा विश्व का अभाव हो जावेगा । अनेक सृष्टि अपने-अपने संकल्प से आकाश में भासती है, जैसा किसी का संकल्प होता है तैसे ही सृष्टि उसको भासती है । जैसे चिन्तामणि और कल्पवृक्ष में दृढ़ संकल्प होता है तो यथा इच्छित पदार्थ निकल आते हैं पर वे कुछ बने नहीं और चिन्तामणि भी परिणाम को प्राप्त नहीं हुई ज्यों की त्यों पड़ी है केवल संकल्प की दृढ़ता से भासि आते हैं, तैसे ही यह प्रपञ्च भी आकाशरूप है । जैसे आकाश में शून्यता है तैसे ही आत्मा में

जगत् है । हे रामजी! सिद्ध के जो वचन फुरते हैं सो ही संकल्प की तीव्रता होती है, जो चित्त शुद्ध होता है तो दूसरी को भी जानता है । जो पुरुष वचन सिद्धि होने के निमित्त वासना को सूक्ष्म करता है अर्थात् रोकता है तो उससे वचन सिद्ध पाता है और जैसा संकल्प करता है तैसा ही सिद्ध होता है । हे रामजी जितना यह दृश्य की ओर से उपराम होकर अन्तर्मुख होता है उतने ही वचन सिद्धि होते जाते हैं- चाहे वर दे, चाहे शाप दे वह होता है । हे रामजी! एक प्रमाण ज्ञान है कि यह पदार्थ इस प्रकार है । उसका जो नामरूप है वह सब आकाशरूप भ्रममात्र है-आत्मा में और कुछ नहीं । आत्मरूपी समुद्र में जगत्ूपी तरंग उठते हैं सो आत्मरूप ही है, जिनको ऐसा ज्ञान हुआ है उनको इच्छा और अनिच्छा का ज्ञान नहीं रहता और सब आकाश रूप भासता है । हे रामजी! आत्मरूपी फूल में जगत्ूपी सुगन्ध है । जैसे पवन और स्पन्द में भेद नहीं तैसे ही आत्मा और जगत् में भेद नहीं । पत्थर पर लकीर खैंचिये तो वह पत्थर से भिन्न नहीं होती तैसे ही ब्रह्म से जगत् भिन्न नहीं । हे रामजी! देश, काल, पृथ्वी आदिक तत्त्व और मैं, मेरा सब आत्मरूप है और अविनाशी है । जिनको ऐसे निश्चय हुआ है उनको रागद्वेष नहीं रहता, उन्हें सब आत्मरूप ही भासता है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगदुपदेशो नाम शताधिकसप्तपञ्चाशत्तमस्सर्गः ||157||

अनुक्रम

निर्वाणयोगोपदेश

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! शुद्ध आत्मतत्त्व में जो संवेदन फुरी है उससे आगे जगत् भासित हुआ है । जैसे किसी के नेत्र में एक अञ्जन डालकर आकाश में पर्वत उड़ते हैं तैसे ही अनहोता जगत् फुरने से भासता है । हे रामजी! ब्रह्मसर्ग और चित्सर्ग में कुछ भेद नहीं परमार्थ से एक ही है और दृष्टि, सृष्टि पर्याय हैं और नानात्व भी इसकी भावना से भासते हैं आत्मा में दूसरा कुछ नहीं बना और चित्त चैत्य आत्मा से भिन्न नहीं चित्त ही चैत्य होकर भासता है और ज्ञान से इनकी एकता होती है- इसी से दृश्य भी दृष्टा रूप है । जैसे स्वप्न में शुद्ध संवित् ही दृश्यरूप होकर स्थित होती है और जागे से एक हो जाती है । एकता भी तबहोती है जब वही रूप हो, इससे तुम अब भी वही जानो । दृश्य, दर्शन और दृष्टा त्रिपुटी भी वही रूप है । हे रामजी! जो सजाति है उसकी एकता होती है, विजाति की एकता नहीं होती । जैसे जल में जल की एकता होती है, तैसे ही बोध से सबकी एकता होती है इससे दृश्य कुछ आत्मा से भिन्न होती तो एकता न होती । हे रामजी! आकाश आदिक तत्त्व भी आत्मरूप है । जिससे ये सर्व हैं, जो यह सर्व है और जो सर्वव्यापी सर्वगत सबको धार रहा है और सब वही है ऐसे सर्वात्मा को मेरा नमस्कार है । जो कुछ भासता है सर्व वही है । जैसे जल में गलाने की शक्ति है और काष्ठ में नहीं तैसे ही ब्रह्म में भावना स्वभाव है और में नहीं । ब्रह्मभावना से सर्व ब्रह्म ही भासता है । हे रामजी! जड़ पदार्थ भी ब्रह्म ही है, क्योंकि जो भासता है सो ब्रह्म ही है जड़ हो तो भासे नहीं । जड़ चेतनता शुद्ध संवित में है, उसमें चेतन है भिन्न कुछ नहीं । जैसे शुद्ध संवित् में स्वप्ना फुरता है और उसमें जड़ और चेतन भी भासते हैं परन्तु जो जड़ भासते हैं वे भी उस संवित् में चेतन है, क्योंकि चेतन हैं तब फुरते हैं । जिनको शुद्ध संवित् में अहंप्रत्यय नहीं वह जान नहीं सकता अज्ञानी है परन्तु सब ब्रह्म है । जैसे समुद्र में जल होता है सो ऊँचे आवे तो भी जल है और नीचे को जावे तो भी जल है तैसे ही जो कुछ दीखता और भासता है सो सब ब्रह्मस्वरूप है भिन्न नहीं और इन्द्रियों का भी आत्मा है पृथ्वी आदिक तत्त्व जो फुरे हैं उनमें प्रथम आकाश फुरा है, फिर वायु फुरी है, फिर अग्नि जल और फिर पृथ्वी फुरी है सो सब अनिच्छित चमत्कार फुरे हैं-इससे सब आत्मा रूप हैं । जैसे वट-बीज में वृक्ष होता है तैसे ही आत्मरूपी बीज में जगत् होता है और नाना प्रकार भासते हैं । हे रामजी! जैसे एक बीज ही नाना प्रकार के रूप धारता है परन्तु बीज से भिन्न कुछ नहीं तैसे ही आत्मसत्ता नाना प्रकार हो भासती है परन्तु बीज की नाईं भी परिणामी नहीं । विश्व आत्मा का चमत्कार है इससे वही रूप है । जैसे सुवर्ण में अनेक भूषण होते हैं सो सुवर्ण से भिन्न नहीं तैसे ही विश्व आत्म स्वरूप है द्वैत नहीं और जो आत्मा से इतर हो तो भासे नहीं, इससे जो भासता है सो चैतन्यरूप है और दृश्य और दृष्टा एक ही रूप है, दृष्टा ही दृश्य की नाईं हो भासता है । हे रामजी! जैसे कोई पुरुष तुम्हारे निकट सोया हो और उसको स्वप्ना आवे कि मेघ गर्जते हैं और नाना प्रकार की चेष्टा होती है तो वह सब उसी को भासता है और तुमको नहीं भासता तैसे ही यह दृश्य तुम्हारी भावना में स्थित है और हमको आकाशरूप है । हे रामजी! चैतन्य आकाश शान्तरूप है, उसमें सृष्टि कुछ बनी नहीं और जो कुछ उपजा नहीं तो नष्ट भी नहीं होता केवल शान्तरूप है पर भ्रम से जगत् भासता है । जैसे कोई बालक मनोराज से आकाश में पुतलियाँ रचे तो आकाश में कुछ नहीं बना परन्तु उसके संकल्प में है, तैसे ही यह विश्व मनरूपी बालक ने रचा है उसके रचे हुए में ज्ञानवान् को शून्यता भासती है । हे रामजी! संकल्प मात्र ही सृष्टि हुई है, जब इसका संकल्प नष्ट होता है तब शान्तपद शेष रहता है । निरहंकार सत्तामात्र असत् की नाई स्थित है फिर उस

चिन्मात्र अद्वैत में अहन्ता करके जगत् भासि आता है । जब अहन्ता फुरती है तब जगत् भासता है और जब स्वरूप का साक्षात्कार होता है तब अहन्तारूप भ्रम मिट जाता है । जब अहन्तारूप भ्रम मिट जाता है तब जगत् और इच्छा का भी अभाव हो जाता है, इससे ज्ञानी को इच्छा और वासना कोई नहीं रहती । जब परिच्छिन्नरूप अहन्ता नष्ट होती है तब उस पद को प्राप्त होता है जिस पद में अणिमा आदिक सिद्धियाँ भी सूखे तृण की नाईं भासती हैं और वह ऐसा आनन्दरूप है जिसमें ब्रह्मादिक का सुख भी तृण समान भासता है । हे रामजी! जिसको ऐसा ब्रह्मानन्द पद प्राप्त हुआ है उसको फिर किसी की इच्छा नहीं रहती और उसको मारनेवाले विष आदिक पदार्थ मृतक नहीं करते और जिलानेवाले पदार्थ अमृत आदिक नहीं जिलाते केवल निर्वाणपद में उसकी स्थिति है । हे रामजी! जिस पुरुष को संपूर्ण संसार से वैराग्य हुआ है उसको संसार के पदार्थ सुखदायक नहीं भासते, मिथ्या भासते हैं और वह संसारसमुद्र से पार हुआ है । जिनको संसार की वासना और अहन्ता नष्ट हुई है उनकी मूर्ति देखने मात्र भासती है और वे निर्वासी ज्ञानवान् शान्तरूप हैं । हे रामजी! इच्छा ही बन्धन है जब इच्छा का अभाव हो तब आनन्द हो । इच्छा भी तब फुरती है जब संसार को सत्य जानता है और संसार की सत्यता अहन्ता से भासती है । जब अहन्ता रूपी बीज नष्ट हो तब निर्वाणपद की प्राप्ति हो । हे रामजी! संसार कुछ बना नहीं- भ्रम से सिद्ध हुआ है । सर्व ही ब्रह्म है, उस परमात्मा में जो परिच्छिन्न अहन्ता फुरी वही उपाधि है । हे रामजी! बुद्धि से आदि लेकर जितनी दृश्य है यह जिसको अपने में स्वाद नहीं देती और जो आकाश की नाईं रहता है उसको सन्त मुक्तरूप कहते हैं । हे रामजी! यह अहंता अविचार से भासती है और विचार किये से असत्य हो जाती है । अनहोती अहन्ता ने दुःख दिया है, इससे तुम निरहंकार होकर चेष्टा करो । जैसे यन्त्र की पुतली अभिमान से रहित चेष्टा करती है तैसे ही तुम निरहंकार होकर चेष्टा करो और अपने स्वरूप में स्थित हो रहो तब व्यवहार और अव्यवहार तुमको तुल्य हो जावेगा । जैसे पवन को स्पन्द निस्पन्द दोनों तुल्य होते हैं तैसे ही तुमको हो जावेगा और अहंकार से रहित तेरी चेष्टा होगी । अहन्ता दुःख है, जब अहन्ता का नाश होगा तब तुम शान्त, निर्मल और अनामय पद को प्राप्त होगे जो सर्वपदार्थ का अधिष्ठान है और सबका अपना आप है, उसमें न कोई सुख है, न दुःख है, न कोई इन्द्रियों का विषय है परम शान्तरूप है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणयोगोपदेशोनाम शताधिकाष्टपञ्चाशत्तमस्सर्गः ||158||

अनुक्रम

वशिष्ठगीतोपदेश

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो ज्ञानवान् पुरुष है वह निरावरण है अर्थात् दोनों आव रणों से रहित है । एक असत्वापादक आवरण है और दूसरा अभानापादक आवरण है । जो आत्मब्रह्म की सत्यता हृदय में न भासे सो असत्वापादक है और जो आत्मा की सत्यता हृदय में भासे परन्तु दृढ़ प्रत्यक्ष न भासे सो अभानापादक आवरण है । असत्वा पादक आवरण अज्ञानी को भासता है और अभानापादक आवरण जिज्ञासु को होता है पर ज्ञानवान् को दोनों आवरण नहीं रहते इससे वह निरावण, शान्तरूप, आकाशवत् निर्मल और निरालम्ब किसी गुणत्व के आश्रय नहीं होता और एक द्वैतभ्रम उसका नष्ट हो जाता है क्योंकि उसने आत्मरूपी तीर्थ का स्नान किया है- जो अपवित्र को भी पवित्र करता है । जिस पुरुष ने शरीर में आत्मा का दर्शन किया है उसका शरीर भी पवित्र होता है । ऐसे पुरुष को शरीर की सत्यता नहीं रहती और संसार भी नहीं रहता । आत्मा के साक्षात्कार हुए से सब इच्छा नष्ट हो जाती है और सर्व ब्रह्म ही भासता है-द्वैत कुछ नहीं भासता । सर्व आत्मारूप है पर उसमें संकल्प से नाना प्रकार की सृष्टि भासती है । हे रामजी! तुम संकल्प की ओर मत जाओ, क्योंकि चित्त की वृत्ति क्षण क्षण में प्रणमती है और अनन्त योजना पर्यन्त चली जाती है जो उसके अनुभव करनेवाली सत्ता मध्य में है और जिसके आश्रय वह जाती है सो चिन्मात्र तेरा स्वरूप है ।जब तुम उसमें स्थित होकर देखोगे तब फुरने में भी ब्रह्मसत्ता भासेगी ।हे रामजी!यह संवित् सदा प्रकाशरूप, चित्त के क्षोभ से रहित और द्वैतरूप विकार से रहित शुद्ध है । जितने प्रकाश हैं उनके विरोधी भी हैं जैसे दीपक का विरोधी पवन है जो निर्वाण करता है और सूर्य का विरोधी केतु है जो घेर लेता है और महाप्रलय में सर्व प्रकाश तमरूप हो जाते हैं पर आत्मप्रकाश नित्य सिद्ध है, तम को भी प्रकाशता है और सदा ज्ञानरूप है । उसको त्यागकर और किसी ओर न लगना । हे रामजी! यह दृश्य सब मिथ्या है, जैसे रस्सी में सर्प और सीपी में रूपा कल्पित है । जब तुम जागकर देखोगे तब सबका अभाव हो जावेगा जैसे वन्ध्या के पुत्र के रूप का अभाव है तैसे ही सब विश्व मिथ्या भासेगा, क्योंकि है नहीं-भ्रममात्र स्वप्न की नाईं अविचारसिद्ध है और विचार किये से आत्मा ही है, भिन्न कुछ नहीं । जैसे स्वप्न की सृष्टि अनुभव से कुछ भिन्न नहीं तैसे ही यह आत्मारूप विश्व भी ज्ञानमात्र है और अहं, मम, देह, इन्द्रियादिक भी सब ज्ञानमात्र हैं-दृश्य कुछ दूसरी वस्तु नहीं । जब ऐसे निश्चय धारोगे तब निश्शोक और मोह से भी रहित होगे और परमार्थसत्ता ज्यों की त्यों भासेगी । जैसे समुद्र में तरंग उठते हैं, तैसे ही आत्मा में दृश्य उठती है सो वही रूप है और जो भिन्न भासे सो मिथ्या है । सब सृष्टि इसके हृदय में स्थित है पर अज्ञान से बाह्य भासती है जैसे स्वप्न की सृष्टि अपने भीतर होती है और अपना स्वरूप होता है पर निद्रादोष से बाहर भासती है और जब जागता है तब अपना ही स्वरूप भासता है, तैसे ही जाग्रत सृष्टि भी विचार किये से अपने अनुभव में भासती है । इससे स्थित होकर देखो कि सर्वदा जागती ज्योति है उसको त्यागकर और यत्न करना व्यर्थ है । हे रामजी! अपने अनुभव में स्थित होना क्या कष्ट है? जो इसे कठिन जानते हैं वे मूढ़ हैं और उनको धिक्कार है, क्योंकि वे गऊ के पग को समुद्रवत् जानते हैं उनसे और कौन मूर्ख है । अनुभव में स्थित होना गऊ के पग की नाईं ही तरना सुगम है और जो और पदार्थों के पाने की इच्छा करेगा तो उनमें व्यवधान है पर आत्मा में व्यवधान कुछ नहीं, क्योंकि अपना आप है । हे रामजी! जिन पुरुषों ने आत्मा में स्थिति पाई है उनको मोक्ष की इच्छा भी नहीं तो स्वर्गादिक की इच्छा कैसे हो? मोक्ष और स्वर्ग आत्मा में रस्सी के सर्पवत् मिथ्या भासते हैं-उनको केवल अद्वैत आत्मा निश्चय होता है । हे

रामजी! स्वप्न में सुषुप्ति नहीं और सुषुप्ति में स्वप्ना नहीं-इनके अनुभव करनेवाली शुद्ध सत्ता है और ये दोनों मिथ्या हैं । उनको निर्वाण और जीना दोनों तुल्य हैं । ऐसे जानकर वे इच्छा किसी की नहीं करते-प्रपञ्च उनको शशे के सींग और बन्ध्या के पुत्रवत् भासते हैं । हे रामजी हमको तो संसार सदा आकाशरूप भासता है । यदि तुम कहो कि उपदेश क्यों करते हो? तो हमको कुछ भास नहीं तुम्हारी ही इच्छा तुमको वशिष्ठरूप होकर उपदेश करती है । हमको विश्व सदा शून्यरूप भासता है और हमको चेष्टा करते भी अज्ञानी जानते हैं पर हमारे निश्चय में चेष्टा भी नहीं और हमारी चेष्टा कुछ अर्थाकार भी नहीं । अज्ञानी की चेष्टा अर्थाकार होती है हमारी चेष्टा सत्य नहीं इससे अर्थाकार भी नहीं होती । जैसे ढोल के शब्द का अर्थ नहीं होता कि क्या कहता है और वाणीसे जो शब्द बोला जाता है उसका अर्थ होता है, तैसे ही हमारी चेष्टा अर्थाकार नहीं अर्थात् जन्म नहीं देती और अज्ञानी की चेष्टा जन्म देती है । हमको संसार ऐसे भासता है जैसे अवयवी सर्व अवयवों को अपना स्वरूप ही देखता है- अर्थात् हस्त पाद, शीश आदिक सबको अपने ही अंग देखता है । हे रामजी! जगत् में एक ऐसे जीव दृष्टि आते हैं कि उनको हम स्वप्न के जीव भासते हैं और हमको वह शून्य आकाश वत् दृष्टि आते हैं और उनके हृदय में हम नाना प्रकार की चेष्टा करते भासते हैं । हम को जगत् ऐसे भासता है जैसे समुद्र में तरंग । मैं भी ब्रह्म हूँ तुम भी ब्रह्म हो, जगत् भी ब्रह्म है और रूप अवलोक मनस्कार सब ब्रह्मरूप है, इससे तुम भी ब्रह्म की भावना करो । अपने स्वभाव में स्थित होना परमकल्याण है और परस्वभाव में स्थित होना दुःख है । हे रामजी! अपना स्वभाव साधने का नाम मोक्ष है और न साधने का नाम बन्धन है । हे रामजी! धन, मित्र, क्रिया आदि कोई पदार्थ उपकार नहीं करता केवल अपना पुरुषार्थ ही उपकार करता है सो यही है कि अपने चैतन्य स्वभाव में स्थित होना और परस्वभाव का त्याग करना । जब अपने स्वभाव में स्थित होगे तब सब अपना स्वरूप ही भासेगा । जो स्वरूप से भिन्न होके देखो तो न मैं हूँ, न तुम हो और न जगत् है, सब भ्रममात्र है और मृगतृष्णा के जलवत्त भासता है । ऐसे जानो कि मैं भी ब्रह्म हूँ, और तुम भी ब्रह्म हो और जगत् भी ब्रह्म है, वा ऐसे जानो कि न तुम हो, न मैं हूँ और न जगत् है तो पीछे जो शेष रहेगा सो तुम्हारा स्वरूप है । हे रामजी! जिन पुरुषों को ऐसे निश्चय हुआ कि मैं, तू और जगत् सब ब्रह्म है अथवा मैं तू और जगत् सब मिथ्या है, उनको फिर कोई इच्छा नहीं रहती और जिनको इच्छा उठती है उनको जानिये कि ब्रह्म आत्मा का साक्षात्कार नहीं हुआ । जब भोगों की वासना निवृत्त हो और संसार विरस हो जावे तब जानिये कि यह संसार से पार हुआ अथवा होगा । हे रामजी! यह निश्चय करके जानो कि जिसको भोगों की वासना क्षीण होती है उसको स्वभावरूपी सूर्य उदय होता है और भोगों की तृष्णारूपी रात्रि नष्ट होती है यद्यपि उसमें प्रत्यक्ष भोगों की तृष्णा आती है तो भी भास जाती रहती है और ब्रह्मसत्ता ही भासती है । संसार की ओर से वह सुषुप्त और मृतक को नाईं हो जाती है, अपने स्वरूप में सदा जाग्रत रहता है और अपने स्वभावरूपी अमृत में मग्न होता है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे वशिष्ठगीतोपदेशो नाम शताधिकैकोनषष्टितमस्सर्गः ॥159॥

अनुक्रम

वशिष्ठगीतासंसारोपदेश

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! रूप अवलोक और मनस्कार यह परस्वभाव है, इनको ब्रह्मरूप जानो। परस्वभाव क्या है और ब्रह्मरूप क्या है? सो भी सुनो। हे रामजी! तुम्हारा स्वरूप शुद्ध आकाश है और उसमें जो रूप, अवलोक और मनस्कार फुरे हैं सो माया से फुरे हैं। माया स्वभाव से परस्वभाव है परन्तु अधिष्ठान इनका आत्मसत्ता है इससे आत्मस्वरूप है आत्मा के जाने से इसका अभाव हो जाता है। हे रामजी! जब ज्ञान उपजता है तब संसार स्वप्नवत् हो जाता है और उसकी सत्ता कुछ नहीं भासती। जब दृढ़ता होती है तब सुषुप्त हो जाता है इनका भाव भी नहीं रहता, तुरीया में स्थित होता है। जबतुरीयातीत होता है तब अभाव का भी अभाव हो जाता है और परमकल्याण रूप सत्ता समानपद को प्राप्त होती है जो आदि अन्त है जो आदि अन्त से रहित परमपद है। ऐसा मैं ब्रह्मस्वरूप परमशान्तरूप और निर्दोष हूँ और जगत् भी सब ब्रह्मरूप है हमको सदा यही निश्चय है और ऐसा उत्थान नहीं होता कि मैं वशिष्ठ हूँ। हमारा परिच्छिन् अहंकार नष्ट हो गया है इससे हम निरहंकारपद में स्थित हैं। जब तुम ऐसे होकर स्थित होगे तब परम निर्मल स्वरूप हो जावोगे। जैसे शरत्‌काल का आकाश निर्मल शोभता है तैसे ही तुम भी शोभोगे। हे रामजी! कैसे पुरुष को बन्धन है सो भी सुनो जिससे वह आत्मपद को नहीं प्राप्त होता। प्रथम धन और गृह का बन्धन है दूसरे भोग की तृष्णा और तीसरे बान्धवो का बन्धन है जिसको इन तीनों की वासना होती है उसको धिक्कार है। बड़े अनर्थ की देने वाली यह वासना है यह भोग महारोग है, बान्धव दृढ़ बन्धन रूप हैं और अर्थ की प्राप्ति अनर्थ का कारण है। इससे इस वासना को त्यागकर आत्मपद में स्थित हो। यह संसार भ्रममात्र है, इसक वासना करना व्यर्थ है और इसको सत्य न जानना। यह जो तुमको संग और मिलाप भासता है सो कैसा है जैसे बैठे हुए स्मरण आवे कि मैं अमुक से मिला था- तो वह प्रतिमा प्रत्यक्ष हृदय में भासती है। जैसे संकल्प से नगर रच लिया तो उसमें मनुष्यादिकों के चित्र भासने लगते हैं तैसे ही इस जगत् को भी जानो। हे रामजी! तुम , मैं और यह जगत् भ्रममात्र संकल्पनगर के समान है। जैसे भवियष्यत् नगर की रचना है तैसे ही यह जगत् है। कर्त्ता क्रिया कर्म जो भासते हैं सो भी भ्रममात्र हैं केवल आत्मसत्ता ही अपने आपमें स्थित है। आत्मरूपी आकाश में यह जगत्‌रूपी पुतलियाँ हैं और संकल्प ही प्रत्यक्ष हुआ है वास्तव में केवल शान्तरूप आत्मतत्त्व है। हे रामजी! जो पुरुष स्वभावनिष्ठ हैं उनको आत्मतत्त्व ही भासता है और जिनको आत्मतत्त्व का प्रमाद है उनको नाना प्रकार का जगत् भासता है पर आत्मा में यह जगत् कुछ आरम्भ परिणाम से नहीं बना। जैसे सूर्य की किरणों में अज्ञान से जलाभास भासते हैं तैसे ही आत्मा में अज्ञान से जगत् की प्रतीति होती है। जब आत्मा का सम्यक्‌ज्ञान हो तब जगत भ्रम निवृत्त हो जाता है-जैसे सूर्य की किरणों कर जाने से जलभ्रम निवृत्त हो जाता है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे वशिष्ठगीतासंसारोपदेशो नाम शताधिकषष्टितमस्सर्गः ||160||

अनुक्रम

जगदुपशमयोगोपदेश

वशिष्ठजी बोले हे रामजी! रूप अवलोक, सब ब्रह्मरूप हैं । जिसको ज्ञान प्राप्त होता है उसको सब ब्रह्मस्वरूप भासता है–यही ज्ञान का लक्षण है ज्यों ज्ञानकला उदय होती है त्यों त्यों भोगों की वासना क्षीण होती जाती है और जब पूर्णबोध की प्राप्ति होती है तब किसी की इच्छा नहीं रहती जैसे ज्यों ज्यों सूर्य प्रकाशता है त्यों त्यों अन्धकार नष्ट हो जाता और जब पूर्ण प्रकाश होता है तब रात्रि का अभाव हो जाता है, तैसे ही जिसको ज्ञान उत्पन्न हुआ है उसको भोगों की वासना नहीं रहती और संसार उसको जले वस्त्र की नाईं भासता है पर अज्ञानी को सत्य भासता है । जैसे स्वप्न में सुषुप्ति नहीं होती और सुषुप्ति में स्वप्न नहीं होता और स्वप्न का पुरुष सुषुप्ति को नहीं जानता और सुषुप्तिवाला स्वप्नवाले को नहीं जानता तैसे ही जिसको तुरीयापद की प्राप्ति होती है उसको संसार का अभाव हो जाता है और वह अपने स्वभाव में स्थित होता है । जो संसार को सत् जानते हैं–सुषुप्ति को नहीं जानते । हे रामजी! तेरा स्वरूप जो तुरीयापद है उसको अज्ञानी नहीं जान सकते और जो जानें तो उनका परिच्छिन्न अहंकार नष्ट हो जावे । जब अहंकार नष्ट हो तब सर्व आत्मा हुआ । हे रामजी! जीव को अहन्ता ने तुच्छ किया है, इससे तुम अहन्ता को त्याग करके अपने स्वभाव में स्थित हो रहो । संसाररूपी एक पुतली है जो भ्रम से उठी है, उसका शीश ऊर्ध्व ब्रह्मलोक है, टखने और पाँव पाताललोक हैं, दशोदिशा वक्षःस्थल है, चन्द्रमा और सूर्य नेत्र हैं, तारागण रोम हैं,आकाश वस्त्र है, सुखदुःखरूपी स्वभाव है, पवन प्राणवायु है, बगीचे भूषण हैं, द्वीप और समुद्र कंकण हैं और लोकालोक पर्वत मेखला है । हे रामजी! ऐसी जो पुतली है सो नृत्य करती है । जैसे समुद्र में तरंग उपजते हैं और नष्ट होते हैं परन्तु जल ज्यों का त्यों ही है तैसे ही जल की नाईं सर्व ब्रह्मरूप है और भ्रम से विकार दृष्टि आते हैं । हे रामजी! कर्त्ता, क्रिया और कर्म भी आत्मस्वरूप है । जब तुम आत्मा की भावना करोगे तब तुम्हारा हृदय आकाशवत् शून्य हो जावेगा । जैसे पत्थर की शिला जड़ होती है, तैसे ही तुम्हारा हृदय जगत् से जड़ और शून्य हो जावेगा । हे रामजी आत्मपद शान्तरूप और आकाशवत् निर्मल है । जैसे आकाश में आकाश स्थित है तैसे ही आत्मा में जगत् है, न उदय होता है और न अस्त होता है केवल शान्तरूप है । उदय अस्त भी होता है जब कुछ दूसरी वस्तु होती है पर जगत् कुछ भिन्न नहीं आत्मा स्वरूप ही है । द्वैत और एक कल्पना से रहित आत्मा अपने आप में स्थित है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगदुपशमयोगोपदेशो नाम शताधिकैकषष्ठितमस्सर्गः ।।161।

अनुक्रम

पुनर्निर्वाणोपदेश

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह विश्व आत्मा का चमत्कार है । जैसे मृत्तिका की पुतली मृत्तिकारूप और कागज की पुतली कागजरूप होती है तैसे ही विश्व आत्मरूप है । जैसे मृत्तिका का दीपक देखनेमात्र होता है और प्रकाश का कार्य नहीं करता तैसे ही यह जगत् देखनेमात्र है विचार किये से आत्मा के सिवा भिन्नसत्ता कुछ नहीं, इससे जगत् की सत्यता आत्मा से कुछ भिन्न नहीं । जगत् की आस्था आत्मा के आश्रित होती है । जैसे जल में तरंग, आकाश में शून्यता और पवन में फुरना है तैसे ही आत्मा में जगत् अभिन्नरूप है, और जैसे वायु चलती है तब भी पवन है क्योंकि उसको वायु का निश्चय है, जगत् वही स्वरूप है– इससे चैतन्य है । ज्ञानवान् जानता है कि जगत् मेरा ही स्वरूप है । हे रामजी! यह आश्चर्य देखो कि जगत् कुछ दूसरी वस्तु नहीं और भ्रम करके भिन्न भासता है । जैसे कथा में कथा के पुरुष विद्यमान भासते हैं और क्रिया करते हैं तैसे ही इस जगत् को भी मनोमात्र जानो । हे रामजी! जो विद्यमान है सो अविद्यमान हो जाता है और जो अविद्यमान है सो विद्यमान हो जाता है । जैसे स्वप्न में जगत् अनुभवस्वरूप है– भिन्न नहीं तैसे ही जाग्रत् को विचार से देखोगे तब ब्रह्म स्वरूप ही भासेगा । जैसे जो पुरुष सोया होता है स्वप्न जगत् उसी का रूप है परन्तु जबतक निद्रादोष है तब तक भिन्न भासता है पर जब जागा तब सब अपना ही आप भासता है, तैसे ही जब मनुष्य अपने स्वरूप में स्थित होकर देखता है तब सब अपना आप ही भासता है । हे रामजी!रूप, अवलोक, मनस्कार भी ब्रह्मस्वरूप है पर आत्मा इन्द्रियों का विषय नहीं, वह तो निराकार है और मन के चिन्तने से रहित है । संकल्प से आपही रूप, अवलोक और मनस्कार करके स्थित हुआ है, भिन्न नहीं । सर्व वही है और शास्त्र कारों ने शिव, ब्रह्म, आत्मा,शून्य आदि उसके नाम संकल्प में कहे हैं । आत्मा केवल चिन्मात्र है, वह वाणी का विषय नहीं और शान्तरूप, चैत्य अर्थात् दृश्य से रहित और सर्व शब्द अर्थों का अधिष्ठान है और जगत् उसका चमत्कार है । हे रामजी! आत्मा में एक और द्वैतकल्पना कोई नहीं, क्योंकि वह आत्मत्वमात्र है और जगत् भी आत्मरूप है । जैसे आकाश और शून्यता में भेद नहीं तैसे ही आत्मा और जगत् में भेद नहीं । हे रामजी यदि ऐसा भी किसी देश अथवा काल में हो कि सुवर्ण और भूषण में कुछ भेद हो अथवा सुवर्ण भिन्न हो और भूषण भिन्न हो परन्तु आत्मा और जगत् में भेद नहीं, आत्मा ही ऐसे प्रकाशता है और अपने स्वभाव में स्थित है दूसरी वस्तु कुछ नहीं । जैसे मृत्तिका की सेना नाना प्रकार की संज्ञा धारती है परन्तु मृत्तिका से भिन्न कुछ दूसरी वस्तु नहीं है तैसे ही फुरने से नाना प्रकार की संज्ञा दृष्टि भी आती हैं परन्तु आत्मा से भिन्न नहीं– वही रूप है । हे रामजी! यह सर्व पदार्थ अनुभव से भासते हैं । पदार्थ की सत्ता अनुभव से भिन्न नहीं । जब तुम अनुभव में स्थित होकर देखोगे तब अनुभवरूप अपना आप ही भासेगा । अपना स्वभाव ज्ञानमात्र है, उसी के जानने का नाम ज्ञान है । हे राम जी! ज्ञान बिना जो तप, यज्ञ, दान आदिक क्रिया हैं सो सब व्यर्थ हैं । सब क्रियाओं की सिद्धि ज्ञान से होती है । हे रामजी! जो कुछ क्रिया ज्ञान के निमित्त कीजिये सो ही पुरुषप्रयत्न श्रेष्ठ है और इससे अन्यथा व्यर्थ है । धन के उपजाने में भी और रखने में भी कष्ट है परन्तु जो ज्ञान के साधन निमित्त इसको रखिये और दीजिये तो यह अमृत हो जाता है । हे रामजी! यह जगत् भ्रममात्र है । जैसे मलीन नेत्रवाले को रूप विपर्यय भासता है और स्वप्न की सृष्टि में अज्ञ में अज्ञ तज्ञ भी भासते हैं परन्तु असत्यरूप है, तैसे ही यह जगत् विद्यमान भासता है पर अविद्यमान है और आत्मा सदा विद्यमान है । हे रामजी! विद्यमान देव जो विष्णु हैं उसको त्यागकर जो और देव का

पूजन करते हैं उनको पूजा सफल नहीं होती और विष्णु उन पर कोपमान भी होते हैं इसी तरह आत्मा जो अनुभवरूप विद्यमान है उसको त्यागकर जो और का पूजन करते हैं वे जन्ममरण के बन्धन से मुक्त नहीं -होते-मूढ़ता में रहते हैं । आत्मदेव की पूजा सुनो । जो कुछ अनिच्छित आवे सो उसको अर्पण कीजिये और इसके जाननेवाले में अहंप्रत्यय करना-यही बड़ी पूजा है । हे रामजी! इस आत्मदेव से भिन्न जो सूर्य, चन्द्रमा आदिक भेदपूजा हैं सो तुच्छ है । जब तुम आत्मपूजा में स्थित होगे तब और पूजा तुमको सूखे तृण की नाईं भासेगी । दान भी आत्मदेव को ही करना है सो बोध से करने योग्य है और वैराग्य धैर्य और संतोष बोध का कारण है । यथालाभ में संतुष्ट रहकर ब्रहमविद्या का विचार करो और सन्तों का संग करो । इन साधनों से जब बोधरूपी सूर्य उदय होगा तब द्वैतरूपी अन्धकार नष्ट हो जावेगा और ज्ञानरूप ही भासेगा । फिर जो ज्ञान उपजा है वह भी शान्त हो जावेगा-इससे उसी देव की पूजा करो जिससे आत्मपद को प्राप्त हो । आत्मदेव की पूजा के निमित्त फूल भी चाहिये इसलिये आत्मविचार करके चित्त की वृत्ति अन्तर्मुख करना और यथालाभ में संतुष्ट रहकर सन्तों की संगति करना-इन फूलों से निवेदन करना । यह पूजा भी तब होती है जब अन्तःकरण शुद्ध होता है, उससे ज्ञान उत्पन्न होता है और जब ज्ञान उपजता है तब आत्मदेव का साक्षात्कार होता हे । ज्ञान का लक्षण सुनो । गुरु और शास्त्र से जो वस्तु सुनी है उसमें स्थिति होती है और संसार की वासना क्षीण हो जाती है तब ज्ञानी कहाता है । जब इस ज्ञान की पूर्णता होती है तब जगत् उसको ब्रहमस्वरूप ही भासता है और तब उसको शस्त्र काट नहीं सकते और सिंह, सर्प, अग्नि और विष का भी भय नहीं होता । हे रामजी! यह विश्वसब आत्मरूप है । जैसी भावना कोई करता है तैसा ही आगे हो भासता है ।जब शास्त्र में शास्त्र के अर्थ की भावना होती है तब वही भासते हैं, इसी प्रकार सर्प और अग्नि सब अपने अपने अर्थाकार भासते हैं । जो सर्व आत्मभावना होती है तब सर्व आत्मा ही भासता है, क्योंकि दूसरी वस्तु कुछ बनी नहीं तो दिखाई कैसे दे । जो पुरुष कृतकृत्य नहीं हुआ और आपको कृतार्थ मानता है पर दुःख की निवृत्ति का उपाय नहीं करता तो दुःख के आये से दुःख ही होवेगा और दुःख उसको चला ले जावेगा और जब सुख आवेगा तब सुख भी चला ले जावेगा । हे रामजी! जो पुरुष सर्व ब्रहम कहता है पर निश्चय से रहित है और शास्त्र भी बहुत देखता है वह महामूर्ख है । जैसे जन्म का अन्धा सूर्य को नहीं जानता तैसे ही वह आत्म अनुभव से रहित है । जब आत्मा पद का साक्षात्कार होगा तब ऐसा आनन्द प्राप्त होगा जिसके पाये से और पदार्थ रस से रहित भासेंगे और ब्रहमा से काष्ठपर्यन्त सब पदार्थ विरस हो जावेंगे । इससे आत्मपरायण होकर सदा आत्मपद की भावना करो । हे रामजी! जैसे शुद्धमणि के निकट जैसी वस्तु रखिये तैसा ही प्रतिबिम्ब होता है- तैसा ही रूप भासता है । इससे जगत् को ब्रहमस्वरूप जानो और जो दूसरा भासे उसे भ्रम मात्र जानो । जैसे पत्थर की शिला पर पुतलियाँ लिखते हैं सो शिलारूप ही है तैसे ही यह सब जगत् आत्मस्वरूप है । जब आत्पपद की तुमको प्राप्ति होगी तब सब पदार्थ विरस होंगे । हे रामजी! यह जगत् मिथ्या है । जो पुरुष इस जगत् को सत् जानता है और कहता है कि हम मुक्त होंगे तो ऐसा है जैसे अन्धे कूप में जन्म का अन्धा गिरे और कहे कि अन्धकार में मैं सुखी हूँगा । वह मूर्ख है, क्योंकि आत्म ज्ञान बिना मुक्त नहीं होता ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पुनर्निर्वाणोपदेशो नाम शताधिकद्विषष्टितमस्सर्गः ||162||

अनुक्रम

ब्रह्मैकताप्रतिपादन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अहन्ता आदि जो जगत् भासता है सो मिथ्या भ्रम करके उदय हुआ है, इसको त्यागकर अपने अनुभवस्वरूप में स्थित हो । इस मिथ्या जगत् में आस्था करनी मूर्खता है । जो ज्ञानवान् है उसको जगत् का अभाव है । अब ज्ञानी और अज्ञानी का लक्षण सुनो । हे रामजी! जैसे किसी पुरुष को ताप चढ़ता है तो उसका हृदय जलता है और तृषा बहुत होती है पर जिसका ताप नष्ट हो गया है उसका हृदय शीतल होता है और जल की तृषा भी नहीं होती, तैसे ही जिस पुरुष को अज्ञानरूपी ताप चढ़ा हुआ है उसका हृदय जलता है और भोगरूपी जल की तृष्णा बहुत होती है पर जिसके हृदय में अज्ञानरूपी ताप मिट गया है उसका हृदय शीतल होता है और भोगरूपी जल की तृष्णा मिट जाती है । अब ताप निवृत्त करने का उपाय सुनो । शास्त्रों के अर्थवाद से तो बुद्धि में भ्रम हो जाता है । मैं तुमसे सुगम उपाय कहता हूँ कि निरहंकार होना ही सुगम उपाय है । `न मैं हूँ' और `न यह जगत् है' जब तुम ऐसा निश्चय धारोगे तब सब जगत् तुमको ब्रह्मस्वरूप भासेगा और किसी पदार्थ की वाच्छा न रहेगी । जब सब पदार्थों को मिथ्या जानकर अपना भी अभाव करोगे तब पीछे प्रत्येक चैतन्य परमानन्दस्वरूप सबका अधिष्ठान शेष रहेगा । यह अहन्तारुपी यक्ष जो उठा है सो मिथ्या है और उस मिथ्या यक्ष ने नानाप्रकार का जगत् कल्पा है । अहंकार भी मिथ्या है और जगत् भी मिथ्या है । जब तुम अपने स्वरूप में स्थित होगे तब जगत्‌भ्रम मिट जावेगा । जैसे स्वप्न के जगत् में सुन्दर पदार्थ भासते हैं और मनुष्य उनकी इच्छा करता है । जबतक जागता नहीं तबतक जानता है कि ये पदार्थ कदाचित् नष्ट न होंगे और कहता है कि अमुकरूप देखिये और अमुक भोजन कीजिये पर जब जाग उठा तब जानता है कि मेरा ही संकल्प था और फिर वे पदार्थ सुन्दर स्मरण भी होते हैं अथवा भासते हैं तो भी उनको मिथ्या जानता है, तैसे ही जब आत्मा में जागता है तब सर्वब्रह्म ही भासता है । हे रामजी! इस जगत् का बीज अहन्ता है जैसे दुःख का बीज पाप होता है तैसे ही जगत् का बीज अहन्ता है, इससे तुम निरहंकार पद में स्थित हो रहो । यह सब तुम्हारा स्वरूप है पर भ्रम से जगत् भासता है । हे रामजी! जगत् का अत्यन्ताभाव है । जैसे रस्सी में सर्प का अत्यन्ता भाव है, परन्तु भ्रमदृष्टि से सर्प भासता है और जब विचाररूपी दीपक से देखिये तो सर्प का अभाव हो जाता है तैसे ही आत्मा में यह जगत् भ्रम से भासता है । जब विचार करके जगत् का अभाव निश्चय करोगे तब आत्मपद ज्यों का त्यों भासेगा । जैसे जब वसन्त ऋतु आती है तब सब फूल, फल और डालें दृष्टि आते हैं सो एक ही रस इतनी संज्ञा को धारता है, तैसे ही तुम जब आत्मपद में स्थित होगे तब तुमको सब आत्मरूप ही भासेगा और सर्वआत्मा ही भासेगा । हे रामजी! आदि भी आत्मा ही है और अन्त में भी आत्मा ही होगा पर मध्य में जो जगत् के पदार्थ भासते हैं उनकी ओर मत जाओ-जो इनका जाननेवाला है और जिससे सब पदार्थ प्रकाशते हैं उसमें स्थित हो रहो । ये सब मनुष्य मृग की नाईं हैं ।जैसे मरुस्थल मे जल जानकर मृग दौड़ते हैं तैसे ही जगत्‌रूपी मरुस्थल की भूमिका शून्य है और तीनों लोक मृगतृष्णा के जल हैं उनमें मनुष्यरूपी मृग दौड़ते हैं और दौड़ते-दौड़ते हार जाते हैं कदाचित् शान्ति नहीं होती, क्योंकि जगत् के पदार्थ सब असत्य हैं । हे रामजी! रूप अवलोक और मनस्कार सब मृगतृष्णा के जल हैं, इनको जो सत्य जानता है वह मूर्ख है । यह जगत् गन्धर्वनगर की नाईं है तुम जागकर देखो, इनको सत्य जानकर क्यों तृष्णा करते हो । इनको सत्य जानकर तृष्णा करना ही बन्धन है । हे रामजी! तुम आत्मा हो । इसकी इच्छा से बन्धवान् क्यों होते हो? जैसे सिंह पिंजरे में आकर दीन होता है पर बल करके जब पिंजरे को तोड़ डालता है तब बड़े वन में

जाय निवास करता है और निर्भय होता है तैसे ही तुम भी वासनारूपी पिंजरे को तोड़कर आत्मपद में स्थित हो रहो जो सर्व का अधिष्ठान और सबसे उत्कृष्ट है । जब तुम उस पद को प्राप्त होगे तब इस संसार की वासना नष्ट होकर आनन्द होगा और तुम निर्वाण पद को प्राप्त होकर अफुर होगे, परम उपशम ज्ञेय पद को प्राप्त होगे और द्वैतभाव मिटकर केवल परमार्थसत्ता भासेगी-इसी का नाम निर्वाण है । जैसे कोई मार्ग चल कर तपता आवे तो वह शीतल स्थान में आकर शान्ति पाता है तैसे ही यह चारों भूमिका शान्ति का स्थान हैं । निर्वाणता, निरहंकारता,वासना का त्याग और परम उपशम इनसे ज्ञेय में स्थित होना । जब तुम भी इन भूमिकाओं में स्थित होगे तब दृष्टा, दर्शन और द्रश्य त्रिपुटी का अभाव हो जावेगा और केवल दृष्टा ही रहेगा । हे रामजी! दृष्टा भी उपदेश जताने के निमित्त कहा है, जब दृश्य का अभाव हुआ तब दृष्टा किसका हो, केवल अपने आपमें स्थित हो जो शुद्ध है यह जगत् की सत्यता जन्मों की देनेवाली है । जो जगत् के पदार्थ सुखदायी भासते है सो दुःख के देनेवाले हैं इनको विष जानकर त्याग करो । जैसे आकाश में तरुवरे भासते हैं तैसे ही यह जगत् अनहोता भासता है-आत्मा में दृश्य नहीं । एक ही पदार्थ में दो दृष्टि हैं । ज्ञानी उसको आत्मा और अज्ञानी जगत् जानते हैं ।
दोहा--सब भूतन की रात्रि में सन्तन का दिन होय । जो लोकन दिन मानियाँ, सन्तरहे तहँ सोय ।।
ज्ञानी परमार्थतत्त्व में जागते हैं और संसार की ओर से सो रहे है और अज्ञानी परमार्थ तत्त्व में सोये हुए हैं और संसार की ओर सावधान हैं । हे रामजी! यह जगत् मन से फुरा है और ज्ञानी का मन सत्पद को प्राप्त हुआ है इससे उसे जगत् की भावना नहीं फुरती । जैसे बालक को संसार के पदार्थों का ज्ञान नहीं होता तैसे ही ज्ञानी के निश्चय में जगत् कुछ वस्तु नहीं । हे रामजी! जब ज्ञान उपजता है तब जगत् कुछ भिन्न वस्तु नहीं भासता । जैसे जल की बूँदें जल में डालिये तो भिन्न नहीं भासता जैसे बीज में वृक्ष होता है तैसे ही मन में जगत् स्थित होता है और जैसे वृक्ष बीजरूप है, तैसे ही जगत् मन रूप है । जब जगत् नष्ट हो तब मन भी नष्ट हो जावेगा और मन नष्ट हो तब दृश्य भी नष्ट होगी-एक के अभाव हुए दो का अभाव हो जाता है-मन नष्ट हो तो फुरना भी नष्ट हो और फुरना नष्ट हो तो मन भी नष्ट होता है । हे रामजी! जगत् के भीतर बाहर जो हो भासता है वही मन है । इससे जब मन को स्थित करके देखोगे तब जगत् की सत्यता न भासेगी । अज्ञानी के हृदय में जगत् दृढ़ स्थित है इससे वह दुःख पाता है । जैसे बालक को अपनी परछाहीं में भूत भासता है तिससे वह दुःख पाता है ।जो निकट है उसको नहीं भासता इससे वह दुःख नहीं पाता । हे रामजी! यह जगत् कुछ सत्य हो तो ज्ञानवान् को भी भासता पर ज्ञानी को नहीं भासता इससे जगत् कुछ वस्तु नहीं हे । जैसे एक ही स्थान में दो पुरुष बैठे हों और एक को निद्रा आवे तो उसको स्वप्न का जगत् भासता है और नाना प्रकार की चेष्टा होती है पर दूसरा जो जागता है उसको उसका जगत् नहीं भासता, तैसे ही जो पुरुष परमार्थसत्ता में जागा है उसको जगत् शून्य भासता है । हे रामजी यह जगत् मिथ्या है, उसकी तृष्णा तुम काहे को करते हो-अपने स्वभाव में स्थित हो रहो । यह जगत् परस्वभाव है-ऐसे जानकर चाहे जैसी चेष्टा करो तुमको बन्धन न करेगी और पूर्वपद की प्राप्ति होगी । जैसे अग्नि से जले सूखे तृण को पवन उड़ा ले जाता है और नहीं जाना जाता कि कहाँ गया, तैसे ही ज्ञानरूपी अग्नि से जलाया और निरहंकारतारूप पवन ससे उड़ाया हुआ संसाररूपी तृण न जाना जायगा कि कहाँ गया? जैसे लाख योजन पर्यन्त चला जावे तो भी यही दृष्टि आता है कि आकाश ही सब सृष्टि को धार रहा है, तैसे ही सब दृश्य जगत् को आत्मा धारता है । संसार का शब्द अर्थ आत्मा में कोई नहीं, इसको छोड़कर देखो कि सर्व शब्द का अधिष्ठान आत्मा ही है । हे रामजी! रूप, अवलोक और मनस्कार मिथ्या उदय हुए हैं-इनका त्याग करो । जैसे

मरुस्थल में जलाभास मिथ्या है तैसे ही आत्मा में जगत् मिथ्या भ्रममात्र है । इसके सम्बन्ध से जीव दुःखी होता है । जैसे रस्सी में सर्प और सीपी में रूपा मिथ्या है, तैसे ही आत्मा में जगत् है । तुम आत्मब्रह्म हो, दुःख से रहित अपने स्वभाव में स्थित हो और आत्मदृष्टि से देखो कि सर्व आत्मा है, अथवा जगत् को मिथ्या जानो तो भी शेष आत्मपद ही रहेगा । जैसे जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति के अभाव हुए शान्तरूप शेष रहता है, तैसे ही जगत् का अभाव निश्चय हुए आत्मपद शेष भासेगा । इस जगत् का अत्यन्ताभाव है और जो दृष्टि आता है सो भ्रम मात्र है ।जो एक काल में होता है वह दूसरे काल में नष्ट हो जाता है । स्वप्न में जाग्रत का अभाव हो जाता है और जाग्रत में स्वप्न में स्वप्न का अभाव हो जाता है पर सुषुप्ति में दोनों का अभाव हो जाता है इससे वे भ्रममात्र हैं, विश्व आत्मा का चमत्कार है । जैसे समुद्र में तरंग होते हैं तैसे ही आत्मा में जगत् है । अहन्ता से यह उदय होता है और अहन्ता के अभाव हुए अभाव हो जाता है । जिनको अहन्ता का अभाव निश्चय हुआ है वे ही सन्त और उत्तम पुरुष हैं, उन महानुभाव पुरुषों का अभिमान और भोगों की आशा नष्ट हो जाती है वे निर्भान्तिरूप नित्य ही समाधिरूप होते हैं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मैकताप्रतिपादनन्नाम शताधिकत्रिषष्टितमस्सर्गः ।।163।।

अनुक्रम

वृत्तान्तयोगोपदेश

रामजी बोले, हे भगवन्! यह मनरूपी मृग संसाररूपी वन में भटकता है वह समाधानरूप कौन वृक्ष है जिसके नीचे आकर शान्त हो? उसके फूल, फल और लता कैसे हैं और वह वृक्ष कहाँ होता है । सो कृपा करके कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिस प्रकार समाधानरूप वृक्ष उत्पन्न होता है सो सुनो । इसके पत्र, पुष्प और लता आदि सब साधनरूप हैं । हे रामजी! यह वृक्ष सब जीवों को कल्याण के निमित्त साधने योग्य है अब तुम उसका क्रम सुनो । आत्मिक बल से तो यह उत्पन्न होता है और सन्तजनों के हृदय में यह होता है, चित्तरूपी पृथ्वी मे लगता है और वैरागरूपी इसका बीज है । वैराग दो प्रकार से प्राप्त होता है- एक तो दुःख और कष्ट प्राप्त होने से वैराग उपज आता है, दूसरे शुद्ध निष्काम हृदय होता है तो भी वैराग उपजता है । उस वैरागरूपी बीज को जब चित्तरूपी भूमिका में डालते हैं, निर्वासनारूपी हल फेरते है और सन्तों की संगति और सत््शास्त्ररूपी जल जो निर्मल, शीतल और हृदयगम्य है मनरूपी क्यारी में पड़ता है तब उस वृक्ष के बढ़ने की आशा होती है । बहुत जल से भी उसकी रक्षा करते हैं, आत्मविचाररूपी सूर्य की किरणों से सुखाते हैं और उसके चहुँफेर धैर्यरूपी बाड़ी करते हैं और तप, दान, तीर्थ, स्नान रूपी चौतरे पर उस बीज को रखके बैठते हैं कि जल न जावे और आशारूपी पक्षी से रक्षा करते हैं कि वैरागरूपी बीज को काढ़ न ले जावे और अभिलाषारूपी बूढ़े बैल से रक्षा करते हैं कि क्षेत्र में प्रवेश करके उसको मर्दन न करे उसके निमित्त सन्तोष और सन्तोष की स्त्री मुदिता दोनों बैठा रखते हैं और इस बीज का नाशकर्ता कुहिरा जो मेघ से उपजता है उससे भी रक्षा करते हैं । संपदा, धन और सुन्दर स्त्रियों का प्राप्त होना ही वैरागरूपी बीज का नाशकर्ता ओला है । इसकी रक्षा का एक सामान्य उपाय पर दया करना और शास्त्र का पाठ और जाप करना इत्यादिक शुभ क्रियारूपी यन्त्र की पुतली इसके विद्यमान रखिये तो सब विघ्न दूर हो जाता है । दूसरा परम उपाय यह है कि सन्तों की संगति करके सत् शास्त्रों का सुनना, प्रणव जो ँकार है उसका ध्यान और जप करना और उसका अर्थ विचारना यही त्रिशूलरूप ओलों के नाश का परम उपाय है । जब इतने शत्रुओं से रक्षा करे तब उस बीज की उत्पत्ति हो । सन्तों के संग और सत््शास्त्रों के विचाररूपी वर्षाकाल के जल से सींचिये तब अंकुर निकलता है और बड़ा प्रकाश होता है । जैसे द्वितीया के चन्द्रमा को सब कोई प्रणाम करता है तैसे ही सन्तोष, दया और यशरूपी अंकुर निकलता है । उनके दो पत्र निकलते हैं-एक वैराग, दूसरा विचार और वे दिन प्रतिदिन बढ़ते जाते हैं । शास्त्रों से जो सुना है कि आत्मा सत्य है और जगत् मिथ्या है उसका बारम्बार अभ्यास करना चाहिये । इस जल के सींचने से वे अंकुर दिन प्रतिदिन बढ़ते जावेंगे और उनके थम्भ बड़े होंगे । हे रामजी! जब डालें बड़ी होती हैं तब रागद्वैषरूपी वानर उनपर चढ़कर तोड़ डालते हैं उसने इस वृक्ष को दृढ़ वैराग, सन्तोष और अभ्यासरूपी रस से पुष्ट करना योग्य है । जैसे सुमेरु पर्वत है तैसे ही सन्तोष से पुष्ट करना । जब ऐसे होगा तब उसमें सुन्दर पत्र, डालें, फूल और मञ्जरी लगेंगी, बड़े मार्गपर्यन्त इसकी छाया होगी और शान्ति, शीतलता, कोमलता, दया, यश और कीर्ति इत्यादिक गुण प्रकट होंगे । उसके नीचे मनरूपी मृग विश्राम पाकर शीतल होता है और आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक ताप मिट जाते हैं और परम शान्ति पाता है । हे रामजी! यह मैंने तुमसे समाधानरूपी वृक्ष कहा है । जहाँ यह वृक्ष उत्पन्न होता है उस स्थान की शोभा कही नहीं जाती और जो इस वृक्ष की शरण जाता है उसके ताप मिट जाते हैं और शान्तिमान् होता है । यह वृक्ष ब्रह्मरूपी आकाश के आश्रय बढ़ता है और वैराग्यरूपी रस और सन्तोषरूपी छाल से पुष्ट होता है । जो

पुरुष इसका आश्रय लेगा सो शान्तिमान् होगा । हे रामजी! जबतक मनरूपी मृग इस समाधानरूपी वृक्ष का आश्रय नहीं लेता तबतक भटकता फिरता है, शान्ति नहीं पाता । जैसे मृग वन में भटकता है तैसे ही मनमृग भटकता है और द्वैत, अज्ञान और प्रमादरूपी वधिक मारने लगते हैं उससे दुःख पाता है । जब भय से इन्द्रियरूपी गाँववासियों के निकट जाता है तब वे आप ही इसको देखकर पकड़ लेते हैं अर्थात् विषयों की ओर खींचते हैं और उससे बड़ा कष्ट पाता है। इनके भय से जब फिर वन में जाता है तो वहाँ विषय की अप्राप्तिरूपी तपन से दुःखी होता है । जब उसको भी त्यागकर रसरूपी स्थानों को शान्ति के निमित्त दौड़ता है तो कामरूपी श्वान मारने को दौड़ता है- और उसके भय से जब फिर वैरागरूपी वन की ओर धावता है तब क्रोधरूपी अग्नि जलाती है वासनारूपी मच्छर दुःख देते हैं और लोभ और मोहरूपी अँधेरी में अन्धा हो जाता है । निदान पुत्र और धनरूपी हरेहरे तृणों को देखकर ग्रहण करता है तब गढ़े में गिर पड़ता है । वह गढ़ा तृण से ढँपा हुआ है सो तृण पुत्र धन है तिनको सुन्दर देख तब ममतारूपी गढ़े में गिर पड़ता है । इस प्रकार दुःख पाता है । हे रामजी! जब मनुष्य झूठ बोलता है तब मृत्तिका में लौटते की सी चेष्टा करता है और जब मनरूपी भेड़िया आता है तब उसको भक्षण कर जाता है । जब समाधानरूपी वृक्ष से जीव विमुख होता है तब इतने कष्ट पाता है और जब मनरूपी भेड़िये से छूटता है तब आशारूपी जंजीर में बन्धवान् होता है, निदान जबतक इस वृक्ष के निकट नहीं आता है तबतक बड़े कष्टस्थानों को जाता है । तमाल वृक्षादिक के तले भी जाता है और कण्टक के वृक्षों के तले भी जाता है परन्तु शान्त मान् किसी स्थान में नहीं होता-बड़े बड़े कष्टों को ही पाता है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे हरिणोपाख्याने वृत्तान्तयोगोपदेशो नाम शताधिकचतुःषष्टितमस्सर्गः ||164||

अनुक्रम

मनमृगोपाख्यानयोगोपदेश

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार मूढ़ बुद्धमनरूपी हरिण भटकता है । इससे मेरा यही आशीर्वाद है कि तुमको उस वृक्ष का संग हो । जब उस वृक्ष के निकट जीव जाता है तब शान्ति होती है और जब इसके नीचे आ बैठता है तब तीनों ताप अन्तःकरण से मिट जाते हैं । जितने विषयरूप वृक्ष हैं उनके निकट मनरूपी मृग शान्ति नहीं पाता पर जब समाधानरूपी वृक्ष के निकट आता है तब शान्ति पाता है और बुद्धि खिल आती है-जैसे सूर्यमुखी कमल सूर्य को देखकर खिल आता है । उस वृक्ष के अनुभवरूपी फल और शास्त्र के विचाररूपी पत्र और फूलों को देखकर वह बड़े आनन्द को पाता है और उस वृक्ष के ऊपर चढ़ जाता है और पृथ्वी का त्याग करता है । जैसे सर्प अपनी पुरानी कञ्चुकी का त्याग करता है और नूतन सुन्दर शरीर से शोभता है । जब उस वृक्ष पर चढ़ता है तब गिरता नहीं, क्योंकि उसके पत्र बहुत बली हैं- उनके आश्रय ठहरता है । समाधानरूपी वृक्ष के सत्शास्त्ररूपी पत्र हैं । जब समाधान रूपी वृक्ष से उतरता है तब शास्त्र के अर्थ में ठहरता है और जितने पदार्थ देखता है वे उसे क्षारवत् दृष्ट आते हैं और अपनी पिछली चेष्टा को स्मरण करके पछताता है । जैसे कोई मद्यपान करके उसमें नीच चेष्टा करे तो जब मद उतरता है तब पछताता है तैसे ही मनरूपी मृग अपनी पिछली चेष्टा को धिक्कार करता है और कहता है कि बड़ा आश्चर्य है जो मैं इतने काल इस वृक्ष से विमुख हुआ भटकता रहा-अब मुझको शान्ति हुई है । जैसे दिन की तपन के अभाव हुए से चन्द्रमुखी कमलिनी को शान्ति होती है तैसे ही मनरूपी मृग को शान्ति होती है । हे रामजी! पुत्र, धन, स्त्री आदिक जो दीखते हैं उनको वह संकल्पपुर और स्वप्नवत् देखता है । जैसे स्वप्नसे जागकर कोई स्वप्नपुर को स्मरण करता है परन्तु उसमें अभिमान नहीं होता तैसे ही उनमें भी अभिमान नहीं होता । जब जीव अनुभवरूपी फल को पान करता है तब बड़े आनन्द पाता है जिसको वाणी नहीं कह सकती और शान्त निर्मल और निरतिशयपद को प्राप्त होती है । जो मन का विषय हो सो अतिशयपद है और जो मन का विषय नहीं वह निरतिशयपद है । जो इन्द्रियों का विषय है उनका नाश भी होता है और जो इन्द्रियों और मन का विषय नहीं उसका नाश नहीं होता । वह उसी अविनाशी पद को पाता है जैसे किसी को बाण लगता है और उसकी विरोधी बूटी उसके सम्मुख रखिये तो निकल आता है तैसे ही अनुभवरूप बूटी के सम्मुख हुए मोह बन्धनरूपी शर खुल पड़ते हैं और परमपद पाता है । हे रामजी! ज्ञानवान् जगत् से मृतक हो जाता है, उसको संसार का कुछ लेप नहीं लगता । जैसे लकड़ी बिना अग्नि शान्त हो जाती है तैसे ही वासना से रहित ज्ञानवान् की चेष्टा शान्त हो जाती है अर्थात् संसार की सत्यता से रहित चेष्टा होती है और फिर संसाररूपी अग्नि नहीं उदय होती । तब द्वैत और एक कल्पना भी मिट जाती है और उन्मत्त की नाईं अपने स्वरूप में घूर्म रहता है जैसे मरुस्थल का मार्ग चलने वाला धूप की इच्छा नहीं करता- तैसे ही ज्ञानी विषयों की तृष्णा नहीं करता । जिसने आत्म अनुभवरूपी अमृत पान किया है उसको विषयरूपी काँजी की इच्छा नहीं रहती-वह पुरुष सदा निर्वासनिक है । जब जीव निर्वासनिक होता है तब चञ्चल जो मन की वृत्ति है सो सब लीन हो जाती है और केवल आत्मत्वमात्र पद रहता है `मैं' `मेरा' इत्यादि भावना नष्ट हो जाती है जब तक चित्त का सम्बन्ध होता है तबतक `मैं' और `मेरा' भासता है और जब चित्त का सम्बन्ध मिट जाता है तब एक हो जाता है । जैसे एक सूखा काष्ठ होता है और एक गीला काष्ठ होता है, सूखा तो शुद्ध कहाता है और गीला उपादिक कहाता है और जब जल सूख गया तब वह भी शुद्ध होता है, तैसे ही जबमन की उपाधि नष्ट होती है तब शुद्ध आत्मा ही रहता है और एकरस

भासता है । हे रामजी! संसार द्वितीयभ्रम से भासता है । जैसे पत्थर की शिला में पुतली अनउपजी ही भासती हैं सो न सत् है और न असत् हैं, यदि पत्थर से भिन्न करके देखिये तो सत् नहीं और जो शिला में देखिये तो वे ही रूप हैं, तैसे ही जगत् आत्मा से भिन्न नहीं और आत्मसत्ता में आत्मरूप है । जैसे छोटे बालक के हृदय में जगत् का शब्द अर्थ नहीं होता, तैसे ही ज्ञानी की चेष्टा भी प्रारब्धवेग से होती है और उसके हृदय में जगत् के शब्द अर्थ का अभाव है । हे रामजी! जो कुछ प्रारब्ध होता है सो अवश्य प्राप्त होता है, मिटता नहीं शुभ हो अथवा अशुभ हो । जैसे मेघ से गिरती हुई बूँद नहीं नष्ट होती मेघ मन्त्रशक्ति से नष्ट होता है तैसे ही प्रारब्धकर्म उसका भी नष्ट नहीं होता परन्तु वह उसमें बन्धायमान् नहीं होता । अज्ञानी के हृदय में संसार सत्य भासता है और भिन्न भिन्न पदार्थ संयुक्त भासता है, क्योंकि उसे पदार्थों की सत्यता है पर ज्ञानी के हृदय में आत्मा का ज्ञान है उसको संसार की सत्यता नहीं भासती । हे रामजी! यह जो समाधानरूपी वृक्ष मैंने तुमसे कहा है उसकी विधि संयुक्त सेवा करने से अनुभवरूपी फल प्राप्त होता है और जो बोध से रहित होकर सेवन करता है तो अनेक यत्न से भी फल की प्राप्ति नहीं होती, क्योंकि उसे ऐसी भावना नहीं कि आत्मा शुद्ध है और सत्ििचत्त आनन्द है । जिनको यह भावना प्राप्त होती है उनको भोगों की इच्छा नहीं रहती । जैसे किसी ने अमृत पान किया हो तो अमल और कटुक फल की वाञ्छा नहीं करता तैसे ही ज्ञानी किसी की इच्छा नहीं करता । जैसे रुई के फाहे को अग्नि लगे और ऊपर से तीक्ष्ण पवन चले तो नहीं जाता कि कहाँ जा पड़ा, तैसे ही जगत्ूपी रुई का फाहा ज्ञान अग्नि से दग्ध किया हुआ और वैरागरूपी पवन से उड़ाया नहीं जाना जाता कि कहाँ जा पड़ा । तब आकाश ही आकाश भासता है और जगत् सत्य नहीं भासता तो फिर तृष्णा किसकी करे-तब वह तृष्णा से रहित स्थित होता है । हे रामी! दुःख का मूल तृष्णा है, तृष्णा ही से भटकता है । जैसे जब तक पर्वतों के पंख थे तबतक वे उड़ते थे पंख बिना उड़ने से रहित होकर गम्भीर स्थित हो रहे हैं, तैसे ही जब मन से वासना नष्ट होती है तब मन स्थिर हो जाता है । हे रामजी! वाञ्छितदेश को पथिक तब जा प्राप्त होता है जब एक देश का त्याग करता है, तैसे ही शुद्धस्वरूप परमानन्द अपना आप आत्मा तब प्राप्त होता है धन व लोक और पुत्र एषणा का त्याग करे । जब आत्मा की प्राप्ति होती है तब निर्विकल्पसमाधि से शुद्ध चैतन्य का साक्षात्कार होता है और जब समाधि से उसका साक्षात्कार होता है तब उत्थान हुए भी उसी में स्थिर रहता है, परम निर्वाणपद को प्राप्त होता है और चित्तरूपी बेलि दूर हो जाती है जैसे रस्सी में जो बल होता है तो उसको खैंचकर फिर छोड़ते हैं तब वह सीधी हो जाती है तैसे ही जिसको समाधि में चैतन्य का साक्षात्कार होता हे उसको उत्थानकाल में भी वही भासता है और जिसको उसका प्रमाद है उसको जगत् भासता है । हे रामजी! वस्तु एक है परन्तु उसमें दो दृष्टि हैं । जैसे रस्सी एक है पर सम्यक्् दर्शी को रस्सी भासती है और असम्यक््दर्शी को सर्प हो भासता है, तैसे ही ज्ञानवान् को आत्मा भासता है और अज्ञानी को जगत् भासता है । जिस पुरुष ने ज्ञान से जगत् को असत्य नहीं जाना वह मानो चित्र की अग्नि है उससे कोई कार्य सिद्ध नहीं होता- और जिसको स्वरूप की इच्छा है- और जो तृष्णा के नाश करने का प्रयत्न करता है और जगत् को मिथ्या विचारता है वह आत्मपद को प्राप्त होगा और उसकी तृष्णा भी निवृत हो जावेगी । हे रामजी! ज्ञानवान् की तृष्णा स्वाभाविक मिट जाती है । जैसे सूर्य के उदय हुए अन्धकार मिट जाता है तैसे ही वस्तु की सत्ता पाकर उसकी तृष्णा नष्ट हो जाती है और परमपद में स्थित होता है । हे रामजी! जिसको दृश्य में निरसता है वह उत्तम पुरुष है, वह मनुष्य शरीर पाकर ब्रह्म होता है, उसको मेरा नमस्कार है और वह मेरा गुरु है । हे रामजी! जब जीव की बुद्धि विषय से विरस होती है तब कल्याण

होता है । वैराग से बोध होता है और बोध से वैराग होता है, क्योंकि परस्पर दोनों सम्बन्धी हैं । जब एक आता है तब दूसरा भी आता है । जबयह आते हैं तब तीनों एषणा निवृत्त हो जाती हैं और जब तीनों एषणा नष्ट होती हैं तब अमृत की प्राप्ति होती है । हे रामजी! सन्तों के संग और सत्ृशास्त्रो को सुन करके स्वरूप का अभ्यास करो- इससे आत्मपद की प्राप्ति होती है । यह तीनों परस्पर सहकारी हैं । जैसे आठ पाँववाला कीट प्रथम चरण को रखकर और चरण को रखता है तब सुख से चला जाता है, तैसे ही सन्तो के संग और सत्शास्त्रों के सुनने से जो आत्मपद का अभ्यास करता है वह शीघ्र ही आत्मपद को प्राप्त होता है और उसे जगत् का अभाव हो जाता है । हे रामजी! जगत् के भाव और अभाव को ज्ञानी जानता है । जैसे जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति को तुरीयवाला जानता है, तैसे ही जगत् के भाव अभाव को ज्ञानी जानता है । जैसे अग्नि में सूखा तृण डाला तृष्टि नहीं आता, तैसे ही ज्ञान वान् को जगत् नहीं दृष्टि आता । हे रामजी! ज्ञानवान् को सर्वदा समाधि है, कदाचित् उत्थान नहीं होता । जबतक उस पद को प्राप्त न हो तबतक साधना में लगा रहे और जब उस पद को प्राप्त हो तब फिर कोई यत्न नहीं रहता । हे रामजी! इस चित्त के दो प्रवाह हैं एक तो जगत् की ओर जाता है और दूसरा स्वरूप की ओर जाता है । जो जगत् की ओर जाता है सो उपाधि है और जो स्वरूप की ओर जाता है सो उपाधि को दूर करने वाला है । जैसे एक लकड़ी गीली और एक सूखी होती है, जो गीली है उसमें उपाधि जल है सो फैल जाता है और जब जल नष्ट हो जाता है तब वह शुद्ध होती है फिर प्रफुल्लित नहीं होती, तैसे ही संसार की सत्यता से चित्त वृद्ध होता है और जब संसार की वासना नष्ट होती है तब शुद्धपद पाता है । हे रामजी! वाद जो करते हैं सो दो प्रकार के हैं, जो वाद किसी को दुःख दे उसे मूर्ख करते हैं और जो परस्पर मित्रभाव से निरूपण तत्त्व का करे सो ज्ञानवान् करते हैं । जैसा जो वाद करते हैं उसका उन्हें दृढ़ अभ्यास होता है और तैसा ही रूप हो जाता है । जो झगड़ा करते हैं उनका वही रूप हो जाता है और जो मित्रता से स्वरूप का वाद करते हैं तो वही रूप होता है-उस पद को पाकर परम शान्ति होती है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मनमृगोपाख्यानयोगोपदेशोनाम शताधिकपञ्चषष्टितमस्सर्गः ॥165॥

अनुक्रम

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्ध समाप्तम ।

श्रीगणेशाय नमः ।

श्रीयोगवाशिष्ठ निर्वाणप्रकरण उत्तरार्द्ध प्रारम्भ

स्वभावसत्तायोगोपदेश

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिस पुरुष ने समाधानरूपी वृक्ष के फल को जानकर पान किया है और उसको पचाया है उसे परम स्थिति प्राप्त होती है । जैसे पंख टूटे से पर्वत स्थित हो रहे हैं तैसे ही तृष्णारूपी पंख के टूटे से जीव स्थित होता है । हे रामजी! जब उसको फल प्राप्त होता है तब उसका चित्त भी आत्मरूप हो जाता है जैसे दीपक निर्वाण होता है तब जाना नहीं जाता कि कहाँ गया, तैसे ही आत्मपद के प्राप्त हुए चित्त भिन्न होकर दिखाई नहीं देता । हे रामजी! जबतक वह अकृत्रिम आनन्द

प्राप्त हुआ और उस पद में विश्राम नहीं पाया तबतक शान्ति प्राप्त नहीं होता । वह पद निर्गुण शुद्ध स्वच्छ और परम शान्त है जब उस पद में स्थिति होती है तब परम समाधि हो जाती है । ऐसा त्रिलोकी में कोई नहीं जो उसको उतारे । जैसे चित्र की मूर्ति होती है तैसे ही उसकी अवस्था होती है और उसकी सब चेष्टा इच्छा से रहित होती है । जैसे पंख से रहित पर्वत स्थित होता है तैसे ही मन अमन हो जाता है और शान्तिपद को प्राप्त होता है । हे रामजी! जिसके मन में संसार का अभाव हुआ है वह शान्तिपद को प्राप्त होता है और जो वासनासंयुक्त है तो मन है । जिस क्रम और युक्ति से वासना क्षय हो सो ही कर्त्तव्य है । हे रामजी! जब वासना क्षय होती है तब बोधरूप शेष रहता है, इस लिये जिस क्रम से वह प्राप्त हो वही किया चाहिये क्योंकि उस पद के प्राप्त हुए बिना शान्ति कदाचित् न होगी । जब चित्त उस पद की ओर आवे तब शान्त होकर दुःख से रहित और अविनाशी हो, क्योंकि सर्व आत्मा निर्विभाग, अनन्त परम शान्तिरूप और सबको कर्म के फल का देनेवाला है । हे रामजी! जब ऐसे पद को जीव प्राप्त होता है तब उसको उत्थानकाल में भी आत्मा ही भासता है द्वैत नहीं भासता तो समाधि से उत्थान कैसे हो? ऐसा कोई समर्थ नहीं कि उसको समाधि से उतारे । जब ऐसा पद प्राप्त होता है तब संसार विरस हो जाता है । हे रामजी! जबतक मूर्तिवत् नहीं होता तबतक विषय का त्याग करे और जब ऐसी दशा हो तब कुछ कर्तव्य नहीं रहता त्याग करे अथवा न करे । यह मुझे निश्चय है कि जब ज्ञान उपजेगा तब विषयों से विरक्त हो जावेगा । ब्रह्मा से आदि काष्ठपर्यन्त जितने पदार्थ हैं वे सब उसको विरस हो जाते हैं । ऐसा जो पुरुष है उसको सदा समाधि है । हे रामजी! जिसको समाधि का सुख आता है वह स्वाभाविक समाधि की ओर आता है । जैसे वर्षाकाल की नदी स्वाभाविक समुद्र को जाती हैं तैसे ही वह पुरुष समाधि की ओर लगा रहता है । जो पुरुष विषयों से निरिच्छित और आत्मारामी होता है, उसकी वज्रसार की नाईं स्थिति होती है । जैसे पंख से रहित पर्वत होते हैं तैसे ही जिस पुरुष ने संसार को विरस जानकर त्याग किया है और आत्मा में क्रीड़ा करके तृप्त हुआ है उसका ध्यान चलायमान नहीं होता । हे रामजी! जिस पुरुष की चेष्टा भी होती है पर संकल्प विकल्प से रहित है वह सदा मुक्तरूप है, उसको कोई क्रिया बन्धन नहीं करती, क्योंकि क्रिया और साधन का अभाव हो जाता है । जिस पुरुष को जगत् विरस हो गया है उसको विषयों की तृष्णा कैसे हो और जब तृष्णा न रही तब दुःख कैसे हो? दुःख तबतक होता है जबतक विषयों की तृष्णा होती है और विषयों की तृष्णा तब होती है जब अपने स्वभाव को त्यागता है । हे रामजी! जब अपने स्वभाव में स्थित हो तब परस्वभाव जो इन्द्रियों के विषय हैं सो रससंयुक्त कैसे भासें और दुःख और तृष्णा कैसे हो? हे रामजी! जब अपने स्वभाव को जानता है तब निर्वाणपद को प्राप्त होता है जो आदि और अन्त से रहित है तिसकी प्राप्ति का उपाय यह है कि वेदान्त का अध्ययन करना और प्रणव का जप करना । जब इने थके तब समाधि करे और जब फिर थके तब वहीं जा मनन करे । जब ऐसे दृढ़ अभ्यास हो तब उस पद को प्राप्त होवेगा जो संसार का पार है और जब उसको पाया तब परमशान्ति को प्राप्त होवेगा और स्वच्छ निर्मल अपने स्वभाव में स्थित होवेगा ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे स्वभावसत्तायोगोपदेशोनाम शताधिकषट्षष्टितमस्सर्गः ||166||

अनुक्रम

मोक्षोपदेश

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह संसार बड़ा गम्भीर है और इसका तरना कठिन है जिसको इससे तरने की इच्छा हो उसको यह कर्तव्य है कि वेदान्त का अध्ययन, प्रणव का जाप और चित्त को स्थित करे । जब ऐसा उपाय करे तब ईश्वर उस पर प्रसन्न होंगे और उसके हृदय में विवेक उत्पन्न होगा जिससे संसार असत्य भासेगा और सन्त जनों का संग प्राप्त होगा जिनका शुभ आचार है और परमशीतल और गम्भीर ऊँचे अनुभवरूपी फलसंयुक्त वृक्ष हैं और यश, कीर्ति और शुभ आचाररूपी फूल और पत्रों सहित हैं । ऐसे सज्जनों की संगति जब प्राप्त होती है तब जगत् के रागद्वेषरूपी तम मिट जाते हैं जैसे किसी मजूर के शिर पर भार हो और तपन से दुःखी हो पर जब वृक्ष की शीतल छाया प्राप्त हो तब शीतल होता है और फल के भक्षण से तृप्त होता है और थकान का कष्ट दूर हो जाता है तैसे ही सन्तों के संग से सुख को प्राप्त होता है । जैसे चन्द्रमा की किरणों से शीतल होता है तैसे ही सन्तजनों के वचनों से शान्ति होती है । हे रामजी! सन्तजनों की संगति किये से पाप दग्ध हो जाते हैं जो पुरुष सकाम तप, यज्ञ और व्रत करते हैं उसकी संगति न कीजिये, क्योंकि वे ऐसे हैं जैसे यज्ञ का थम्भा जो पवित्र भी होता है परन्तु उसकी छाया कुछ नहीं इससे उसके नीचे कोई सुःख नहीं पाता । हे रामजी! सब सकाम कर्म जन्म मरण देनेवाले हैं । यद्यपि यज्ञ, व्रत और तप जिज्ञासु भी करते हैं तो भी उनसे विशेष हैं क्योंकि निष्काम हैं । उनके विषयों में विरसता है और उनका शुभ आचार है । हे रामजी! ऐसे जिज्ञासु की संगति विशेष हैं जिसकी चेष्टा की सब कोई स्तुति करता है और जो सबको सुखदायक भासता है । जो जिज्ञासु नवनीतवत् कोमल, सुन्दर और स्निग्ध होता है उसको सन्तों की संगति प्राप्त होती है । फूलों के बगीचे और सुन्दर फूलों की शय्या आदिक विषयों से भी ऐसा निर्भय सुख नहीं प्राप्त होता जैसा निर्भय सुख सन्तों की संगति से प्राप्त होता है, क्योंकि उनका निश्चय सदा आत्मा में रहता है । हे रामजी! ऐसे ज्ञानवानों की संगति करके जब हृदय शुद्ध होता है तब आत्मतत्त्व की प्राप्ति होती है और जबतक हृदय मलिन है तबतक प्राप्ति नहीं होती । जैसे उज्ज्वल आरसी प्रतिबिम्ब को ग्रहण करती है और लोहे की शिला प्रतिबिम्ब को नहीं ग्रहण करती, तैसे ही जब हृदय उज्ज्वल होता है तब सन्तो के वचन हृदय में ठहरते हैं । और जैसे वर्षाकाल का बादल थोड़े से बहुत हो जाता है तैसे ही जब हृदय शुद्ध होता है तब बुद्धि बढ़ती जाती है । जैसे वन में केले का वृक्ष बढ़ता जाता है तैसे ही बुद्धि बढ़ती जाती है । जब आत्मविषयिणी बुद्धि होती है तब वही रूप हो जाता है और बुद्धि की भिन्नसंज्ञा का अभाव हो जाता है । जैसे लोहे को पारस का स्पर्श होता है तब सुवर्ण हो जाता है और फिर लोहे की संज्ञा नहीं रहती तैसे ही आत्मपद की प्राप्ति हुए बुद्धि की संज्ञा नहीं रहती और विषयभोग की तृष्णा भी नहीं रहती । हे रामजी! विषयों की तृष्णा और अभिलाषा ने जीव को दीन किया है, जब तृष्णा का त्याग करे तब परम निर्मलता को प्राप्त होता है । जैसे हस्ती शिर पर मृत्तिका डालता है तबतक मलीन है और जब नदी में प्रवेश करता है तब निर्मल हो जाता है तैसे ही जब जीव तृष्णारूपी राख का त्याग करता है और आत्मा में स्थित होता है तब निर्मल होता है । हे रामजी! जब भोगों की इच्छा त्यागता तब बड़ी शोभा धारता है । जैसे सुवर्ण को अग्नि में डालने से उसका मैल जल जाता है और उज्ज्वल रूप धारता है । हे रामजी! भोगरूपी बड़ा विष है, उसको दिन-दिन त्याग करना विशेष है । जब तृष्णा का त्याग करता है तब अति शोभता है । जैसे राहु दैत्य से रहित हुआ चन्द्रमा शोभा पाता है तैसे ही तृष्णा के वियोग हुए पुरुष शोभता है । हे रामजी! जब भोगों से वैराग होता है तब दो पदार्थों की प्राप्ति होती है । जैसे नूतन

अंकुर के दो पत्र होते हैं तैसे ही तृष्णा के त्याग से एक तो सन्तों की संगति और दूसरा सत्‌्शास्त्रों का विचार उत्पन्न होता है और उनमें जब दृढ़ भावना होती है तब अभ्यास करके वही परमानन्दरूप होता है जिसको वाणी की गम नहीं । तब भोगों की इच्छा से मुक्त होता है और परमशान्त सुख पाता है । जैसे पिंजरे से निकल कर पक्षी सुखी होता है तैसे ही वह सुखी होता है । हे रामजी! जीव को भोग की इच्छा ने ही दीन किया है जब इच्छा निवृत्त होती है तब गोपद की नाईं संसार समुद्र को लाँघ जाता है तब उसको तीनों जगत् सूखे तृण की नाईं भासते हैं । हे रामजी! जब वह भोग की इच्छा से मुक्त होता है तब ईश्वर होता है । हे रामजी! जब वह भोग की इच्छा से मुक्त होता है तब ईश्वर होता है । जिस पुरुष को आत्मसुख प्राप्त हुआ है वह भोगों की इच्छा कदाचित् नहीं करता और जब वे आन प्राप्त होते हैं तब भी उसको विरस और मिथ्या भासते हैं इससे उनके भोग को नहीं चाहता जैसे जाल से निकला हुआ पक्षी फिर जाल को नहीं चाहता तैसे ही वह पुरुष भोगों को नहीं चाहता । जब विषयों की तृष्णा निवृत्त होती है तब परम शोभा पाता है और सन्तों के वचन उसके हृदय में शीघ्र ही प्रवेश करते हैं । हे रामजी! मोक्षरूपी स्त्री के कानों के भूषण सन्तों की संगति हैं, जब साधु की संगति होती है तब अशुभ क्रिया का त्याग हो जाता है और बिराने धन की इच्छा नहीं रहती । तब जो कुछ अपना होता है उसका भी त्यागने की इच्छा होती है और भले भोग जो भोगने के निर्मित आते हैं उनको विभाग देकर खाता है । निदान बड़े उत्तम भोगों से लेकर साग पर्यन्त जो कुछ प्राप्त होता है उसमें से देकर खाता है । जब ऐसे हुआ तब यदि कोई शरीर माँगे तो शरीर भी देता है, क्योंकि उसको देने का अभ्यास हो जाता है पर और से साग माँगने की भी इच्छा नहीं रखता । संतोष से यथाप्राप्त चेष्टा और तप, दान करता है यज्ञ, व्रत और ध्यान करके पवित्र रहता है और तृष्णा का त्याग करता है । हे रामजी! ऐसा दुःख क्रूर नरक में भी नहीं होता जैसा दुःख तृष्णा से होता है । जो धनवान् हैं उनको धन के उपजाने की चिन्ता है, रखने की चिन्ता है और उठते-बैठते, खाते-पीते, चलते, सोते सदा धन की ही चिन्ता रहती है । इस ही चिन्ता में वे पचिपचि मर जाते हैं और फिर जन्मते हैं । हे रामजी! निर्धन को भी चिन्ता रहती है परन्तु थोड़ी होती है । जबतक चिन्ता रहती है तबतक दुःखी रहता है पर जब चिना नष्ट होती तब परम सुखी होता है । हे रामजी! यद्यपि धनी हो और उसे संतोष नहीं तो वह परम दरिद्री है और जो धन से हीन है परन्तु संतोषवान् है वह ईश्वर है । जिसको संतोष है उसको विषय बन्धन नहीं कर सकते । हे रामजी! जबतक धन की इच्छा नहीं की तबतक भोगरूपी विष नहीं लगता और जब धन की इच्छा उपजती है तब परम विष लगता है, विपरीत भावना में दुःख होता है और जो दुःखदायक पदार्थ हैं उनको सुखदायक जानता है । हे रामजी! जो कुछ अर्थ है वही अनर्थ है, जिसको संपदा जाना है वही आपदा है और जिनको भोग जाना है वही सब रोगरूप हैं । इनको संपदा जानकर बिचरता है इससे बड़ा दुःखी होता है । हे रामजी! रसायन सब दुःख नाश करती है परन्तु वह देवताओं के पास होती है । यदि अमृतृ चाहिये तो संतोष परम रसायन है । जब विषयों में दोषदृष्टि होती है और संतोष धारण करता है तब मूर्खता दूर हो जाती है और गोपद की नाईं संसारसमुद्र से शीघ्र ही तर जाता है । जैसे गोपद को सुगम ही लंघ जाते हैं तैसे ही संसारसमुद्र को वह सुगम तर जाता है । हे रामजी! जिसको संतोष प्राप्त होता है उसको परम शान्ति होती है । कदाचित वसन्तऋतु भी सुख का स्थान हो, नन्दनवन भी सुख का स्थान हो, उर्वशी आदिक अप्सरा हों, चन्द्रमा विद्यमान बैठा हो, कामधेनु विद्यमान हो और इन्द्रियों के सब सुख विद्यमान हों तो भी शान्ति न होगी परन्तु एक संतोष से ही शान्ति होगी । संतोषवान् को यह विषय चला नहीं सकते । हे रामजी! जैसे अर्घा भरभर छोड़ने से लाभ नहीं भरा जाता और जब मेघ के जल की

वर्षा होती है तब शीघ्र ही भर जाता है, तैसे ही विषय के भोगने से शान्ति नहीं होती पर संतोष से पूर्ण आनन्द और ओज की प्राप्ति होती है । गम्भीर, निर्मल, शीतल हृदयगम्य और सबका हितकारी ओज संतोषी पुरुषों को प्राप्त होता है । और जो ओज हैं वे सात्त्विकी, राजसी और तामसी होते हैं पर यह शुद्ध सात्त्विकी हैं । जिस पुरुष को संतोष होता है वह ऐसे शोभता है जैसे वसन्तऋतु का वृक्ष, फल और पत्रों से शोभा पाता है और जिसको तृष्णा है वह चरणों के नीचे आये कीटवत् मर्दन होता है । हे रामजी! जिसको तृष्णा है उसको संतोष और शान्ति कदाचित् नहीं होती । जैसे जल में डाला तृणों का पूला तीक्ष्ण पवन से बड़े क्षोभ को प्राप्त होता है तैसे ही तृष्णा वान् पुरुष को क्षोभ होता है । हे रामजी! जो पुरुष अर्थ के निमित्त सदा इच्छा करता है वह अग्नि में प्रवेश करता है अर्थात् सर्वदा काल तपता रहता है और जैसे गर्दभ विष्ठा के स्थान में प्रवेश करता है तैसे ही तृष्णावान् जो विषयरूपी स्थान में प्रवेश करता है सो गर्दभ के साथ स्पर्श करना योग्य नहीं तैसे ही तृष्णावान् गर्दभ से स्पर्श करना योग्य नहीं है । हे रामजी! यह संसार मिथ्या है, जो इस संसार के पदार्थों को चाहता है वह मूर्ख है । इस जगत् के अधिष्ठान के प्राप्त होने से निर्वासनिक होता है और जब निर्वासनिक होता है तब संतोष को प्राप्त होता है । तब ऐसा होता है जैसे तारों में चन्द्रमा शोभा पाता है- इससे इच्छा के नाश करने का उपाय करो हे रामजी! जब इच्छा नष्ट होती है और संतोषरूपी गम्भीरता प्राप्त होकर द्वैत कलना मिटती है तब उसी को पण्डित परमपद कहते हैं । यह पद कैसे प्राप्त होता है सो भी श्रवण करो । हे रामजी! जब संसार से वैराग, सन्तों की संगति और सत्शास्त्रों के अर्थों और आत्मा में दृढ़भावना होती है तब जगत् विरस हो जाता है अर्थात् जगत् असत् भासता है हृदय में शान्ति होती है, आपको ब्रह्म जानता है और परिच्छिन्नता मिट जाती है । जब तक आपको परिच्छिन्न जानता था तबतक सब दुःखों का अनुभव करता था और जब सन्तों की संगति और सत्शास्त्रों से जगत् विरस हुआ तब परमपद को प्राप्त होता है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मोक्षोपदेशो नाम शताधिक- सप्तषष्टितमस्सर्गः ॥167॥

अनुक्रम

विवेकदूत वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब संसार से वैराग होता है तब सन्तों की संगति होती है, फिर शास्त्र सुनता है तब सम्पूर्ण जगत् विरस हो जाता है । जब जगत् विरस हुआ और आत्मा में दृढ़ अभ्यास हुआ तब अपनी स्वभावसत्ता प्रकाशित होती है, उसी स्वभावसत्ता में स्थित हुए परमानन्द की प्राप्ति होती है जिसमें वाणी की गम नहीं । हे रामजी! जब यह अवस्था प्राप्त होती है तब मन अमन हो जाता है, अर्थों की तृष्णा नहीं रहती, जो अपने पास होता है उसको रखने की इच्छा नहीं रहती-सहज त्याग हो जाता है-और पुत्र, धन, स्त्री आदिक सब विरस हो जाते हैं । यद्यपि वह इनके बीच भी रहता है तो भी इनमें `अहं' `मम' अभिमान नहीं करता । जैसे मजदूर किसी मार्ग में आ उतरता है और मार्गवाले से कुछ सम्बन्ध नहीं रखता तैसे ही वह किसी विषय से सम्बन्ध नहीं रखता । और जो अनिच्छित इन्द्रियों के सुख प्राप्त होते हैं उनमें रागद्वेष नही करता । जैसे किसी पत्थर की शिला पर जल चला जाता है तो उसको कुछ रागद्वेष नहीं होता, तैसे ही ज्ञानवान् को रागद्वेष किसी में नहीं होता । हे रामजी! उसके शरीर की यह स्वाभाविक अवस्था हो जाती है कि वह एकान्त को चाहता है और वन और कन्दरा में रहने की इच्छा करता है । मुमुक्षु को अज्ञान के स्थान स्त्रीभोग, राग-द्वेष के इष्ट - अनिष्ट भी जो दैवसंयोग से प्राप्त होते हैं तो भी शीघ्र ही त्याग देता है । हे राम जी! क्षेत्र में बीज डालना होता है तब पहले जो काँटा आदि होते हैं उन्हें फड़ुवे से काटकर दूर किया जाता है तब खेत अच्छा और सुन्दर फलता है, तैसे ही जिस पुरुष को मनरूपी क्षेत्र में अनुभवरूपी फल देखना हो सो इच्छारूपी कण्टक और वृक्षों को अनिच्छारूपी फड़ुवे से काटे और संतोषरूपी बीज को बोये तो क्षेत्र भी सुन्दर फलेगा । हे रामजी! जब अनुभवरूपी फल प्राप्त होता है तब मनुष्य सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से भी स्थूल हो जाता है और सर्व आत्मा होकर स्थित होता है । हे रामजी! जब चित्त अदृश्य होता है तब द्वैत भावना मिट जाता है और जब द्वैत भावना मिटी तब चित्त अदृश्यता को प्राप्त होता है । उस चित्त को जो उपशम का सुख होता है सो वाणी से कहा नहीं-जाता-उसका नाम निर्वाणपद है । जब ईश्वर की भक्ति करता है और दिनरात्रि चिरकाल पर्यन्त भक्ति करता रहता है तब ईश्वर प्रसन्न होता है-और निर्वाणपद की प्राप्ति है । रामजी ने पूछा, हे भगवन् सर्वतत्त्व वेत्ताओं में श्रेष्ठ! वह कौन ईश्वर है और उसकी भक्ति क्या है जिसके करने से निर्वाणपद को प्राप्त होता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वह ईश्वर दूर नहीं, उसमें भेद भी कुछ नहीं और दुर्लभ भी नहीं, क्योंकि अनुभव ज्योति है और परमबोध स्वरूप है । सर्व जिसके वश है, जो सर्व है और जिससे सर्व है उस सर्वात्मा को मेरा नमस्कार है । हे रामजी! सब कोई उसी को पूजते हैं । जाप, मन्त्र, तप, दान, होम जो कुछ कोई करता है सो सर्व ही उसको पूजते हैं । देवता, दैत्य, मनुष्य, जो कुछ स्थावर-जंगम जगत् है वे सब उसी को पूजते हैं और सबको फल देनेवाला भी वही है । उत्पत्ति और प्रलय में जो पदार्थ भासते हैं वे सब उसी से सिद्ध होते हैं-ऐसा वह ईश्वर है । जब उस ईश्वर की प्रसन्नता होती है तब वह अपना एक दूत, जो शुभक्रिया संयुक्त पवित्र है भेजता है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्, ईश्वर जो अद्वैतआत्मा शुद्धब्रह्म है उसका दूत कौन है और वह कैसे आता है सो मुझे कहिये । वशिष्ठजी ने कहा, हे रामजी! वह ईश्वर जो परमदेव है उसका दूत विवेक है और हृदयरूपी गुफा में उदय होता है । जब वह उदय होता है तब उससे परम शोभा प्राप्त करता है । जैसे चन्द्रमा के उदय हुए आकाश शोभा पाता है तैसे ही वह पुरुष शोभा पाता है । हे रामजी! जब विवेकरूपी दूत आता है तब जीव को संसार से पवित्र करता है । प्रथम वासनारूपी मैल से

भरा था और चिन्तारूपी शत्रु ने बाँधा था पर जब विवेकरूपी दूत आता है तब चित्तरूपी शत्रु को मारता है और वासनारूपी मैल को नाश करके देवके निकट ले जाता है । जब उस देव का दर्शन होता है तब परमानन्द को प्राप्त होता है और बड़ा सुख पाता है । हे रामजी! संसार रूपी समुद्र में मृत्युरूपी भँवर है, तृष्णारूपी तरंग है, अज्ञानरूपी जल है और इन्दियाँरूपी तेंदुये ग्राह हैं । उसी समुद्र में यह जीव पड़े हैं । जब विवेकरूपी नौका अकस्मात् प्राप्त होती है तब संसारसमुद्र से पार होते हैं । हे रामजी! जीव प्रमाद से ही जड़ता को प्राप्त हुए हैं । जैसे जल शीतलता से ओले की संज्ञा को पाता है तैसे ही प्रमाद से जीवसंज्ञा पाता है और वासना से ढप गया है पर अन्तर्मुख होता है तब उस देव के सम्मुख होता है और वह देव प्रसन्न होता है । उसके सहस्त्रशीश, सहस्त्रपाद, सहस्त्रभुजा, सहस्त्रनेत्र और सहस्त्रकर्ण हैं । सर्वचेष्टा को वही करता है और देखता, सुनता, बोलता और चलता भी वही है और अपने स्वभावसत्ता से प्रकाशता है । जैसे सब देहों में चलनाशक्ति पवन की है तैसे ही प्रकाशशक्ति उस देव की है । जब जीव उसके सम्मुख होता है तब वह प्रसन्न होके विवेकरूपी दूत भेजता है तब इसको सन्त की संगति होती है और सत्् शास्त्रों को सुनकर उसके अर्थ में दृढ़भावना होती है और वह विवेकरूपी दूत इसको अदृश्यता में प्राप्त करता है तब यह शून्य हो जाता है । फिर यह शून्य को भी त्यागकर बोधमात्र में स्थित होता है तब पूर्ण आनन्द प्राप्त होता है । हे रामजी! जीव आनन्द स्वरूप है और यह विश्व भी अपना आप है परन्तु अज्ञान से भिन्न भासता है । जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा, मरुस्थल में जल और आकाश में तरवरे भासते हैं तैसे ही भ्रान्ति से जगत् भासता है पर भूतों के भीतर बाहर और अधः ऊर्ध्व में सब ब्रह्मदेव ही व्याप रहा है और स्थावर, जंगम आदि सब जगत् उसी आत्मतत्त्व के आश्रय फुरता है, इससे वहीस्वरूप है और वही सबको धार रहा है । वही ईश्वर ब्रह्म है और गम्भीर, साक्षी, आत्मा, ॐकार, प्रणव, सब उसी के नाम हैं । जब ऐसे ईश्वर की कृपा होती है तब जीव अन्तर्मुख होकर निर्मल होता है । हे रामजी! जब हृदय शुद्ध होता है तब आत्मपद की ओर भावना होती है कि सब आत्मा ही है । जब यह भावना होती है सो ही भक्ति है-तब वह ईश्वर कृपा करके विवेकरूपी दूत भेजता है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विवेकदूतवर्णनं नाम शताधिकाष्टषष्टितमस्सर्गः ||168||

अनुक्रम

सर्वसत्तोपदेश

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब विवेक की दृढ़ता होती है तब जीव उस परमपद को प्राप्त होता है जो चैत्य से रहित चैतन्य घन है। तब चैत्य का सम्बन्ध टूट जाता है। जब चैत्य का सम्बन्ध टूटा तब विश्व का क्षय हो जाता है, जब विश्व क्षय हुआ तब वासना भी नहीं रहती। हे रामजी! यह जगत् भी फुरने से है। जब जीव शुद्ध चैतन्य में चैत्योन्मुखत्व होता है तब मनोमात्र शरीर होता है जिसको अन्तवाहक कहते हैं और जब वासना की दृढ़ता होती है तब आधिभौतिक भासने लगता है। हे रामजी! इसका उत्थान ही अनर्थ का कारण है, जब यह चेतन होता है तब इसको अनर्थ की प्राप्ति होती है और मैं-मेरा इत्यादिक जगत् भासि आता है, जो यह न हो तो जगत् भी न हो, इसके होने से ही जगत् भासता है। इससे मेरा यही आशीर्वाद है कि तुम चेतनता से शून्य हो जाओ और अहन्तारूपी चेतनता से रहित अपने बोधमें स्थित रहो। हे रामजी! मन से ही जगत् हुआ है सो मन और जगत् दोनों मिथ्या और शून्य हैं। रूप अवलोक और मनस्कार तीनों का नाम जगत् है सो मृगतृष्णा के जलवत् मिथ्या शून्य है। जब इनका अभाव होता है तब शून्य भी नहीं रहता केवल बोधमात्र चैतन्य होता है। हे रामजी! दृश्य, दर्शन और दृष्टा ये तीनों भावनामात्र हैं, जब ये होते हैं तब जगत् भासता है और जब अहन्ता का अभाव होता है तब आत्मपद शेष रहता है। जैसे सुवर्ण में भूषण होते हैं तैसे ही आत्मा में जगत् है दूसरी वस्तु कुछ नहीं बनी। वासना से दृश्य भासता है सो वासना मन से फुरी है और मन अज्ञान से हुआ है। जब मन अमन पद को प्राप्त होता है तब दृश्य सब एक ही रूप हो जाती है। जब तक वासना उठती है, तबतक मन में शान्ति नहीं होती। जैसे कोई पुरुष भँवरी घुमाता है तो बल चढ़ते जाते हैं और जब ठहरता है तब वह बल उतर जाता है, तैसे ही जब तक चित्त वासना करके भ्रमता है तबतक जन्मरूपी बल चढ़ते जाते हैं और जब चित्त ठहरता है तब जन्म का अभाव हो जाता है। हे रामजी! जबतक चित्त का दृश्य के साथ सम्बन्ध है तब तक कर्म से नहीं छूटता और जब चित्त का दृश्य से सम्बन्ध टूटता है तब शुद्ध अद्वैतपद को प्राप्त होता है। हे रामजी! जब शुद्धचिन्मात्र में उत्थान होता है तब उसका नाम चैत्यौ न्मुखत्व होता है, वही अहन्ता दृश्य की ओर फुरती जाती है तब प्रमाद हो जाता है- और जड़ता होती है। जैसे जल ओला हो जाता है तैसे ही चित्तशक्ति प्रमाद से जड़ हो जाती है। जब दृढ़ वासना ग्रहण करता है तब अन्तवाहक से आधिभौतिक अपना शरीर दृढ़ आता है, फिर पृथ्वी आदिक भूत भासने लगते हैं और ज्यों-ज्यों चित्तशक्ति बहिर्मुख फुरती जाती है त्यों त्यों संसार होता जाता है जब चित्तवृत्ति फुरने से रहित होकर अपने स्वरूप की ओर आती है तब अपना आप ही भासता है, द्वैत मिट जाता है और परमानन्द अद्वैतपद भासता है। जब पूर्णबोध होता है तब द्वैत और एक संज्ञा भी जाती रहती है केवल आत्मत्वमात्र शुद्ध चैतन्य रहता है और ईश्वर से एकता होती है और जगत् की भास जाती रहती है। जब उस पद की प्राप्ति होती है तब दृश्य का अभाव हो जाता है क्योंकि जगत् भावनामात्र है। जैसे भविष्यकाल का वृक्ष आकाश में हो तैसे ही यह जगत् है, क्योंकि इसका अत्यन्त अभाव है- कुछ बना नहीं, भ्रान्ति करके भासता है। हे रामजी! मेरे वचनों का अनुभव तब होगा जब स्वरूप का ज्ञान होगा और तभी ये वचन हृदय में फुरेंगे। जैसे कथावाले के हृदय में कथा के अर्थ फुरते हैं तैसे ही मेरे ये वचन आन फुरेंगे। हे रामजी! जबतक मन फुरता है तबतक जगत् का अभाव नहीं होता और जब मन उपशम होता है तब जगत् का अभाव हो जाता है जैसे स्वप्न को जब स्वप्ना जानता है तब फिर स्वप्न के पदार्थों की इच्छा नहीं करता पर जबतक सत्य जानता है तबतक

इच्छा करता है । हे रामजी! सब जीव वासना से ढँपे हुए हैं । जब वासना का क्षय होता है उसी का नाम ज्ञान है । अज्ञानरूपी भूत इनको लगा है इससे उन्मत्त होकर जगत् भासता है और जगत् के भासने से नाना प्रकार की वासना दृढ़ हो गई है उससे दुःख पाते हैं । जब यह चित्त उलटकर अन्तर्मुख हो और आत्मा में दृढ़ भावना करे तब ज्ञानरूपी मन्त्र प्राप्त होता है और अज्ञानरूपी भूत जाता रहता है । हे राम जी! अनुभवरूपी कल्पवृक्ष में जैसी भावना होती है तैसा ही भान होता है । हे रामजी! प्रथम इसका शरीर अन्तवाहक था और अपना स्वरूप भूला न था इससे आपको आत्मा ही जानता था और जगत् अपना संकल्पमात्र भासता था । जब उस संकल्प में दृड़ भावना हुई तब वह शरीर आधिभौतिक भासने लगा और जब उसमें दृढ़भावना हुई तब देह और इन्द्रियाँ सब अपने में भासने लगीं तो इनके सुख-दुःख को जानने लगा और जब जगत् के सुख दुःख भासे तब सर्व आपदा प्राप्त हुई पर वास्तव में न कोई सुख है, न दुःख है और न जगत् है केवल भावना मात्र है । जैसी चित्त की भावना होती है तैसे ही आगे भासता है । हे रामजी! जब यह भावना उलटकर अन्तर्मुख आत्मा की ओर होती है तब एकही बोध का भान होता है और जब एक बोध का भान होता है तब सब द्वैत मिट जाता है । हे रामजी! आत्मा में अन्तवाहक भी नहीं है । यह जो ब्रह्मा है वह भी बोधस्वरूप है, यदि बोध से भिन्न अन्तवाहक कुछ होता तो भासता । अन्तवाहक भी उसी से है-अन्तवाहक शुद्धचिन्मात्र में चैत्योन्मुख होना और चित्तशक्ति फुर रहने का नाम है । जब उसका पञ्चतन्मात्रा का सम्बन्ध होता है तो यही जड़-चेतन ग्रन्थि है । चित्तशक्ति चेतन है और पञ्चतन्मात्रा जड़ है-इनके इकट्ठा होने का नाम अन्तवाहक शरीर है । यदि यह भी आत्मा में कुछ हुआ होता तो ये वचन न होते-इससे चिन्मात्र है, कुछ बना नहीं, क्योंकि आत्मा अद्वैत है । हे रामजी! दूसरा कुछ बना नहीं पर भ्रम से द्वैत भासता है, तैसे ही यह जाग्रत भी भ्रान्ति से भासता है कुछ है नहीं । हे रामजी जब है नहीं तो किसकी इच्छा करता है? इतना सुख इन्द्रियों के इष्टभोग से नहीं होता जितना इनके त्यागने से होता है । हे रामजी! एक यज्ञ है जिसके किये से पुरुष परमपद को प्राप्त होता है पर वह यज्ञ तब होता है जब एक थम्भा गड़े और उसके नीचे बलि करे । जब यज्ञ कर चुके तब सर्व त्याग करना होता है । तब फल की प्राप्ति होती है । इस क्रम के किये बिना यज्ञ सफल नहीं होता । सो वह थम्भा क्या है, बलि क्या है, यज्ञ क्या है त्याग क्या है और फल क्या है सो श्रवण करो । हे रामजी! ध्यानरूपी तो थंभा गाड़े कि आत्मपद का सदा अभ्यास हो और उसके आगे तृष्णारूपी बलि करे और ज्ञानरूपी यज्ञ करे- अर्थात् आत्मा के जो नित्य, शुद्ध, बोधरूप, अद्वैत, निर्विकल्प, देह, इन्द्रियाँ, प्राण आदिक से रहित इत्यादिक विशेषण वेदशास्त्र में कहे हैं ऐसे जानने का नाम ज्ञान है । यही यज्ञ है । ध्यानरूपी थम्भ, तृष्णा-रूपी बलि और मनरूपी दृश्य को जीतकर यह यज्ञ पूर्ण होता है । जब ऐसा यज्ञ समाप्त होता है तब उसके पीछे दक्षिणा भी चाहिये तब यज्ञ का फल हो । सर्वस्व देना ही दक्षिणा है सो अहंकार त्याग करना ही सर्वस्व त्याग है । जब सर्वस्व त्याग होता है तब यह यज्ञ सफल होता है । इसका नाम विश्वजीत यज्ञ है । जब इस प्रकार यज्ञ होता है तब इसका फल भी होता है-सो फल यह है कि यद्यपि अंगारों की वर्षा हो प्रलयकाल का पवन चले और पृथ्वी आदिक तत्त्व नाश हों तो ऐसे क्षोभों में भी चलायमान नहीं होता । यह फल प्राप्त होता है कि कदाचित् स्वरूप से नहीं गिरता-यह शत्रुनाश वज्र ध्यान है । हे रामजी! अहन्ता का त्याग करना सबसे श्रेष्ठ त्यागी है । जो कार्य अहन्ता के त्याग किये से होता है सो और उपाय से नहीं होता और तप, दान, यज्ञ, दमन, उपदेश इन उपाधियों से भी अहन्ता का त्याग करना बड़ा साधन है, और सर्व साधन इसके अन्तर हैं । हे रामजी! जब तुम अहन्ता का त्याग करोगे तब तुमको भीतर बाहर ब्रह्मसत्ता ही भासेगी और द्वैतभ्रम सम्पूर्ण मिट जावेगा

हे रामजी! मन के सब अर्थरूपी तृणों को ज्ञानरूपी अग्नि लगाइये और वैराग्यरूपी वायु से जगाइये । जब इन तृणों को भस्म कर डालो तब तुम परम शान्ति को प्राप्त होगे । मन के जलाने से परम संपदा प्राप्त होती है-इससे भिन्न सब आपदा है । मन उपशम करने में कल्याण है । यह जो भीतर बाहर नाना प्रकार के पदार्थ भासते हैं सो मन के मोह से उत्पन्न हुए हैं, जब मन उपशम को प्राप्त हो तब नाना प्रकार जो भूतों की संज्ञा है अर्थात् मनुष्य, पशु, पक्षी देवता, पृथ्वी आदिक सो सब आकाशरूप हो जाते हैं । हे रामजी! यह सर्व ब्रह्म है, ज्ञानी को एकसत्ता भासती है, क्योंकि दूसरा कुछ बना नहीं भ्रम से जगत् भासता है । उसमें जब नाना प्रकार की वासना होती है तो अपनी अपनी वासना के अनुसार जगत् को देखता है । इससे तुम जागो और वासना के पिंजरे को काटकर आत्मपद को प्राप्त हो रहो । हे रामजी! अज्ञान से जो आत्मपद की तरफ से सोये पड़े हैं और वासना के पिंजरे में पड़े हैं उन अज्ञानियों की नाईं तुम न होना । अज्ञान से जीव का नाश होता है, जो कुछ जगत् देखते हो सो भ्रममात्र है । जैसे बाँसुरी में पवन का शब्द होता है तैसे ही यह भी प्राणवायु से बोलते दृष्टि आते जानो । जगत् भ्रममात्र हैं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सर्वसत्तोपदेशो नाम शताधिकनवषष्टितमस्सर्गः ||169||

अनुक्रम

सप्तप्रकारजीवसृष्टिवर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सम्पूर्ण जगत् में सप्त प्रकार की सृष्टि है और सात ही भाँति के जीव हैं उनको भिन्न-भिन्न सुनो । एक स्वप्न जाग्रत् के हैं दूसरे संकल्प जाग्रत् के हैं, तीसरे केवल जाग्रत् के हैं, चौथे फिर जाग्रत् के हैं, पञ्चम दृढ़ जाग्रत के हैं, छठे जाग्रत् स्वप्न के हैं और सप्तम क्षीण जाग्रत् के हैं । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आपने जो यह सात प्रकार की सृष्टि कही सो बोध के निमित्त मुझसे खोलकर कहिये । यह ऐसे है जैसे नदियों के जल का समुद्र में अभेद हो और उसका पूछना भी ऐसे ही है जैसे एक जल में फेन, बुद्बुदे और तरंग वायु से होते हैं इसलिये विस्तार से कहो । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! एक यह है कि किसी जीव को किसी कल्प में अपनी जाग्रत् में सुषुप्ति हुई और उसमें जो स्वप्ना हुआ तो उसको हमारी जाग्रत् का जगत् भासि आया और वह उसको शब्द अर्थ संयुक्त सत् जानकर ग्रहण करने लगा तो उसके स्वप्न में हम स्वप्न नर हैं परन्तु उसके निश्चय में नहीं, क्योंकि वह अपना जाग्रत मानता है पर हमारा और उसका कल्प एक हो गया है इसी से वह भी जाग्रत जानता है और पूर्वकल्प में भी उसका शरीर चैतन्य फुरता था परन्तु सोया पड़ा है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जब वह पुरुष अपने कल्प में जागे तब यह उसको क्या भासता है और जब वह जागे नहीं और वहाँ कल्प का प्रलय हो तब उसकी क्या अवस्था हो? एवं यदि यहाँ ज्ञान की प्राप्ति हो तो उस शरीर की क्या अवस्था हो सो क्रम करके कहो । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यदि वह पुरुष अपने कल्प में जागे तो यह जाग्रत उसको स्वप्ना भासे और जो वहाँ न जागे और उस कल्प का प्रलय हो तो वह जीव वहीं चेष्टा करे । यदि ज्ञान की प्राप्ति हो तो उस शरीर और इस शरीर की वासना इकट्ठी होकर निर्वाण हो और जो ज्ञान न प्राप्त हो तो उस शरीर को त्यागकर और जगत् भ्रम भास आवे । आपको पूर्ववत् जाने चाहे न जाने परन्तु जगत््भ्रम बिना ज्ञान नहीं मिटता । हे रामजी! यह और वह दोनों तुल्य हैं, ब्रह्मसत्ता सब ठौर समान प्रकाशती है हे रामजी! जैसे गूलर में मच्छर होते हैं तैसे ही ये जीव भ्रम से फुरते हैं । यह जाग्रत कहीं और स्वप्न में जो जाग्रत है उसका नाम स्वप्न जाग्रत है । पुरुष बैठा हो और चित्त की वृत्ति ठहर जाय पर निद्रा नहीं आई उसमें जो मनोराज हुआ और उस मनो- राज में जगत् होके उसी में दृढ़ वासना हो गई और पूर्व की वासना विस्मरण हुई, यह सत् भासी और उसमें मनोराज का शरीर भासा वही आधिभौतिकता दृढ़ हो गई उसका नाम संकल्प जाग्रत आदि परमात्मतत्त्व से फुरा और आत्मा में जो जगत् भासित हुआ उसको संकल्पमात्र जाना उसका नाम केवल जाग्रत है । आदि परमात्मतत्त्व से फुरता हुआ, उसमें सृष्टि हुई और उसको सत् जानकर ग्रहण किया, स्वरूप का प्रमाद हुआ और आगे जन्मान्तर को प्राप्त हुआ उसका नाम चिरजाग्रत् है । जब इसमें दृढ़ घनभूत वासना हुई और पापकर्म करने लगा उसके वश से स्थावर योनि पाई तो उसका नाम घनजाग्रत और सुषुप्तजाग्रत है । जब घनजाग्रत् और सुषुप्तजाग्रत् है । जब इसमें सन्तों की संगति और सत््शास्त्रों के विचार से बोध प्राप्त हुआ तब यह जाग्रत् उसको स्वप्न हो जाती है उसका नाम स्वप्न जाग्रत् है । जब बोध में दृढ़ स्थित हुई तब उसको तुरीयापद कहते हैं-इसका नाम क्षीणजाग्रत् है । जब इस पद को प्राप्त होता है तब परमानन्द की प्राप्ति होती है । हे रामजी! ये सात प्रकार के जीव और सृष्टि मैंने तुमसे कही है । इनको विचार करके देखो तो तुम्हारा भ्रम निवृत्त हो जावे । यह भी क्या कहना है कि यह जीव है और यह सृष्टि है, सर्व ब्रह्मसत्ता है, दूसरा कुछ हुआ नहीं, मन के फुरने से दृश्य करके देखो

तो सब शून्य हो जावेगी और शून्य भी न रहकर शून्य का कहना भी न रहेगा–इस गिनती को भी विस्मरण करो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सप्तप्रकारजीवसृष्टिवर्णनंन्नाम शताधिकसप्ततितमस्सर्गः ||170||

अनुक्रम

सर्वशान्त्युपदेश

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आपने जो केवल जाग्रत की उत्पत्ति अकारण , अकर्मक और बोध मात्र में कही सो असम्भव है–जैसे आकाश में वृक्ष नहीं हो सकता तैसे ही आत्मा में सृष्टि नहीं हो सकती क्योंकि आत्मा निराकार है और निष्क्रिय है, वह न समवायकारण है और न निमित्तकारण है । जैसे मृत्तिका घट आदिक का कारण होती है तैसे ही आत्मा सृष्टि का समवायकारण भी नहीं, क्योंकि अद्वैत है और जैसे कुलाल घटादिक का निमित्तकारण होता है तैसे आत्मा सृष्टि का निमित्त कारण भी नहीं, क्योंकि अक्रिय है । उस कारण और अकर्मक में सृष्टि कैसे हो सकती है?वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुम धन्य हो और अब तुम जागे हो । आत्मा में सृष्टि का अत्यन्त अभाव है, क्योंकि वह निर्विकार और निष्क्रिय है । वह न भीतर है, न बाहर है, न ऊर्ध्व हे, न अधः है, केवल बोधमात्र है और उसमें न कोई आरम्भ है और न परिणाम है, केवल बोधमात्र अपने आपमें स्थित है । जैसे सूर्य की किरणों में जल कल्पित है, तैसे ही आत्मा में जगत्ृमिथ्या है । हे महा बुद्धिमान्! आत्मा अकारणरूप है उसमें कार्यरूप जगत् कैसे हो? उसमें जगत् कुछ नहीं उत्पन्न हुआ । उसके अभाव से सबका अभाव है, न कुछ उपजा है, न भास होता है, उपदेश और उसका अर्थ आरोपित है और कुछ है ही नहीं । आरोपित शब्द भी जिज्ञासु के जताने के निमित्त कहा है, है कुछ नहीं, आत्मा सदा अद्वैतरूप है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो आत्मा में सृष्टि है ही नहीं तो पिण्डाकार कैसे भासते हैं! उनको किसने रचा है और मन, बुद्धि, इन्द्रियों का भान क्यों होता है? चैतन्य को स्नेह (और राग) से किसने मोहित किया है और आत्मा में आवरण कैसे होता है? सो मुझे समझाकर कहिये । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! न कोई पिण्ड है, न किसी ने इनको किया है, न कोई भूत है न किसी ने इनको मोहित किया है और न किसी को आवरण किया है, भ्रान्ति से आवरण भासता है । जो आत्मा को आवरण होता तो किसी प्रकार नष्ट भी होता परन्तु आवरण भी नहीं तो नष्ट कैसे होवे? हे रामजी! जिसको आवरण होता है उसका स्वरूप एक अवस्था को त्यागकर दूसरी अवस्था को ग्रहण करता है पर आत्मा तो सदा ज्ञानस्वरूप है इससे अन्य अवस्था को कदाचित् नहीं प्राप्त होता सदा ज्यों का त्यों है । उसमें मन, बुद्धि आदिक भी कुछ नहीं बने तब मोह कहाँ और आवरण कहाँ? सदा एकरस आत्मतत्त्व है, ज्ञानी को ऐसे भासता है और अज्ञानी को नाना प्रकार का जगत् भासता है । वह आत्मा ज्ञानकाल में और अज्ञानकाल में एकरस है पर उसमें दो दृष्टि होती हैं, ज्ञानदृष्टि से तो सर्व आत्मा है और अज्ञान से नाना प्रकार का जगत भासता है । हे रामजी! जैसे एक समुद्र से अनेक तरंग और बुद्बुदे उठते और लीन होते हैं पर उनका उत्पन्न और लीन होना जल में है, जल से भिन्न कुछ नहीं, तैसे ही जितने विचार और इच्छा भासते हैं सो सब आत्मा में होते हैं और दूसरी वस्तु नहीं । विकार और अविकार सब परमात्मतत्त्व है । समुद्र में लहरें और बुदबुदे परिणाम से होते हैं, आत्मा सदा ज्यों का त्यों है और नाना प्रकार के आकार भासते हैं सो भी वही रूप है । जैसे सुवर्ण में नाना प्रकार के भूषण होते हैं सो सब सुवर्ण ही हैं दूसरी वस्तु कुछ नहीं और भ्रान्ति से नाना प्रकार की संज्ञा होती है । जैसे कोई पुरुष जाग्रत् बैठा हो और नींद आने से स्वप्नसृष्टि भासे तो चाहे वह जाग्रत के अज्ञान से स्वप्नसृष्टि भासी हो पर जब निद्रा निवृत्त होती है तब जाग्रत ही भासती है सो जाग्रत् भी परमात्मतत्त्व के अज्ञान से भासती है । जब उस पद में जागोगे तब जाग्रत भ्रम निवृत्त हो जावेगा । हे रामजी! यह संसार अपने फुरने से हुआ है । जब फुरना दृढ़ हुआ तब दुःख पाने लगा ।जैसे बालक अपनी परछाहीं में वैताल कल्पकर आप ही दुःख पाता है । जब आत्मबोध होता है तब संसारभ्रम निवृत्त हो जाता है । हे रामजी! यह संसार जो रससंयुक्त भासता है सो भावनामात्र है । जब

यही भावना उलटकर आत्मा की ओर आवे तब जगत्‌भ्रम मिट जावेगा । देह, इन्द्रियादिक जो आत्मा के अज्ञान से फुरे हैं- और उनमें अहंकार हुआ है सो आत्मभावना से निवृत्त हो जावेगी । जैसे वर्षाकाल में मेघ घन होते हैं और जब शरत्‌काल आता है तब नष्ट हो जाते हैं तैसे ही जब बोध रूपी शरत्‌ काल आता है तब अनात्म में आत्म अभिमानरूपी मेघ नष्ट हो जाता है और परम स्वच्छता प्रकट होती है । हे रामजी! जितना जगत् पिण्डरूप होकर भासता है सो जब आत्मा का साक्षात्कार होगा तब पिण्डबुद्धि जाती रहेगी और सब जगत् आकाशरूप हो जावेगा । जैसे शरत्काल में मेघ की घनता जाती रहती है और आकाशरूप हो जाता है । हे रामजी! यह भ्रान्ति तबलग है जबतक स्वरूप से सुषुप्तिवत् है, जब जागेगा तब जगत् सब आकाशरूप हो जावेगा । जैसे स्वप्न से जागकर स्वप्न जगत् आकाशरूप हो जाता है । हे रामजी! यह विकार, क्षोभ और नानात्व प्रमाद भासते हैं, जब आत्मबोध होता है तब सब क्षोभ और विकार मिट जाते हैं और सर्व प्रपञ्च एकता को प्राप्त होकर द्वैतभाव मिट जाता है । जैसे प्रज्ज्वलित अग्नि में घृत अथवा ईंधन और मिष्ठानजो कुछ डालिये सो एक रूप हो जाता है, तैसे जब बोध की प्राप्ति होती है तब सब जगत् एकरूप हो जाता है, और जैसे नाना प्रकार के भूषण अग्नि में डालिये तो एक सुवर्ण ही हो जाता है और भूषण की संज्ञा नहीं रहती तैसे ही मन को जब आत्मबोध में स्थित किया तब जगत्‌संज्ञा नहीं रहती केवल परमात्मतत्त्व हो जाता है । हे रामजी! इन्द्रियाँ और जगत् तबतक भासता है जबतक स्वरूप में सोया पड़ा है, जब जागेगा तब संसार की सत्यता मिट जावेगी और इच्छा भी कोई न रहेगी । जैसे किसी पुरुष को स्वप्ना आता है और जब उस स्वप्न से जागता है तब स्वप्न के स्मरण की इच्छा नहीं करता कि मुझको प्राप्त हो, क्योंकि उसकी सत्यता नहीं भासती तो इच्छा कैसे करे, तैसे ही जबतक स्वरूप से सोया पड़ा है तबतक संसार के पदार्थों को मिथ्या नहीं जानता, उनकी इच्छा करता है । जब तुम स्वरूप में जागोगे तब सब पदार्थ विरस हो जावेंगे और जब ज्ञान से जगत् को मिथ्या स्वप्नवत् जानोगे तब इच्छा भी न करोगे । हे रामजी! जीवन्मुक्त की चेष्टा सब दृष्टि आती है- परन्तु उसके हृदय में जगत् की सत्यता नहीं होती, क्योंकि उसको आत्मानुभव हुआ है । जैसे सूर्य की किरणों में जल भासता है पर जिसने सूर्य की किरणें जानी हैं उसको जल नहीं भासता किरणें ही भासती हैं और जिसने किरणें नहीं जानीं उसको जल भासता है । दृष्टि दोनों की तुल्य है परन्तु ज्ञानवान् के निश्चय में जगत् जलवत् नहीं और अज्ञानी को जगत् जलवत् दृढ़ भासता है । हे रामजी! मनरूपी दीपक प्रज्वलित है, उसमें ज्ञानरूपी जल डालिये तो निर्वाण हो जावे । जब मन निर्वाण होगा तब उस पद को प्राप्त होगे जहाँ जगत् और अहंकार का अभाव है, वह न शून्य है, न अशून्य है और केवल, अकेवल, उदय अस्त भी नहीं । हे रामजी! जो पुरुष ऐसे पद को प्राप्त हुआ है वह कृतकृत्य होता है और रागद्वेष से रहित परम शान्तिपद को प्राप्त होता है । उसका अहंकार निर्वाण हो जाता है और केवल निर्वाच्यपद को प्राप्त होता है जहाँ कोई उत्थान नहीं । हे रामजी! आत्मा में जगत् के पदार्थ कोई नहीं परन्तु मन के संकल्प से भासते हैं । जैसे थम्भे में चितेरा कल्पना करता है कि इतनी पुतलियाँ इस थम्भे में हैं सो उसके निश्चय में है, थम्भे में पुतलियों का अभाव है, तैसे ही मन के निश्चय में जगत् है, आत्मा में कुछ नहीं बना जिस पुरुष का मन सूक्ष्म हो गया है उसको जगत् स्वप्न भासता है, जब उसने स्वप्न जाना तब वह इच्छा और त्याग किसका करे । हे रामजी! जगत् तबतक भासता है जबतक स्वरूप का साक्षात्कार नहीं हुआ, जब आत्मानुभव होगा तब जगत्‌रस संयुक्त कदाचित् न भासेगा । जैसे धूप और छाया इकट्ठी नहीं होती तैसे ही ज्ञान और जगत् इकट्ठे नहीं होते आत्मज्ञान हुए जगत् का अभाव हो जाता है और जैसे पूर्वकाल वर्तमानकाल में नहीं होता, तैसे ही आत्मा में जगत् नहीं होता । हे

रामजी! यह जगत् भ्रम से भासता है और विचार किये से इसका अभाव हो जाता है । दृष्टा दर्शन-दृश्य जो त्रिपुटी भासती है सो भी मिथ्या है । जैसे निद्रा दोष से स्वप्न में तीनों भासते हैं और जागे से अभाव हो जाते हैं तैसे ही अज्ञान से ये भासते हैं और ज्ञान से त्रिपुटी का अभाव हो जाता है । हे रामजी मनोराज करके मन में जगत् स्थित होता है तैसे ही ये पर्वत, नदियाँ, देश, काल, जगत् भी जानो । इससे इस जगत् भ्रम का त्यागकर अपने स्वभाव में स्थित हो रहो । यह जगत् भ्रम से उदय हुआ है । विचार किये से नष्ट हो जावेगा और तुमको परमशान्ति प्राप्त होगी । हे रामजी! जिसका मन उपशमभाव को प्राप्त हुआ है, वह पुरुष मौनी है । वह निरोधपद को प्राप्त हुआ है और संसारसमुद्र से तरकर कर्मों के अन्त को प्राप्त हुआ है । उसको सम्पूर्ण जगत्, पहाड़, नदियाँ, संयुक्त लीन हो जाता है । अज्ञान के नष्ट हुए विद्यमान जगत् भी नष्ट हो जाता है, क्योंकि वह शान्ति से तृप्त है वह ज्ञानवान् निरावरण होकर स्थित होता है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सर्वशान्त्युपदेशो नाम शताधिकैकसप्ततितमस्सर्गः ||171||

अनुक्रम

ब्रह्मस्वरूपप्रतिपादन

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जिस क्रम से बोध आत्मा जगत्ूरूप हो भासता है सो क्रमभेद के निवृत्ति के अर्थ फिर मुझसे कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जितना जगत् दृष्टि आता है उसका चित्त में निश्चय होता है । ज्ञानवान् को भी चित्त से भासता है और अज्ञानी को भी चित्त से भासता है परन्तु इतना भेद है कि अज्ञानी जगत् को देखता है तब सत् मानता है और ज्ञानवान् शास्त्रयुक्ति से देखकर पूर्व अपर अर्थ के विचार से भ्रान्तिमात्र जानता है । यह जगत् अविद्या से भासता है सो अविद्या भी कुछ वस्तु नहीं । जैसे सूर्य की किरणों में जल भासता है सो कुछ है नहीं, तैसे अविद्या कुछ वस्तु नहीं है । जितना स्थावर जंगम जगत् भासता है सो कल्प के अन्त में नष्ट हो जाता है जैसे समुद्र से एक बूँद निकालिये तो नष्ट हो जाती है क्योंकि विभागरूप है तैसे ही माया, अविद्या, सत्, असत् आदिक सब सम्बन्ध का अभाव हो जाता है क्योंकि सब शब्द जगत् में हैं, जब जगत् लीन हुआ तब शब्द कहाँ रहे? और वास्तव में न कुछ उपजा है, न लीन होता है-एक ही चिदाकाश है जो तुम कहो कि देह उपजता है सो देह और तत्त्व को स्वप्नवत् जानो । जो तुम कहो कि जगत् प्रलय में लीन होता है इससे कुछ है, तो नाश वही होता है जो असत्य होता है । जो तुम कहो कि असत्य है तो फिर क्यों उपजता है सो उपजी वस्तु भी सत् नहीं होती । जो तुम कहो कि महाप्रलय में चिदाकाश ही रहता है और वही जगत्ूरूप हो भासता है तो जगत् कुछ भिन्न नहीं हुआ-बोधमात्र ही इस प्रकार हो भासता है जैसे बीज और वृक्ष में कुछ भेद नहीं तैसे ही जिससे जगत् भासता है वही रूप है, कुछ उपजा नहीं, जो उपजा नहीं तो विकार और भेद कैसे हो-इससे बोधमात्र ही अपने आप में स्थित है । कारण कार्य से रहित परमशान्तरूप अपने आपमें आत्मसत्ता स्थित है । वही जगत्ूरूप होकर भासता है और देश, काल, पदार्थ भी सब महाप्रलय हैं । जब महा प्रलय होता है तब ब्रह्मा पर्यन्त सब पदार्थ नष्ट हो जाते हैं और आकाश, वायु अग्नि, जल, पृथ्वी का नाम भी नहीं रहता और अर्थ भी नहीं रहता, तब केवल बोधमात्र और बोध से भी रहित शेष रहता है जो परमशान्तरूप है और उसमें वाणी और मन की गम नहीं केवल अचैत्यचिन्मात्र सत्ता ही है । उसी को तत्त्ववेत्ता अनुभव कहते हैं और कोई नहीं जान सकता । हे रामजी! जो पुरुष अविद्यारूपी निद्रा से जागा है वह निराभास होता है अर्थात् चित्त से चैत्य का सम्बन्ध टूट जाता है और उसको परम प्रकाशरूप आत्मपद प्राप्त होकर स्वभाव में स्थिति होती है और परस्वभाव जो प्रकृति है उसका अभाव हो जाता है । हे रामजी! जो कुछ जगत् परस्वभाव से भिन्न भिन्न भासता था सो सब एकरूप हो जाता है । जैसे स्वप्न में सब पदार्थ भिन्न भिन्न भासते हैं और जागे से सब एकरूप हो जाते हैं, अपना आपही भासता है, तैसे ही जब आत्मा का अनुभव होता है तब जगत् अपना आपही भासता है जब और कुछ नहीं बना । जैसे सुवर्ण के भूषण अग्नि में डालिये तो अनेक भूषणों का एक पिण्ड हो जाता है और एक ही आकार भासता है, तैसे ही जब बोध का अनुभव होता है तब सर्व एकरूप हो जाता है । हे रामजी! भूषणों के होते भी सुवर्ण ही था इसी से सब एकरूप हो गया, तैसे ही जब बोध का अनुभव होता है तब सब एकरूप हो भासता है इससे जगत् के होते भी जगत् आत्मरूप है । जगत् है नहीं और हुए की नाईं भासित होकर भिन्न-भिन्न दृष्टि आता है- जैसे सोमजल में तरंग नहीं हैं और भासते है तो भी जलरूप हैं-असम्यक्ृदृष्टि करके भिन्न भिन्न भासते हैं । हे रामजी! ज्ञानी को जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति तुल्य हैं जैसे भूषण के होते भी सुवर्ण है और भूषण के अभाव हुए भी स्वर्ण है तैसे ही ज्ञानवान् को देह के होते भी ब्रह्म है और देह के अभाव हुए भी ब्रह्म है

। जो अज्ञानी है उसको नाना प्रकार का जगत् फुरता है । अज्ञानी वही है जिसको मन का सम्बन्ध है । हे रामजी! यह जगत् भिन्न भिन्न फुरता है । जैसे काष्ठ के थम्भे में चितेरा पुतलियाँ कल्पता है सो और को नहीं भासती उसी के मन में होती हैं, तैसे ही भिन्न-भिन्न पदार्थरूपी पुतलिया अज्ञानी के मन में फुरती हैं और ज्ञानवान् को नहीं भासतीं । जब काष्ठरूप आधार होता है तब चितेरा पुतलियाँ कल्पता है पर यह आश्चर्य देखो कि मनरूपी ऐसा चितेरा है कि आकाश में पदार्थरूपी पुतलियाँ कल्पता है और बिना खोदी भासती है । हे रामजी! और दूसरा कुछ नहीं बना, जैसे किसी पुरुष ने कागज पर पुतली लिखी हो सो कागजरूप है और कुछ नहीं बनी, तैसे ही यह जगत् भी वही स्वरूप है । हे रामजी! जब तुमको आत्मपद का अनुभव होगा तब जितने जगत् के शब्द अर्थ हैं वे सब उसी में भासेंगे जैसे जिसने स्वर्ण को जाना उसको भूषण के शब्द अर्थ स्वर्ण ही भासते हैं तैसे ही जब आत्मपद को जानोगे तब तुमको जगत् के शब्द अर्थ आत्मा ही में दृष्टि आवेंगे । हे रामजी! यह जीव महासूक्ष्मरूप है । और इनमें अपनी-अपनी सृष्टि है । जबतक फुरना है तबतक सृष्टि है, जब सृष्टि फुरना अपनी ओर आता है तब सृष्टि एक आत्मरूप हो जाती है और आकाश, काल, दिशा, पदार्थ सब आत्मा है, आत्मा से भिन्न कुछ नहीं, वह अपने आपमें स्थित है-जो अद्‌वैत चिन्मात्रपद है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मस्वरूपप्रतिपादनंनाम शताधिक द्‌विसप्ततितमस्सर्गः ।।172।।

अनुक्रम

निर्वाणवर्णन

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! सर्वतत्त्ववेत्ताओं में श्रेष्ठ दृष्टा और दृश्य का सम्बन्ध कैसे हुआ है? काल में कालत्व, आकाश में शून्यता और वायु में स्पन्द कैसे हुआ है । जड़ में जड़ता, भूतों में भूतता, संकल्प में स्पन्द, सृष्टि में सृष्टिता, मूर्ति में मूर्तिता, भिन्न में भिन्नता और दृश्य में दृश्यता किससे हुई हैं सो मुझ से कहिये क्योंकि अर्थ प्रबुद्ध को बोध के निमित्त कहना योग्य हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर आदिक जो सब हैं सो प्रलयकाल में जिसमें लीन होते हैं उसका नाम महाप्रलय है । हे रामजी! ऐसा जो अनन्त आकाश है सो सम, शुद्ध, आदि-अन्त-मध्य से भी रहित, चैतन्य घन और अद्वैत है जहाँ एक और दो शब्द भी नहीं और जिसमें आकाश भी पहाड़ के समान स्थूल है और ऐसा सूक्ष्म है कि `है'नहीं दोनों`शब्दों से रहित अपने आपमें स्थित है ।जैसे पाषाण का शिलाकोष होता है तैसे ही वह चित्त के फुरने से रहित है । ऐसे परमात्मा तत्त्व अकारण से सृष्टि का उपजना कैसे कहिये? जैसे आकाश अपने आपमें स्थित है तैसे ही ब्रह्म अपने आपमें स्थित है । हे रामजी! एक निमेष के फुरने से जो वृत्ति अनेक योजन पर्यन्त जाती है उसके मध्य जो अनुभव करनेवाली सत्ता है उसमें तुम स्थित होकर देखो कि जगत् और उसकी उत्पत्ति कहाँ है? हे रामजी! उत्पत्त जो होती है सो समवायकारण और निमित्तकारण से होती है पर आत्मा निराकार, अद्वैत और सन्मात्र है- न समवायकारण है और न निमित्तकारण है । इससे आत्मा अच्युत है अर्थात् स्वरूप से कदाचित् नहीं गिरा तो समवायकारण कैसे होवे? निमित्ृकारण भी नहीं, क्योंकि निराकार है, इससे आत्मा मे जगत् कोई नहीं भ्रान्तिमात्र और अविद्या करके भासता है । जो वस्तु होवे नहीं और प्रत्यक्ष भासे उसे अविद्या से जानिये । हे रामजी! ब्रह्मसत्ता सदा अपने आपमें स्थित है । जल में जो तरंग और आवर्त उठते हैं सो जलरूप हैं जल से भिन्न कुछ नहीं जबतुम अपने आपमें स्थित होगे तब जगत् का शब्द अर्थ भिन्न न भासेगा, क्योंकि दूसरी वस्तु कुछ नहीं है हे रामजी ब्रह्म अमूर्त है, उसमें यह मूर्ति कैसे उत्पन्न हो? यह भ्रान्तिमात्र है । जो वस्तु कारण से उपजी हो सो सत् होती है और जो कारण बिना दृष्टि आवे उसे भ्रममात्र जानिये । जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासता है उसका कोई कारण नहीं- इससे मिथ्याभ्रम से भासता है , तैसे ही यह जगत् मिथ्या है विचार किये से नहीं रहता हे रामजी! आकाश काल आदिक जो पदार्थ हैं सो सब शून्य हैं, आत्मा में न उदय हुए हैं और न अस्त होते हैं-ज्यों का त्यों आत्मा ही स्थित है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे निर्वाणवर्णनं नाम शताधिकत्रिसप्ततितमस्सर्गः ।।173।।

अनुक्रम

द्वैतकताप्रतिपादन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे आकाश अपनी शून्यता में स्थित है तैसे ही ब्रह्मरूपी आकाश अपने आपमें स्थित है सो कैसे किसी का कारण हो? कारण और कार्य तब होता है जब द्वैत होता है और आरम्भ, परिणाम होता है पर आत्मा तो अद्वैत, अच्युत और निर्गुण है उसमें आरम्भ कैसे हो? हे रामजी! जो कुछ जगत् तुमको भासता है सो सब काष्ठवत् मौन है अर्थात् वहाँ मन का फुरना शून्य है। हे रामजी! जो कुछ द्वैत भासता है सो भ्रममात्र है। जो कुछ हुआ होता तो ज्ञानी भी प्रत्यक्ष होता पर ज्ञानकाल में नहीं भासता इससे भ्रममात्र है। हे रामजी! पृथ्वी, जल आदि जो पदार्थ हैं तिनका फुरना स्वप्न की नाईं है। जैसे स्वप्न में चेष्टा होती है सो पास बैठे को नहीं भासती, क्योंकि है नहीं, तैसे ही सृष्टि अकारण संकल्पमात्र है। हे रामजी! जैसे शशे के सींगो का कारण कोई नहीं तैसे ही जगत् कारण कोई नहीं। जो कुछ हो तो उसका कारण भी हो पर जो कुछ है ही नहीं तो किसका कारण कौन हो। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जैसे वट के बीज में वृक्ष का भाव होता है पर काल पाकर बीज से वृक्ष हो आता है तैसे ही इस जगत् का कारण परमाणु क्यों न हो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सूक्ष्म में स्थूल संकल्पमात्र होता है। मैं भी कहता हूँ कि सूक्ष्म में स्थूल होता है परन्तु संकल्पमात्र होता है- कुछ सत्य नहीं होता। जो कहिये कि सत्य होता है तो नहीं हो सकता। जैसे राई के कणके में सुमेरु पर्वत का होना नहीं हो सकता तैसे ही सूक्ष्म परमाणु से जगत् का उत्पन्न होना असम्भव है। हे रामजी! सूक्ष्म परमाणु का कार्य भी जगत् तब कहा जाय जब सूक्ष्म अणु भी आत्मा में पाया जावे, आत्मा तो द्वैत है और उसमें एक और दो कहने का अभाव है। आत्मा में जानना भी नहीं-केवल आत्मतत्त्वमात्र है और आधार आधेय से रहित है। बीज भी तब प्रणमता है जब उसको जला देते हैं और रक्षा करने का स्थान होता है पर आत्मा आधार आधेय से रहित केवल अपने भाव में स्थित है और अद्वैत सत्तामात्र है। जैसे बन्ध्या के पुत्र का कारण कोई नहीं, तैसे ही जगत् का कारण कोई नहीं, जो वन्ध्या का पुत्र ही नहीं तो उसका कारण कौन हो तैसे ही जगत् है नहीं तो ब्रह्म इसका कारण कैसे हो? जिसको तुम दृश्य कहते हो सो दृष्टा ही दृश्यरूप होकर स्थित हुआ है। हे रामजी! जैसे सूर्य की किरणों में जलाभास होकर स्थित है तैसे ही ब्रह्म ही जगत् आकार होकर दृष्टि आता है, दृश्य भी कुछ दूसरी वस्तु नहीं। जैसे समुद्र ही तरंग और आवर्तरूप होकर भासता है तैसे ही अनन्तशक्ति होकर परमात्मसत्ता ही स्थित है। हे रामजी! मैं और तुम आदि जगत् के पदार्थ सब फुरनेमात्र हैं। जैसे संकल्प नगर होता है जो मन से रचा है, तैसे ही यह जगत् आत्मा में कुछ बना नहीं केवल ब्रह्म अपने आप में स्थित है- हमको तो सदा वही भासता है। हे रामजी! आत्मा में यह जगत् न उदय होता है और न अस्त है सदा ज्यों का त्यों निर्मल शान्तपद है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे द्वैतकताप्रतिपादनं नाम शताधिकचतुःसप्ततितमस्सर्गः ||174||

अनुक्रम

परमशान्तिनिर्वाण वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जगत् का भाव-अभाव, जड़-चैतन्य, स्थावर-जंगम, सूक्ष्म- स्थूल, शुभ-अशुभ कुछ हुआ नहीं तो मैं तुमसे क्या कहूँ कि यह कार्य है और इसका यह कारण है? यह हुआ ही नहीं तो फिर कारण कैसे हो? जो सर्वदेश, सर्वकाल, और सर्ववस्तु हो सो कारण कैसे हो? आत्मा केवल अपने आपमें स्थित है और जो है और नहीं की नाईं स्थित हुआ है, उसमें संवेदन है और उसके फुरने से जगत् भासता है । वह फुरना चैतन्य मात्र का विवर्त है और उस विवर्त से जगत्ॎभ्रम हुआ है, जब यही फुरना उलटकर अपनी ओर आता है तब जगत्ॎभ्रम मिट जाता है और जब फुरता है तब ध्यान, ध्याता और ध्येयरूप होकर स्थित होता है । इसी का नाम जगत् है और इसी में बन्ध और मुक्त है, आत्मा में न बन्ध है और न मोक्ष है । हे रामजी! जब तरंग घनभूत होकर बहता है तब एक नदी होकर चलता है,तैसे ही जब वासना दृढ़ होती है तब जगत्ॎरूप होकर स्थित होता है और भासता है । जब ऐसी वासना दृढ़ हुई तब रागद्वेष संकल्प से बन्धवान् होता है और जब वासना क्षय होती है तब जगत् का अभाव होकर स्वच्छ आत्मा भासता है । जैसे शरत्ॎकाल का आकाश स्वच्छ होता है-उससे भी निर्मल भासता है । हे रामजी! जीव जो निकल जाता है सो मरता नहीं, मुआ तब कहा जाय जब अत्यन्त अभाव को प्राप-त हो और न जाना जाय, इससे यह मरता नहीं, क्योंकि फिर जगत् भासता है । यह मरना सुषुप्ति की नाईं हुआ-जैसे सुषुप्ति से जागे हुए जगत् भासता है और वही चेष्टा करने लगता है और जैसे स्वप्न को जाग्रत् होता है तैसे ही मृत्यु और जन्म भी है । यदि मरने का शोक उपजे तो जीने का सुख भी मानिये और जो जीने का हर्ष उपजे तो उसमें मरने का शोक मानिये-दोनों अवस्था शरीर की सम रची हैं । जब यह अवस्था शरीर की जानी तब तुम्हारा हृदय शीतल हो जावेगा । जब संवेदन फुरने का अत्यन्त अभाव हो तब परम शान्ति होती है । ध्यान, ध्याता और ध्येय तीनों का अभाव हो जाता है और अज्ञान भी नहीं रहता जब ऐसा अभाव होता है तब पीछे स्वच्छ निर्मल पद रहता है । हे रामजी! अब भी निर्मल पद है परन्तु भ्रम से पदार्थसत्ता भासती है जैसे निद्रा दोष से केवल अनुभव में पदार्थसत्ता होकर भासती है और जागे से कहता है कि केवल भ्रममात्र ही था, तैसे ही इस जगत् को भी भ्रममात्र जानों । परमार्थ स्वरूप के प्रमाद से यह जगत् भासता है और स्वरूप में जागे से इसका अभाव हो जाता है । हे रामजी! जैसे स्वप्न में जीव अनहोता ही राज्य देखता है तैसे ही तुम इस जगत् को जानें । इसका फुरना ही इसको बन्धन का कारण है । जैसे कुसवारी आपही स्थान बनाकर आपही फँस मरती है और जैसे मद्यपान करनेवाला मद्यपान करके मुख से और का और बोलता है और उससे बन्धायमान होता है, तैसे ही जीव अपने संकल्प ही से बँधता है और जब संकल्प मिटता है तब परमानन्द को प्राप्त होकर परम स्वच्छ शान्ति उदय होती है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमशान्तिनिर्वाणवर्णनं नाम शताधिकपञ्चसप्ततितमस्सर्गः ||175||

अनुक्रम

आकाशकुटीवशिष्ठसमाधि वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जहाँ आकाश होता है वहाँ शून्यता भी होता है जहाँ अवकाश होता है वहाँ आकाश भी होता है और जहाँ आकाश है वहाँ पदार्थ भी होते हैं तैसे ही जहाँ सृष्टि भी भासती है पर बनी कुछ नहीं और सदा रहती है । जैसे सूर्य की किरणों में जल कदाचित् नहीं उत्पन्न हुआ और जलाभास सदा रहता है, क्योंकि उसी का विवर्त है, तैसे ही सृष्टि आत्मा का विवर्त है-जहाँ चैतन्य सत्ता है वहाँ सृष्टि भी है । इसी पर मैं एक इतिहास तुमसे कहता हूँ जिसके सुने और समझे से जरा मृत्यु से रहित होगे । वह इतिहास परमसुन्दर और चित्त का मोहनेवाला आश्चर्यरूप है और मेरा देखा हुआ है । हे रामजी! एक काल में मेरा चित्त जगत् से उपरत हुआ तो मैंने विचार किया कि किसी एकान्त स्थान में जाकर समाधान करूँ, क्योंकि जगत् मोहरूप व्यवहार से दृढ़ हुआ है और जितना कुछ जानने योग्य है उसको मैं जाननेवाला हूँ परन्तु व्यवहार करके भी शान्तरूप होऊँ । तब ऐसा मैंने विचार किया कि निर्विकल्प समाधि करके परम शान्ति पाऊँ और जो आदि, अन्त और मध्य से रहित परमानन्दस्वरूप और अविनाशी पद है उसमें विश्राम करूँ । हे रामजी! तब भी मैं ज्ञान वृत्तिमान और परमात्मस्वरूप ही था परन्तु चित्त की वृत्ति जब जगत् भाव से उपरत हुई तो व्यवहार से भी एकान्त समाधि की इच्छा की कि जहाँ कोई क्षोभ न हो वहाँ स्थित हूँ । ऐसे विचार करके मैं आकाश में उड़ा और एक देवता के पर्वत पर जा बैठा तो वहाँ बहुत प्रकार के इन्द्रियों के विषय देखे कि अंगना गान करती हैं शिर पर चमर होते हैं,और मन्द मन्द पवन चलता है । पर वह भी मुझको आपातरमणीय भासे, क्योंकि किसी काल में किसी को सुखदायक नहीं- समाधिवाले के ये शत्रु हैं । उनको विरस जानकर मैं फिर उड़ा और एक पर्वत की कन्दरा में जो बहुत सुन्दर थी और जहाँ एक सुन्दर वन था और उसमें सुन्दर पवन चलता था पहुँचा ऐसे स्थान को मैंने देखा तो वह भी मुझको शत्रुवत् भासित हुआ, क्योंकि पक्षियों के शब्द होते थे और पवन का स्पर्श होता था व और भी अनेक विघ्न थे । उनको देखकर मैं आगे चला तो नागों के देश और सुन्दर नागकन्या देखीं और इन्द्रियों के बहुत सुन्दर विषय भी देखे पर वह भी मुझको सर्पवत् भासे । जैसे सर्प के स्पर्श किये से अनर्थ होता है तैसे ही मुझको विषय भासे । हे रामजी! जितने इन्द्रियों के विषय हैं वे सब अनर्थ के कारण हैं, उनमें प्रीति मूढ़ और अज्ञानी करते हैं । फिर मैं समुद्र के किनारे गया और उसके पास जो पुष्प के स्थान थे उनमें बिचरा और कन्दरा और वन को देखता हुआ पर्वत, पाताल और दशो दिशा देखता फिरा परन्तु एकान्त स्थान मुझको कोई दृष्ट न आया । तब मैं फिर आकाश को उड़ा और पवन, मेघों, देवगणों विद्याधरों और सिद्धों के स्थान लाँघता गया तो आगे देखा कि कई ब्रह्माण्ड भूतों के उड़ते थे उनमें मैंने अपूर्व भूत और नाना प्रकार के स्थान देखे । फिर गरुड़ के स्थान लाँघे तो कहीं सूर्य का प्रकाश होता था और कहीं सूर्य का प्रकाश ही न था । फिर मैं चन्द्रमा के मण्डल को लाँघ गया और अग्नि के स्थान लाँघकर महाआकाश में गया जहाँ इन्द्रियों का रोकना भी न था, क्योंकि इन्द्रियों के विषय कोई दृष्ट न आते थे केवल पक आकाश ही दृष्ट आता था और वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी चारों का अभाव था । हे रामजी! निदान मैं उस स्थान में गया जहाँ भूत स्वप्न में भी दृष्ट न आते थे और सिद्धों की भी गम न थी । वहाँ मैंने संकल्प की एक कुटी रची और उसके साथ फूल और पत्रों से पूर्ण कल्पवृक्ष रचे और उसके एक ओर मैंने छिद्र रक्खा । मेरा तो सूक्ष्म संकल्प था इसलिये सब प्रत्यक्ष भान हुआ । उस कुटी को रचकर उसमें मैंने प्रवेश किया और संकल्प किया कि एक वर्ष पर्यन्त मैं समाधि में रहूँगा और उससे उपरान्त समाधि से उतरूँगा । ऐसे विचारकर मैंने पद्मासन

बाँधा और समाधि में स्थित होकर परमशान्ति में एक वर्ष पर्यन्त स्थित हुआ जहाँ कोई क्षोभ न था जब वर्ष व्यतीत हुआ तब वह भावी समाधि के उतरने की थी इसलिये वह संकल्प आन फुरा । जैसे पृथ्वी में बोया हुआ बीज काल पाकर अंकुर लेता है तैसे ही वह संकल्प आन फुरा । प्रथम जैसे सूखा वृक्ष वसन्तऋतु में हरा हो आता है तैसे ही प्राण फुरि आये, फिर जैसे वसन्तऋतु में फूल खिल आते हैं तैसे ही ज्ञान इन्द्रियाँ खिल आईं और फिर स्पन्द जो अहंकाररूपी पिशाच है सो फुरा कि मैं वशिष्ठ हूँ, और उसकी इच्छारूपी स्त्रीफुरी । हे रामजी! वह वर्ष मुझको ऐसे व्यतीत हुअ जैसे निमेष का खोलना होता है । काल भी बहुत प्रकार से व्यतीत होता है, किसी को थोड़ा ही बहुत हो जाता है और किसी को बहुत थोड़ा हो जाता है जब सुख होता है तब बहुत काल भी थोड़ा हो भासता है और जब दुःख होता तब थोड़ा काल बहुत हो जाता है । हे रामजी! इस समाधि का जो मैंने वर्णन किया यह शक्ति सब जीवों में है परन्तु सिद्धि नहीं होती क्योंकि नाना प्रकार की वासना से अन्तःकरण मलीन है । जब अन्तःकरण शुद्ध हो तब जैसा संकल्प करे तैसा ही सिद्ध होता है और मलीन अन्तःकरणवाले का संकल्प सिद्ध नहीं होता ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे आकाशकुटीवशिष्ठसमाधिवर्णनं नाम शताधिकषट्सप्ततितमस्सर्गः ||176||

अनुक्रम

विदितवेदाहंकार वर्णन

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! तुम तो निर्वाणस्वरूप हो तुमको अहंकाररूपी पिशाच कैसे फुरा-यह मेरा संशय दूर कीजिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ज्ञानी हो अथवा अज्ञानी जबतक शरीर का सम्बन्ध है तबतक अहंकार दूर नहीं होता । जैसे जहाँ आधार होता है वहाँ आधेय भी होता है और जहाँ आधेय होता हैं वहाँ भी होता है, तैसे ही जहाँ देह होती है वहाँ अहंकार होता है और जहाँ अहंकारी होता है वहाँ देह भी होती है । हे रामजी! अहं कार बिना शरीर नहीं रहता पर वह अहंकार अज्ञानरूपी बालक ने कल्पा है और ज्ञानी का अहंकार नष्ट हो जाता है । हे रामजी! यह अहंकार अविद्या ने कल्पा है । जो वास्तव में मिथ्या हो और भासे वह अविद्या है । और जो अविद्या ही मिथ्या है तो उसका कार्य अहंकार कैसे सत् हो? यह केवल मिथ्या भ्रम से उदय हुआ है जैसे भ्रम से वृक्ष में [illegible] भासता है- तैसे ही भ्रम से अहंकाररूपी वैताल उदय हुआ है और इसका कारण अविचार सिद्ध है, विचार किये से इसका अभाव हो जाता है । जहाँ विचार होता है वहाँ अविद्या नहीं रहती जैसे जहाँ दीपक होता है तहाँ अन्धकार नहीं रहता, क्योंकि दीपक के जलाने से अन्धकार का अभाव हो जाता है, तैसे ही विचार के उदय हुए अविद्या का अभाव हो जाता है । जो वस्तु विचार किये से न रहे उसे मिथ्या जानिये और जो आपही मिथ्या है तो उसका कार्य कैसे सत्य हो? इससे अहंकार को मिथ्या जानों । हे रामजी! जैसे आकाश के वृक्ष का कारण कोई नहीं, तैसे ही अंधकार का कारण कोई नहीं । मन सहित जो षट्इन्द्रियों हैं शुद्ध आत्मा उनका विषय नहीं, क्योंकि वे साकार और दृश्य हैं । साकार का कारण निराकार आत्मा कैसे हो? जो आकार हैं सो सब मिथ्या हैं, जो बीज होता है उससे अंकुर उत्पन्न होता है तब जाना जाता है कि बीज से अंकुर उत्पन्न हुआ है परन्तु बीज ही न हो तो उसका कार्य अंकुर कैसे उत्पन्न हो? तैसे ही जगत् का कारण संवेदन ही न हो तो जगत् कैसे हो? जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा हो तो उसका कारण भी मानिये और जो दूसरा चन्द्रमा ही नहीं तो उसका कारण कैसे मानिये? हे रामजी! ब्रह्म, आकाश, अद्वैत, शुद्ध, फुरने से रहित, अच्युत और अविनाशी है, वह कारण कार्य कैसे हो? हे रामजी! पृथ्वी आदिक तत्त्व अविद्यमान हैं पर भ्रम से भासते हैं । केवल शुद्ध आत्मा अपने आप में स्थित है । जो तुम कहो कि अविद्यमान हैं तो भासते क्यों हैं तो उसका उत्तर यह है कि जैसे स्वप्न में अनहोती सृष्टि भासती है तैसे ही यह जगत् भी अनहोता भासता है । जैसे भ्रम से आकाश में वृक्ष अनहिते भासते हैं तो इसमें कुछ आश्चर्य नहीं और संकल्पनगर रच लीजे तो चेष्टा भी होती है परन्तु इसका स्वरूप संकल्पमात्र है वास्तव में अर्थाकार कुछ नहीं होता और अपने काल में सत्य भासता है पर जब संकल्प का लय होता है तब उसका अभाव हो जाता है-इससे आकाश के वृक्ष की नाईं हुआ है । जैसे आकाश के वृक्ष भावना से भासते हैं । तैसे ही यह जगत् संकल्पमात्र है । स्वरूप से कुछ नहीं है जो विचार करके देखिये तो इसका अभाव हो जाता है । हे रामजी! शुद्ध आत्मतत्त्व अपने आप में स्थित है वही जगत् का आकार हो भासता है-दूसरी वस्तु कुछ नहीं । जैसे स्वप्न में जितने पदार्थ भासते हैं सो सब अनुभवरूप है तैसे ही जगत् भी ब्रह्मरूप है । हे रामजी! हमको सदा वही भासता है तो अहंकार कहाँ हो? न मैं अहंकार हूँ और न मेरा अहंकार है केवल आकाश में अहंकार कहाँ हो? हे रामजी! न मैं हूँ और न मेरे में कुछ फुरना है, अथवा सर्व आत्मसत्ता मैं ही हूँ तो भी अहंकार न हुआ । हे रामजी! हमारा अहंकार ऐसा है जैसे अग्नि की मूर्ति लिखी होती है तो उससे कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता-दृश्यमात्र होती है । तैसे ही ज्ञानी का अहंकार देखने मात्र है उन्हें कर्तृत्व भोक्तृत्व नहीं होता और वे अपने स्वभाव में स्थित हैं ।

सर्वज्ञानवानों का एक ही निश्चय है कि ब्रह्म ही है और अहंकार का अभाव है । अहंकार न आगे था, न अब और न फिर होगा-भ्रम से अहंकार शब्द जाना जाता है । हे रामजी! जब ऐसे जानोगे तब अहंकार नष्ट हो जावेगा । जैसे शरत्‌्काल में मेघ देखनेमात्र वर्षा से रहित होता है तैसे ही ज्ञानी का अहंकार देखनेमात्र होता है । और की बुद्धि में भासता है परन्तु ज्ञानी के निश्चय में असंभव है, क्योंकि उसका अहंप्रत्यय आत्मा में रहता है और परिच्छिन्न अहंकार का अभाव हो जाता है । जब अहंकार नष्ट होता है तब अविद्या का भी नाश हो जाता है और यही अज्ञान का नाश है-यह तीनों पर्याय हैं । हे रामजी! अपने स्वभाव में स्थित रहो और प्रकृत आचार करो, हृदय से शिलाकोषवत् हो रहो और बाहर इन्द्रियों की सब क्रिया हो, अपने निश्चय को गुप्त रक्खो और सब इन्द्रियों को इस प्रकार धारो जैसे आकाश सबको धार रहा है; अन्तर से शिला के जठरवत् रहो और देखनेमात्र तुम्हारे में भी अहंकार दृष्ट आवेगा । जैसे अग्नि की मूर्ति लिखी दृष्ट आती है तैसे ही तुम्हारे में अहंकार दृष्ट आवेगा परन्तु अर्थाकार न होगा और केवल ब्रह्मसत्ता ही भासेगी और कुछ न भासेगा ।

इति श्रीयोग0 निर्वाण0 विदितवेदाहंकारवर्णनन्नाम शताधिकसप्तितितमस्सर्गः ||177||

अनुक्रम

ब्रह्मजगदेकता प्रतिपादन

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! बड़ा आश्चर्य है कि तुमने अहंकार के त्यागे से परम सत्य की प्राप्ति का उपदेश किया है । यह परम दशा है और राग द्वेष मल से रहित, निर्गम, उत्तम, अविनाशी और आदि अन्त से रहित है । यह दशा तुमने परमविभुता के अर्थ कही है हे भगवन्! सर्वदाकाल और सर्वप्रकार सर्ववस्तु वही ब्रह्मसत्ता है और समरूपसत्ता के अनुभव से परम निर्मल है तो शिलाख्यान किस निर्मित्त कहा है सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वह तो सब में, सर्वदाकाल और सबसे रहित है पर उसके बोध के अर्थ मैंने तुझको शिलाख्यान का दृष्टान्त कहा है । हे रामजी! ऐसा स्थान कोई नहीं जहाँ सृष्टि न हो । सब स्थान में सृष्टि भासती है पर आदि से कुछ नहीं बना और सर्वदा काल बसती है-शिला के कोष में भी अनेक सृष्टि भासती हैं जैसे आकाश में शून्यता है तैसे ही शिलाकोष में भी सृष्टि बसती हैं । श्रीरामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो सबमें सृष्टि बसती है तो आकाशरूप क्यों न हुई? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यही मैं भी तुमसे कहता हूँ कि जो कुछ सृष्टि है वह सब आकाशरूप है । स्वरूप में तो सृष्टि उपजी ही नहीं, सर्वदा आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और आकाश की वार्त्ता क्या कहनी है कि शिलाकोष में सृष्टि बसती है और आकाशरूप है-अर्थात् कुछ हुए नहीं! हे रामजी! पृथ्वी में ऐसा अणु कोई नहीं जिसमें सृष्टि न हो । अणु-अणु में सृष्टि है और सब ओर से बसती है, परन्तु परमार्थ से कुछ नहीं बना, केवल आत्मरूप है और सर्वसृष्टि शब्द मात्र है । जैसे यह सृष्टि भासती है तैसे ही वह भी है । जो यह शब्दमात्र है तो वह भी शब्दमात्र है और जो यह सत्य भासती है तो वह भी सत्य भासती है । हे रामजी! ऐसा कोई जल का कण नहीं जिसमें सृष्टि न हो, सर्व में सृष्टि है और यह आश्चर्य देखो कि इस बिना कुछ नहीं और ऐसा कोई अग्नि और वायु का कण नहीं जिसमें सृष्टि न हो । सबमें सृष्टि है और आकाशरूप है, कुछ बना नहीं-ब्रह्मसत्ता अपने अपमें सदा ज्यों की त्यों स्थित है । हे रामजी! आकाश में ऐसा अणु कोई नहीं जिसमें सृष्टि न हो परन्तु कुछ उपजी नहीं । ऐसा ब्रह्म अणु कोई नहीं जहाँ सृष्टि न हो परन्तु स्वरूप से कुछ हुई नहीं-ब्रह्म सत्ता अपने आपमें सदा स्थित है । हे रामजी । ऐसा अणु कोई नहीं जिसमें ब्रह्मसत्ता नहीं और ऐसा कोई चिद्अणु नहीं जिसमें सृष्टि नहीं पर जैसे किसी ने अग्नि कही और किसी ने उष्णा कही तो उसमें भेद कोई नहीं तैसे ही कोई ब्रह्म कहते हैं और कोई जगत् कहते हैं ।शब्द दो हैं परन्तु वस्तु एक ही है-जगत् ही ब्रह्म है और ब्रह्म ही जगत् है-कुछ भेद नहीं । जैसे बहते जल का शब्द होता है पर उसमें कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता, तैसे ही जगत् मुझको कुछ पदार्थ नहीं भासता है क्योंकि दूसरी वस्तु बनी नहीं । मैं तुम और यह जगत्, सुमेरु आदि पर्वत, देवता, किन्नर, दैत्य, नाग इत्यादिक जगत् सब निर्वाणस्वरूप है-आत्मतत्त्व में कुछ नहीं बना । यह बोलते और चालते जो भासते हैं उसे स्वप्न की नाईं जानो । जैसे कोई पुरुष सोया हो और स्वप्न में उसे नानाप्रकार के युद्ध होते वा यन्त्र बजते और चेष्टा होती दिखाई दे पर जो उसके निकट जाग्रत पुरुष बैठा हो उसको कुछ नहीं भासता, क्योंकि बना कुछ नहीं और उसको सब कुछ भासता है, तैसे ही ज्ञानी के हृदय में जगत् शून्य है और अज्ञानी को भ्रम से नाना प्रकार का भासता है । इससे हे रामजी! स्वप्नवत् इस जगत् को जानकर प्रकृत आचार करो और हृदय से शिला की नाईं हो कि कुछ न फुरे । ब्रह्म और जगत् में रञ्चक भी भेद नहीं, ब्रह्म ही जगत् है और जगत्-ब्रह्म है । जगत् का स्पष्ट अर्थ ब्रह्म से भिन्न नहीं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनंनाम शताधिकाष्टसप्ततितमस्सर्गः ||178||

जगदेकताप्रतिपादन

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आपने आकाशकोष में कुटी बनाकर एक वर्ष की समाधि लगाई तो उसके अनन्तर जो वृत्तान्त हुआ सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब मैं समाधि से उतरा तब आकाश में एक परम मनोहर मतुरी की तान के सदृश अंगना का शब्द सुना तब मैंने विचार किया कि मैं तो बहुत ऊँचे पर आया हूँ जहाँ सिद्धों की भी गम नहीं और सिद्धों से भी तीन योजन ऊँचा आया हूँ- यह शब्द कहाँ से आया? ऐसे विचारकर मैं देखने लगा तो दशो दिशाओं में आकाश ही दीखा परन्तु सृष्टि का कर्ता कोई दृष्टि न आया। तब मैंने विचार किया कि सृष्टि आकाश में होती है इससे मैं आकाश ही हो जाऊँ और इस शब्द को पाऊँ कि किसका शब्द है, बल्कि आकाश को भी त्यागकर चिदाकाश हो जाऊँ जहाँ भूताकाश भी कुटीवत् भासता है। तब इसका भी अन्त भासेगा और जान लूँगा कि यह किसका शब्द होता है। ऐसे विचारकर मैंने निश्चय किया कि यह शरीर यहाँ रहे और नेत्र मुँदे रहें। तब पद्मासन बाँधकर मैंने बाहर की इन्द्रियों को रोका और जो इन्द्रियों की वृत्ति शब्द आदिक को ग्रहण करती थी उसको भी रोक लिया। निदान भीतर बाहर की सब वृत्तियों और अहंवृत्ति को त्यागकर मैं आकाशरूप हो गया। जैसे इस ब्रह्माण्ड में आकाश का अन्त नहीं मिलता तैसे ही मैं इसको त्यागकर चित्ताकाशरूप हो गया जिसका संकल्प ही रूप है। उसको भी त्यागकर मैं बुद्धि आकाश में आया, फिर उसको भी त्याग करके चिदाकाश में आया और शब्द के सुनने के संकल्प से चिदाकाशरूप हो गया। जैसे समुद्र में मिली जल की बूँद समुद्ररूप हो जाती है तैसे ही मैं चिदाकाश हो गया जो निराकार और निराधार है सबको धार रहा है और परमानन्दस्वरूप, शान्त और अनन्त है और जिसमें सर्व ब्रह्माण्ड प्रतिबिम्बित होते हैं। जब मैं आत्मा आदर्श में स्थित हुआ तब तुझको अनन्त सृष्टि अपने आपमें भासने लगीं। जैसे सूर्य की किरणों में त्रसरेणु होते हैं तैसे ही ब्रह्म में सृष्टियाँ हैं परन्तु जीव जीव की अपनी-अपनी सृष्टि है एक की सृष्टि को दूसरा नहीं जानता मनस्कार से होता है-रूप अर्थात् दृश्य, अवलोक अर्थात् इन्द्रियाँ और मनस्कार अर्थात् मन का फुरना-इन तीनों बिना तुम्हारा बोलना कैसे हुआ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे स्वप्न में रूप, अवलोकन और मनस्कार, शब्दपाठ और परस्पर वचन होते हैं सो आकाशरूप होते हैं तैसे ही हमारा देखना, बोलना और आपस में संवाद हुआ था। जैसे स्वप्न में रूप अवलोक और मनस्कार आकाशरूप होते हैं और प्रत्यक्ष भासते हैं तैसे ही हमारा देखना और बोलना हुआ। यह प्रश्न तुम्हारा नहीं बनता कि देखना और बोलना कैसा हुआ? जैसे आकाश में सृष्टि देखी है तैसे यह सृष्टि भी है और जैसे उनके शरीर थे तैसे ही इनके और हमारे शरीर हैं जैसे यह जगत् है तैसे वह जगत् है। हे रामजी! यहाँ आश्चर्य है कि सत् वस्तु नहीं भासती है। जैसे स्वप्न में पृथ्वी, पर्वत, समुद्र और जगत् व्यवहार है नहीं, पर प्रत्यक्ष भासता है और सत् वस्तु अनुभवरूप नहीं भासती तैसे ही हम तुम जगत् सब आकाशरूप है। जैसे स्वप्न में युद्ध होते भासते हैं और शब्द होते हैं और आना जाना भासता है वह सब आकाशरूप है और हुआ कुछ नहीं तैसे ही यह जगत् भी है। हे रामजी! स्वप्नसृष्टि मिथ्या है, कुछ बनी नहीं और जो कुछ है सो अनुभवरूप है-भिन्न कुछ नहीं जो तुम पूछो कि स्वप्ना क्या है और कैसे होता है तो सुनो, आदि परमात्मतत्त्व में स्वप्ने में किंचन हुआ है सो विराट् आत्मा है और फिर उससे यह जीव हुए हैं सो आकाश रूपहैं, क्योंकि विराट् आकाशरूप है और ये सब आकाश रूप है। स्वप्न का दृष्टान्त भी मैंने तुमसे बोध के निर्मित कहा है, क्योंकि स्वप्ना भी कुछ हुआ नहीं केवल आत्मत्व मात्र है, ब्रह्मही अपने आपमें स्थित है। हे रामजी! वह कान्ता जब मैंने देखी तो मैंने उससे पूछा, क्योंकि

संकल्प मेरा और उसका एक था । जैसे स्वप्न में स्वप्न होता है तैसे ही हमारा हुआ । हे रामजी! जैसे स्वप्न की सृष्टि आकाशरूप होती है तैसे ही हम, तुम और सब जगत् आकाश हैं कुछ हुआ नहीं, स्वप्न जगत् और जाग्रत जगत् एक रूप है परन्तु जाग्रत दीर्घकाल का स्वप्ना है इससे इसमें दृढ़ व्यवहार, उत्पन्न और प्रलय होते भासते हैं । हे रामजी! स्वप्न में भोग होते भासते हैं सो भ्रान्तिमात्र हैं, निर्मल आकाशरूप आत्मा से भिन्न कुछ नहीं बना । दृश्य और दृष्टा स्वप्न की नाईं अनहोते भासते हैं । जो हम तुम आदिक दृश्य को मनरूपी दृष्टा सत्य मानता है सो दोनों अज्ञान से भ्रममात्र उदय हुए हैं और जो शुद्ध दृष्टा है सो दृश्य से रहित है जैसे दृष्टा आकाशरूप है तैसे ही दृश्य भी आकाशरूप है और जैसे स्वप्न की सृष्टि अनुभव से भिन्न कुछ नहीं तैसे ही यह जाग्रत भी अनुभवरूप है । हे रामजी! चिदाकाश जो अनन्त आत्मा है वह इस जगत् का कारण कैसे हो? जैसे स्वप्ने की सृष्टि का कारण कोई नहीं, तैसे ही इस जाग्रत् जगत् का कारण भी कोई नहीं क्योंकि हुआ कुछ नहीं और जो कुछ है सो अनुभवरूप है-इससे यह जगत् अकारण है हे रामजी! सब जीव आकाशरूप हैं और इनके स्वप्न की सृष्टि जो नाना प्रकार की होती है सो भी आकाशरूप है कुछ आकार नहीं । जो निराकार अद्वैत आत्मसत्ता है उसमें आदि में आभासरूप जगत् फुरा है तो वह आकाशरूप क्यों न हो? अब साकार और निराकार का भेद कहते हैं सो सुनो । एक चिद् है और दूसरा चैत्य है-चिद् शुद्ध चिन्मात्र का नाम है और चैत्य दृश्य फुरने को कहते हैं । जिस चिद् को दृश्य का बन्धन है उसका नाम जीव है जिस चिद् को अज्ञान से द्वैत का सम्बन्ध है और अनात्ममें आत्मा अभिमान करता है ऐसा जीव साकाररूप है और उसके स्वप्न की सृष्टि आकाशरूप है सो अचैत्य चिन्मात्र निराकार सत्ता है तो उसका स्वप्ना आभासरूप जगत् आकाशरूप क्यों न हो? हे रामजी! यह जगत् निरुपादान है अर्थात् कुछ बना नहीं और चिदाकाश निराकाररूप है । जैसे स्वप्नमें जगत् अकृत्रिम होता है तैसे ही यह जगत् है, न इसका कोई निमित्त कारण है और न समवायकारण है पर आत्मा अच्युत और अद्वैत है सो दृश्य का कारण कैसे कहिये? हे रामजी! न कोई कर्त्ता है, न भोक्ता है और न कोई जगत् है और नाहीं कहना भी नहीं बनता । जो ज्ञान वान् है सो पाषाणवत् मौन स्थित होता है और जब प्रकृत आचार आन पड़ता है तब उसको भी करता है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगदेकताप्रतिपादनं नाम शताधिकद्वयशीतितमस्सर्गः ।।182।

अनुक्रम

विद्याधरी विशोकवर्णनं

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! वह जो तुम्हारे निकट आकाशरूप कान्ता आई तो वह शरीर बिना अनेक क, च, ट, तादिक अक्षर कैसे बोली और जो तुम स्वप्न की नाईं कहो तो स्वप्न में भी केवल आकाश होता है वहाँ य,र,ल वादिक कैसे बोलते हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! स्वप्न में जो शरीर होता है सो आकाशरूप है, उसमें क,च,ट तादिक अक्षर कदाचित् उद्देश्य नहीं हुए । जैसे मृतक कदाचित् नहीं बोलता तैसे ही आकाशरूप आत्मा में शब्द कदाचित् नहीं होता । जो तुम कहो कि स्वप्न में जो य,र,ल, वादिक अक्षर प्रवृत्त होते हैं, तो उसका उत्तर यह है कि जो कुछ शब्द वहाँ सत् हुए होते तो निकट बैठे भी सुनते हे रामजी! निकट बैठे ने नहीं सुना तो ऐसे मैं कहता हूँ कि आकाशरूप है कुछ हुआ नहीं और जो हुआ भासता है सो भ्रान्तिमात्र केवल चिन्मात्र आकाश का किञ्चन है और आकाश ही स्थित है, तैसे ही यह जगत् भी कुछ हुआ नहीं । हे रामजी! जैसे चन्द्रमा में श्यामता, आकाश में वृक्ष और पत्थर में पुतलियाँ नृत्य करती भासें तो मिथ्या हैं तैसे ही इस जगत् का होना भी मिथ्या है । हे रामजी! स्वप्न में जो जगत् भासता है सो चिदाकाश का किञ्चन है सो भी आकाशरूप है-भिन्न कुछ नहीं । जैसे स्वप्न का जगत् आकाश रूप है तैसे ही वह जगत् भी आकाशरूप है और जैसे यह जगत् है तैसे ही वह जगत् भी थे और यह जो आकाश है सो आत्माकाश में अनाकाश है । जैसे स्वप्न की सृष्टि भ्रम से भासी है तैसे ही जगत् भी भ्रम से प्रत्यक्ष भासता है । रामजी ने पूछा , हे भगवन्! जो यह जगत् स्वप्ना है तो जाग्रत क्यों हो भासता है और जो असत् है तो सत्य कि नाई क्यों भासता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! एक मृदु संवेग है, दूसरा मध्यसंवेग है और तीसरा तीव्रसंवेग है-संवेग संकल्प के परिणाम को कहते हैं सो त्रिविध है । जैसे कोई पुरुष अपने स्थान में बैठा हुआ मनोराज से किसी व्यवहार को रचता है सो उसको जानना है कि संकल्पमात्र है और नट स्वांग धारता है तब वह जानता है कि मेरा स्वांग है और अपने स्वरूप को सत्य जानता है । इसका नाम मृदुसंवेग है, क्योंकि अपना स्वरूप नहीं भूला । मध्यसंवेग यह है कि जैसे किसी पुरुष को स्वप्ना आता है तो उसमें स्वप्न सृष्टि भासती है और एक शरीर अपना भासता है, तब अपने शरीर को सत्य जानता है और जगत् को भी सत्य जानता है, क्योंकि स्वरूप का प्रमाद है इससे स्वप्नकाल की सृष्टि को सत्य जानता है और आगे हुए को असत्य जानता है । इसका नाम मध्यसंवेग है, क्योंकि सोया हुआ शीघ्र ही जाग उठता है और जो सोया और जागे नहीं उसका नाम तीव्रसंवेग है हे रामजी! आदिसंकल्प स्वप्न में रूप भासते हैं और उसमें नाना प्रकार की सृष्टि होकर स्थित है । जिनको आदि स्वरूप का प्रमाद नहीं हुआ उनको यह जगत् मृदुसंवेग है, क्योंकि वे अपनी लीला मात्र असत्य जानते हैं और जिनको आदिस्वरूप का प्रमाद हुआ है वे फिर शीघ्र ही जाग उठते हैं तब उनको वह जगत् असत्य भासता है और इस जगत् में सत्य प्रतीति नहीं होती । जिनको प्रमाद हुआ है और फिर नहीं जागे उनको यह जगत् सत्य ही भासता है, क्योंकि उनकी चित्त की वृत्ति का परिणाम तीव्र हो गया है इस कारण अज्ञानी को यह जगत् स्वप्न जाग्रत् हो भासता है-जैसे स्वप्नकाल में स्वप्न की सृष्टि सत्य हो भासती है । हे रामजी । चित्त के फुरने का नाम जगत् है, जब चित्त बहिर्मुख होता है तब जगत् भासता और स्वरूप का अज्ञान होता है और जब अज्ञान होता है तब जगत्ःभ्रम दृढ़ होता जाता है- इससे इस जगत् का कारण अज्ञान है । हे रामजी! आत्मा के अज्ञान से जगत् भासता है, जब आत्मज्ञान होगा तब जगत्ःभ्रम निवृत्त हो जावेगा । वह आत्मा अपना आप है इससे आत्मपद में स्थित हो रहो तब जगत्ःभ्रम निवृत्त हो जावेगा । हे रामजी! अज्ञान से इस

जगत् की सत्य प्रतीति होती है और उसमें जैसी जैसी भावना होती है तैसे ही जगत् हो भासता है । हे रामजी! जिस प्रकार जगत्‌भ्रम सत्य हो भासता है सो भी सुनो कि जो अज्ञानी जीव है वह जब मृतक होता है तब मुक्त नहीं होता, बल्कि अज्ञान के वश से जड़ पत्थरवत् होता है क्योंकि चेतनरूप है । हे रामजी! जब मृत्यु होती है तब आकाशरूप चित्त में ही जगत् फुर आता है और अपनीं वासना के अनुसार नाना प्रकार का जगत् हो भासता है, एवं नाना प्रकार के व्यवहार रचना क्रियासहित होकर भासते हैं । कल्प पर्यन्त सब क्रिया जीवों की अन्तवाहक होती हैं-जैसी हमारी है । हे रामजी! तुम देखो वह जगत् क्या रूप है- किसी कारण से तो नहीं उपजा? जैसे यह जगत् कलनामात्र सत् हो भासता है, तैसे ही इस जगत् को भी जानो । हे रामजी! यह जो तुमको स्वप्ना आता है और उसमें जो पुरुष और पदार्थ हैं वे भी सत्य हैं क्योंकि ब्रह्मसत्ता सर्वात्मा है । हे रामजी! प्रबोध हुए से भी स्वप्न के पदार्थ विद्यमान भासते हैं, इसी से कहा कि स्वप्न संकल्प और जाग्रत् तुल्य है । जैसे आगे शुक्र ब्राह्मण के पुत्र इन्द्र, लवण और गाधि का उदाहरण कहा है, इनको मनोराजभ्रम प्रत्यक्ष हुआ है और दीर्घतपा को जिसका उदाहरण आगे कहेंगे प्रत्यक्ष स्वप्न हुआ है । जीव जीव प्रति अपनी अपनी सृष्टि है, क्योंकि संकल्प अपना अपना है इससे सृष्टि भिन्न भिन्न है और सबका अधिष्ठान आत्मसत्ता है । सर्व सृष्टि का प्रतिबिम्ब आत्मरूपी आदर्श में होता है और सर्व सृष्टि आत्मा का अनुभव है जैसे बीज से वृक्ष उत्पन्न होता है और उस वृक्ष से और वृक्ष होते हैं तो भी विचार से देखो कि बीज तो एकही था और सब वृक्ष आदि उसी बीज से उपजे हैं, तैसे ही एक आत्मा से अनेक सृष्टि प्रकाशती हैं परन्तु स्वरूप से भिन्न कुछ नहीं । जैसे एक पुरुष सोया है और उसको स्वप्न की सृष्टि भासती है और फिर स्वप्न में जो बहुत जीव भासते हैं उसको भी अपने स्वप्न की सृष्टि भासती है । हे राम जी! जिससे आदि स्वप्न की सृष्टि भासती है वह पुरुष एक ही है और उसे एकही में अनन्तसृष्टि चित्त के फुरने से होती हैं, तैसे ही आत्मसत्ता के आश्रय अनन्तसृष्टि फुरती हैं परन्तु स्वरूप से कुछ हुआ नहीं सब आकाशरूप है और जीवों को अपनी अपनी सृष्टि अज्ञान से भासती है । हे रामजी! जीवों को और सृष्टि का ज्ञान नहीं होता अपनी ही सृष्टि को जानते हैं क्योंकि संकल्प भिन्न भिन्न हैं । कितनों को हम स्वप्नों के नर हैं और कितने हमको स्वप्ने के नर हैं, वे और सृष्टि में सोये हैं और हमारी सृष्टि उनको स्वप्न में भासती है तिनको हम स्वप्न के नर हैं और जो हमारी सृष्टि में सोये हैं उनको स्वप्न में और सृष्टि भासि आई है सो हमारे स्वप्ने के नर हैं । हे रामजी! इस प्रकार आत्मतत्त्व के आश्रय अनन्तसृष्टि भासती हैं । जो जीव सृष्टि को सत् जानकर विचरते हैं वे मोक्षमार्ग से शून्य हैं । जैसे मनुष्य जो शयन करता है तो शयन करता है तो उसको स्वप्न में चित्त का परिणाम होता है और उसमें जो जीव होते हैं उनको फिर स्वप्ना होता है तब अपनी अपनी सृष्टि उनको भासती है तो वह अनन्त सृष्टि अनुभव के आश्रय होती है, तैसे ही एक आत्मा के आश्रय असंख्य सृष्टि फुरती है सो कई समान, कई अर्धसमान और कई बिलक्षण भासती है पर अपनी अपनी सृष्टि को जीव जानते हैं । जैसे एक मन्दिर में दश पुरुष सोये हैं और उनको अपना अपना आवे तब उसकी सृष्टि को वह नहीं जानता उसकी सृष्टि को वह नहीं जानता, तैसे ही यह सृष्टि भी और को नहीं भासती, क्योंकि संकल्प अपना अपना है । जैसे पत्थर को पत्थर नहीं जानता और जो अन्तवाहक शरीर योगेश्वर हैं उनको और सृष्टियों का भी ज्ञान होता है । हे रामजी! वास्तव में सृष्टि भी निराकार आकाशरूप है । जैसे सूर्य की किरणों में जलाभास होता है तैसे ही आत्मा में सृष्टि है और जैसे रस्सी में सर्प भासता है तैसे ही आत्मा में सृष्टि भासती है । हे रामजी! वास्तव में कुछ हुआ नहीं, सर्वदा काल सर्व प्रकार आत्मा ही अपने आप में स्थित है, जिनको आत्मा का प्रमाद

हुआ है उनको जगत् भासता है वास्तव में जगत् किसी कारण से नहीं उपजा-आभासरूप है । सम्यक्ज्ञान के हुए ब्रह्म अद्वैत भासता है और असम्यक्ज्ञान से द्वैतरूप जगत् ही भासता है । जैसे रस्सी के सम्यक्ज्ञान से रस्सी ही भासती है और असम्यक्ज्ञान से सर्प भासता है, तैसे ही आत्मा के असम्यकज्ञान से जगत् भान होता है । हे रामजी मैंने उस देवी से प्रश्न किया कि हे देवि! तुम कहाँ से आई हो, तुम्हारा स्थान कहाँ है, तुम कौन हो और यहाँ किस निमित्त आई हो? तब वह देवी बोली, हे मुनीश्वर! ब्रह्मरूपी महाकाश के अणु का भी जो अणु है और उसके छिद्र में भी जो छिद्र है तिसमें तुम हो और तुम्हारा यह जगत् भी उसी में है । तुम्हारी सृष्टि का जो ब्रह्मा है तिसको संवेदनरूपी कन्या ने यह जगत् रचा है । उस तुम्हारे जगत् में पृथ्वी है और उसके ऊपर समुद्र है जिनसे पृथ्वी घेरी हुई है, उसके ऊपर दूना और द्वीप है और उस द्वीप के ऊपर दूना समुद्र है । इसी प्रकार पृथ्वी को लाँघ के आगे सुवर्ण की पृथ्वी आती है जो दशसहस्त्र योजन पर्यन्त महासुन्दर है और उसने सूर्य चन्द्रमा के प्रकाश को भी लज्जित किया है । उसके परे और लोकालोक पर्वत हैं जो सब ठौर प्रसिद्ध है और उनमें बहुत से नगर बसते हैं । कहीं ऐसे स्थान हैं जहाँ सदा प्रकाश ही रहता है- जैसे ज्ञानी के हृदय में सदा प्रकाश रहता है, कहीं ऐसे स्थान हैं जहाँ सर्वदा अन्धकार ही रहता है-जैसे अज्ञानी के हृदय में अन्धकार रहता है, कहीं ऐसे ही स्थान हैं जहाँ प्रत्यक्ष मिलते हैं जैसे पंडित के हृदय में अर्थ प्रत्यक्ष होते हैं, कहीं ऐसे स्थान हैं जहाँ पदार्थ नहीं मिलते-जैसे मूर्ख के हृदय में श्रुति का अर्थ नहीं होता, कहीं ऐसे स्थान हैं जिनके देखने से हृदय प्रसन्न होता है-जैसे सन्तों के दर्शन से हृदय प्रसन्न होता है, कहीं ऐसे स्थान हैं जिनमें सदा दुःख ही रहता है-जैसे अज्ञानी की संगति में सदा दुःख रहता है, कहीं ऐसे स्थान हैं जहाँ सूर्य उदय नहीं होता, कहीं सूर्य चन्द्रमा दोनों उदय होते हैं, कहीं पशु ही रहते हैं कहीं मनुष्य ही रहते हैं, कहीं दैत्य और कहीं देवता ही रहते हैं, कहीं किसान रहते हैं, कहीं धर्म का व्यवहार होता है, कहीं विद्याधर रहते हैं कहीं, कहीं उन्मत्त हाथी हैं, कहीं बड़े नन्दनवन हैं, कहीं ऐसे स्थान हैं जहाँ शास्त्र का विचार ही नहीं, कहीं शास्त्र के विचारवान हैं, कहीं राज्य ही करते हैं, कहीं कड़ी बस्तियाँ हैं कहीं उजाड़ वन हैं, कहीं पवन चलता है, कहीं बड़े खात छिद्र हैं, कहीं ऊर्ध्वशिखर हैं जहाँ विद्याधर और देवता रहते हैं, कहीं मच्छ, यक्ष और राक्षस हैं, और कहीं विद्याधरी देवियाँ महामत्त रहती है । इसी प्रकार अनन्त देशों और स्थानों की बस्तियाँ हैं । उस लोकालोक के शिखर पर सात योजन का एक तालाब है जिसमें कमल लगे हैं, सब ओर कल्प वृक्ष हैं और वहाँ के सब पत्थर चिन्तामणि हैं । उसके उतर दिशा में एक सुवर्ण की शिला पड़ी है जिसके शिखर पर ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र बैठते हैं और विलास करते हैं उसके शिला में मै रहती हूँ और मेरा भर्ता और सम्पूर्ण परिवार भी वहीं रहता है । हे मुनीश्वर! उसमें एक वृद्ध ब्राह्मण रहता है जो अबतक जीता है और एकान्त जाकर सदा वेद का अध्ययन करता है । उसने मुझको अपने विवाह के निमित्त अपने मन से उपजाया था और अब मैं बड़ी हुई हूँ तो वह मेरे साथ विवाह नहीं करता । वह जब से उपजअ है तब से ब्रह्मचारी ही रहता है और वेद का अध्ययन करके विरक्तचित् हुआ है । हे मुनीश्वर! मैं वस्त्रों और भूषणों से संयुक्त हूँ, चन्द्रमा की नाईं मेरे सुन्दर अंग हैं और मैं सब जीवों के मोहने वाली हूँ । मुझको देखकर कामदेव भी मूर्छित हो जाता है, फूलों की नाईं मेरा हँसना है और सब गुण मेरे में हैं । महालक्ष्मी की मैं सखी हूँ पर मुझको त्यागकर वह ब्राह्मण एकान्त जाकर बैठा है और सदा वेद का अध्ययन करता है । वह बड़ा दीर्घसूत्री है, जब मैं उत्पन्न हुई थी तब वह कहता था कि मैं तुझको विवाहूँगा पर अब मैं यौवन अवस्था को प्राप्त हुई हूँ तब त्यागकर एकान्त जा बैठा है । हे मुनीश्वर! स्त्री को सदा भर्ता चाहिये । अब मैं यौवन अवस्था से जलती हूँ और बड़े तालाब

जो कमलसहित दृष्टि आते हैं वे भर्त्ता के वियोग से मुझे अग्नि के अंगारे से भासते हैं और नन्दन वन आदिक बड़े बाग मुझको मरुस्थल की नाईं भासते हैं । इनको देखकर मैं रुदन करती हूँ और नेत्रों से ऐसा जल चलता है जैसे वर्षाकाल का मेघ वर्षता है । जब मैं मुख आदिक अपने अंगों को देखती हूँ तब नेत्रों के जल से कमलिनी डूब जाती है और जब कल्पतरु और तमाल वृक्ष के फूल और पत्र शय्या पर बिछाकर शयन करती हूँ तब अंगों के स्पर्श से फूल जलते हैं । जिस कमल से मेरा स्पर्श होता है सो जल जाता है । हे भगवन्! भर्ता के वियोग से मैं तपी हुई हूँ । जब मैं बरफ के पर्वत पर जा बैठती हूँ तब वह भी अग्निवत् हो जाता है और मैं नाना प्रकार के फूलों को गले में डालती हूँ तब भी तप्तता निवृत्त नहीं होती । मेरे भर्ता की देह त्रिलोकी है और उसके चरणों में सदामेरी प्रीति रहती है । मैं गृह के सब आचार करती हूँ और सब गुणों से सम्पन्न हूँ, सबको धार रही हूँ, सबकी प्रतिपालक हूँ और ज्ञेय की मुझको सदा इच्छा रहती है । हे मुनीश्वर! मैं पतिव्रता हूँ, जो पुरुष पतिव्रता स्त्री के साथ स्पर्श करता है वह बहुत सुख पाता है और तीनों ताप से रहित होता है, क्योंकि उसमें सब गुण मिलते हैं और वह सदा भर्ता में प्रीति करती है और भर्ता की प्रीति उसमें होती है-ऐसी मैं हूँ पर मुझको त्यागकर वह ब्राह्मण एकान्त जा बैठा है और सर्वकाल वेद का अध्ययन और विचार करता रहता है । मेरे भर्ता ने कामना का त्याग किया है, उसको कोई इच्छा नहीं रही और मैं उसके वियोग से जलती हूँ । हे भगवन्! वह स्त्री भी भली है जिसका भर्ता विवाह करके मर गया हो , कुँवारी भी भली है और जो भर्ता के संयोग से प्रथम ही मर जाती है वह भी श्रेष्ठ है पर जिसको भर्ता प्राप्त हुआ है परन्तु उसको स्पर्श नहीं करता तो उसको बड़ा दुःख होता है । हे मुनीश्वर! जो पुरुष परमात्मा की भावना के संस्कार से रहित उत्पन्न हुआ है वह निष्फल है । जैसे पात्र बिना अन्न निष्फल होता है-अर्थ यह कि सन्तजन, तीर्थ आदिक से रहित पाप स्थानों में डाला हुआ धन निष्फल होता है और जैसे समदृष्टि बिना बोध और वेश्या की लज्जा निष्फल है, तैसे ही मैं पति बिना निष्फल हूँ । हे भगवन्! जब मैं शय्या बिछाकर शयन करती हूँ तब फूल भी जल जाते हैं । जैसे समुद्र को बड़वाग्नि जलाता है तैसे ही कमलों को मेरे अंग जलाते हैं । हे मुनीश्वर! जो सुख के स्थान हैं सो मुझको दुःखदायक भासते हैं और जो मध्य स्थान हैं सो न सुख देते हैं न दुःख देते हैं

इति श्री योगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विद्याधरी विशोकवर्णनं नाम शताधिकत्र्यशीतितमस्सर्गः ।।183।।

अनुक्रम

विद्याधरीवेग वर्णन

हे मुनीश्वर! इस प्रकार मैं तप करती फिरती हूँ । अब मुझको भी भर्ता के वियोग से वैराग्य उपजा है । भर्ता का वैराग्यरूपी ओला मेरी तृष्णारूपी कमलिनी पर पड़ा है और उससे मैं जल गई हूँ इससे जगत् मुझको विरस भासता है । हे मुनीश्वर! यह जगत् असार है, इसमें स्थिर वस्तु कोई नहीं, इस कारण मुझको भी वैराग्य उपजा है । मेरा भर्ता जो स्वयम्भू है सो संसार से विरक्त होकर एकान्त जा बैठा है और वेद को विचारता रहता है परन्तु आत्मपद को नहीं प्राप्त हुआ । वह मन के स्थिर करने का उपाय करता है परन्तु अबतक उसका मन स्थिर नहीं हुआ । सर्व एषणा से रहित होकर वह शास्त्र को विचारता रहता है पर आत्मा का साक्षात्कार उसे नहीं हुआ । मुझको भी वैराग्य उपजा है, अब हम दोनों वैराग्य से संपन्न हुए हैं और पर पद पाने की इच्छा हुई है । शरीर हमको विरस हो गया-जैसे शरत्‌काल की बेलि विरस होती है इस कारण मैं योग की धारणा करने लगी हूँ । यह शक्ति अब मुझको उत्पन्न हुई है कि आकाशमार्ग को आऊँ और जाऊँ, योगधारणा से आकाश पर उड़ने की भी शक्ति हुई है और सिद्धमार्ग की धारण से सिद्धों के मार्ग में भी आती जाती हूँ परन्तु कुछ सिद्ध न हुआ, क्योंकि पाने योग्य आत्मपद प्राप्त नहीं हुआ । जिसके पाये से कुछ दुःख न रहे । अब मुझको निर्वाण की इच्छा हुई है । मैंने सिद्धों के गण, देवता, विद्याधर और ज्ञानियों के बहुत स्थान देखे हैं परन्तु जहाँ गई वहाँ सब तुम्हारी ही स्थिति करते हैं कि वशिष्ठजी आत्मज्ञान के द्वारा अज्ञान को निवृत्त करते हैं । जैसे मेघ वर्षता है परन्तु जब वायु चलता है तब मेघ को दूर करता है तैसे ही तुम्हारे वचन अज्ञान को दूर करते हैं जब ऐसे मैंने तुम्हारी स्तुति सुनी तब मैंने इस सृष्टि में आने का अभ्यास किया और धारण के अभ्यास से तुम्हारी सृष्टि में आई हूँ । इससे, हे मुनीश्वर! मेरे और मेरे भर्ता को शान्ति के अर्थ आत्मज्ञान का उपदेश करो । मेरा भर्ता जो मन के स्थित करने का यत्न करता है उसको तुम ऐसा उपदेश करो कि शीघ्र ही स्थित हो और आत्मज्ञान को पावे और मुझको भी आत्मज्ञान का उपदेश करो । हे भगवन् तुम माया से पार मुझको दृष्टि आते हो इस कारण मैं तुम्हारी शरण आई हूँ मैं स्त्री बुद्धि करके तुम्हारे निकट नहीं आई शिष्यभाव को लेकर आई हूँ और मैं जानती हूँ कि मेरा अर्थ सिद्ध हो रहा है क्योंकि जो कोई महापुरुष की शरण आय प्राप्त होता है तो निष्फल नहीं जाता बल्कि सब अर्थ पूर्ण होता है । जैसा किसी का अर्थ होता है वैसा महापुरुष सिद्ध कर देते हैं । जैसे कल्पवृक्ष के निकट कोई जाता है तो उसका अर्थ पूर्ण होता है, तैसे ही मेरा अर्थ सफल हो जावेगा । इससे कृपा करके मुझको उपदेश करो । हे मुनीश्वर! तुम मानो दया के समुद्र हो । सबके अर्थ पूर्ण करने को तुम समर्थ हो और सुहृद हो अर्थात् उपकार की अपेक्षा बिना उपकार करते हो, इसमें मैं अनाथ तुम्हारी शरण में आई हूँ मुझको आत्मपद को प्राप्त करो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विद्याधरीवेगवर्णनन्नाम शताधिकचतुरशीतितमस्सर्गः ||184||

अनुक्रम

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार विद्याधरी ने मुझको कहा तब मैं आकाश में संकल्प का आसन रचकर उसपर बैठा और संकल्प से ही एक आधारभूत का आसन रच कर उसको बैठाया, क्योंकि हमारा शुद्ध संकल्प है जो कुछ चिन्तना करते हैं सो हो जाता है । तब मैंने कहा, हे देवि! यह तू कैसे कहती है कि शिला में हमारी सृष्टि है सो कह । शिला में सृष्टि कैसे बसती है? विद्याधरी बोली, हे भगवन्! तुम्हारी सृष्टि में जो लोकालोक पर्वत है, सो उसके उत्तर दिशा शिखर पर एक सुवर्ण की शिला है उसमें हमारी सृष्टि है, तैसे उस शिला में सृष्टि बसती है । उस सृष्टि का ब्रह्मा मेरा भर्ता है और मैं उसकी स्त्री हूँ । त्रिलोकी इस प्रकार बसती है कि ऊर्ध्वलोक में देवता रहते हैं, पाताल में दैत्य और नाग रहते हैं, मध्यमण्डल में मनुष्य और पशु, पक्षी बसते हैं और समुद्र, पर्वत, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश भी हैं । समुद्र ने गम्भीरता, जीवों ने प्राण, पवन ने आकाश में चलना, आकाश ने पोल, पृथ्वी ने धैर्य, विद्याधरों ने ज्ञान, अग्नि ने उष्णता, सूर्य ने प्रकाश, दैत्यों ने क्रूरता, विष्णु ने जगत् की रक्षा के निमित्त अवतार, नदियों ने चलना और पर्वतों ने स्थिरता अंगीकार की है । इस प्रकार सब नीति परमात्मा के आश्रय रची हुई है और कल्प पर्यन्त ज्यों की त्यों मर्यादा रहती है । इसी प्रकार जीव जन्मते और मरते हैं, देवता विमान पर आरूढ़ फिरते हैं, दिन का स्वामी सूर्य है, रात्रि का स्वामी चन्द्रमा है और नक्षत्र और तारों का चक्र पवन से फिरता है । इस चक्र के दो ध्रुव हैं और काल इस चक्र को फेरता है सो फेरता फेरता नाशरूप जो काल है सो कल्प के अन्त में उस चक्र के मुख में जा रहता है । हे मुनीश्वर! परमात्मा अनन्त है, उसका कोई अन्त नहीं जान सकता, जब संवेदन फुरती है तब जानता है कि यह जगत् ईश्वर की सत्ता से है । और जब फुरने से रहित होता है । तब जाना नहीं जाता कि जगत् कहाँ गया । हे मुनीश्वर! तुम चलो और हमारी सृष्टि का विलास देखो । तुम तो जगत् के विलास से पार हुए हो और यद्यपि तुमको इच्छा नहीं है तो भी कृपा करके उस शिला में हमारी सृष्टि देखो । इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार कहकर वह आकाशमार्ग में मुझे ले चली-जैसे गन्ध को वायु ले जाता है तब हम और वह दोनों आकाशमार्ग में उड़े और भूताकाश में चिरकाल उड़ते गये तब हमको लोकालोक पर्वत दृष्टि में आया, उसके निकट जाकर उसके शिखर देखे कि बहुत ऊँचे गये और बड़े मेघ उसपर बिचरते हैं और शिखर ऐसे सुन्दर हैं कि मानों क्षीरसागर से चन्द्रमा निकला है वहाँ जाकर मैंने महासुन्दर सुवर्ण की एक शिला देखी और उसके निकट गया तो मैंने कहा, हे देवि! यह तो शिला पड़ी है, तुम्हारी सृष्टि कहाँ है? इसमें पृथ्वी द्वीप की मर्यादा जिसका आवरण चहुँफेर समुद्र होता है और उनपर की दश सहस्त्र योजनपर्यन्त सुवर्ण की पृथ्वी, पर्वत, सप्तलोक, आकाश, दशोदिशा, तारामण्डल, सूर्य, चन्द्रमा जो रात्रि दिन के प्रकाशक हैं और भूतों का संचार, देवगण; विद्याधर; सिद्ध; गन्धर्व; योगीश्वर; वरुण; कुबेर, जगत् की उत्पत्ति प्रलय का संचार, पाताल की भूमिका, मण्डलेश्वर, न्याय करनेवाले, मरुस्थल की भूमिका, नन्दन वनादिक, दैत्यों के विरोधसंचारक देवता कहाँ हैं? यह तो एक शिला दृष्टि में आती है । हे रामजी! जब मैंने आश्चर्य को प्राप्त होकर ऐसे कहा तब विद्याधरी बोली; हे भगवन्! मुझको तो प्रत्यक्ष इस शिला में अपनी सृष्टि भासती है-जैसे शुद्ध आदर्श में अपना मुख भासता है तैसे ही मुझको अपनी सृष्टि इस शिला में प्रत्यक्ष भासती है-जैसी मर्यादा देश देशान्तर की मुझको भासती है इसका संस्कार मेरे हृदय में है इसी से मुझको प्रत्यक्ष भासती है और तुम्हारे हृदय में इसका संस्कार नहीं है इसी से तुमको नहीं भासती । तुम्हारी सृष्टि की अपेक्षा से यह शिला पड़ी है और

तुमको शिला का निश्चय है इस कारण तुमको इसमें जगत् नहीं भासता । हे भगवन्! जिसका अभ्यास होता है सो पदार्थ अवश्य प्राप्त होता है और वही भासता है हे मुनीश्वर! गुरु शिष्य को उपदेश करता है पर उपदेशमात्र से इष्ट की प्राप्ति नहीं होती, जब उसका अभ्यास करे तब इष्ट की प्राप्ति होती है । हे मुनीश्वर! ऐसा न्याय और सिद्धता कोई नहीं जो अभ्यास किये से न मिले, ऐसी कला कोई नहीं जो अभ्यास किये से न पाइये और ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो अभ्यास की प्रबलता से सिद्ध न हो, जो थककर फिरे नहीं तो अवश्य सिद्ध होते हैं । हे मुनीश्वर! जो कुछ सिद्ध होता दृष्टि आता हे तो सब अभ्यास के वश से होता है । प्रथम जब मैं तुम्हारे साथ आई थी तब मुझको भी शिला में सृष्टि नहीं भासी थी, क्योंकि यह सृष्टि अन्तवाहक शरीर में स्थित है । तुम्हारे साथ द्वैतरूपी कथा के कहने से अन्तवाहक शरीर मुझको विस्मरण हो गया था इससे विश्व की चर्चा और तुम्हारी सृष्टि की चर्चा करके मुझको वह स्पष्ट नहीं भासती । जैसे मलिन दर्पण में मुख नहीं भासता तैसे ही तुम्हारी सृष्टि के संकल्प से मुझको भी अपनी सृष्टि भासती नहीं, परन्तु चिरकाल जो अभ्यास किया है इससे फिर भासती है, क्योंकि जो कुछ दृढ़ अभ्यास होता है उसकी जय होती है । हे मुनीश्वर! चिन्मात्रपद में फुरने से आदि जीवों के शरीर अन्तवाहक हुए हैं अर्थात् आकाशरूप शरीर थे, जब उनमें प्रमाद करके दृढ़ अभ्यास हुआ तब आधिभौतिक होकर भासने लगे । जब फिर भावना उलटकर योग की धारणा से अभ्यास होता है तब आधिभौतिकता क्षीण हो जाती है और अन्तवाहकता प्रकट होती है उससे आकाश में पक्षी की नाईं उड़ता फिरता है । इससे तुम देखो कि अभ्यास के बल से सब कुछ सिद्ध होता है । हे मुनीश्वर! अज्ञान से मनुष्यों को अहंकाररूपी पिशाच लगा है सो दृड़ स्थित हुआ है, जब शास्त्र के वचनों में दृढ़ अभ्यास होता है तब क्षीण हो जाता है । हे मुनीश्वर! तुम देखो कि जिस किसी को इष्ट की प्राप्ति होती है सो अभ्यास के बल से होती है, जो अज्ञानी होता है और ब्रह्म अभ्यास करता है तो ज्ञानी होता है । पर्वत बड़ा है परन्तु अभ्यास से चूर्ण किया चाहे तो चूर्ण होता है और सम्पूर्ण वृक्ष को भोजन करना कठिन है-परन्तु अभ्यास करके शनैः शनैः घुन खा जाता है, आप तो छोटा है परन्तु जो वस्तु पानी कठिन हो सो अभ्यास से सुगम हो जाती है । जैसे चिन्तामणि और कल्पतरु के निकट जाकर जिस पदार्थ की वाच्छा करो तो सिद्ध होती है, तैसे ही आत्मरूपी चिन्तामणि और कल्पतरु है उसमें जिस पदार्थ का अभ्यास करता है सो सिद्ध होता है और अभ्यासरूपी भूमिका फल देती है । जो बालक अवस्था से अभ्यास होता है सो ही वृद्धावस्था पर्यन्त रहता है । हे मुनीश्वर! जो बान्धव नहीं होता और निकट आ रहता है तो निकट के अभ्यास से बान्धव हो जाता है परन्तु बान्धव जो विदेश में रहता है तो अभ्यास की क्षणता से अबान्धव हो जाता है । हे मुनीश्वर! विष भी अमृत की भावना करने से अभ्यास के द्वारा अमृत हो जाता है । जो मिष्ठान्न में कटुक भावना होती है तो कटु भासता है और कटु मिष्ठान्न की भावना कीजिये तो मिष्ठान्न हो भासता है-जैसे किसी को नींब प्रियतम है और किसी को मिष्ठान्न प्रियतम है । हे मुनीश्वर! जो कुछ सिद्ध होता है सो अभ्यास के बल सिद्ध होता है, जो पुण्य किया जाता है तो पाप के अभ्यास से नष्ट हो जाता है और पाप पुण्य के अभ्यास से नाश होता है, माता भी अमाता हो जाती है, अर्थ के अनर्थ हो जाते हैं, मित्र अमित्र हो जाता है और भाग्य अभाग्य रूप हो जाते हैं, निदानसब पदार्थ चल हो जाते हैं परन्तु अभ्यास का नाश कदाचित् नहीं होता । हे मुनीश्वर जो पदार्थ निकट पड़ा होता है और साधक इन्द्रियाँ भी विद्यमान होती हैं तो भी अभ्यास बिना प्राप्त नहीं होता । जहाँ अभ्यासरूपी सूर्य उदय होता है वहाँ इष्ट की प्राप्ति होती है । अज्ञानरूपी विसूचिका रोग ब्रह्मचर्चा के अभ्यास से नाश हो जाता है । हे मुनीश्वर! संसाररूपी समुद्र आदि-अन्त से रहित है पर आत्म

अभ्यासरूपी नौका द्वारा तर जाता है-जो अभ्यास को न त्यागोगे तो अवश्य तरोगे । हे मुनीश्वर! जो पदार्थ उदय हो उसके अभाव की भावना कीजिये तो अस्त हो जाता है और जो अस्त हो पर उसके उदय होने की भावना कीजिये तो उदय होता है । जैसे सिद्ध के शाप के उदय पदार्थ की नष्टता होती है- और वर से अप्राप्त पदार्थ की प्राप्ति होती है । हे मुनीश्वर! जो पुरुष शास्त्र से इष्ट पदार्थ को सुनता है और उसका अभ्यास नहीं करता उसे मनुष्यों में नीच जानो, उसको इष्ट पदार्थ की प्राप्ति कदाचित् नहीं होती जैसे बन्ध्या के पुत्र नहीं होता, तैसे ही उसको इष्ट पदार्थ की सिद्धि नहीं होती । हे मुनीश्वर! जो आत्मरूपी इष्ट को त्यागकर और किसी पदार्थ की वाच्छा करता है वह अनिष्ट से अनिष्ट पाकर नरक से नरक को भोगता है । हे मुनीश्वर! जिसको अभ्यास का भी प्राप्त हुआ है उसको शीघ्र ही आत्मपद की प्राप्ति होती है और अभ्यास के बल से इष्ट को पाता है-जैसे प्रकाश से पदार्थ से पदार्थ देखिये कि वह पड़ा है तो उसका नाम अभ्यास है और उसके निमित्त यत्न करना अभ्यास का अभ्यास है । जब यत्न और अभ्यास करते हैं तब पदार्थ पाते हैं । बारम्बार चिन्तना करने का नाम अभ्यास है, जब ऐसा अभ्यास हो तब इष्ट पदार्थ की प्राप्ति होती है-अन्यथा नहीं होती । हे मुनीश्वर! चौहह प्रकार के भूत जात हैं, जैसा-जैसा किसी को अभ्यास है उसके बल से तैसा ही तैसा सिद्ध होता है । अभ्यासरूपी सूर्य के प्रकाश से जीव अपने इष्ट पदार्थ पाता है और अभ्यास के बल से भय निवृत्त होता है और पृथ्वी, पर्वत, वन, कन्दरा में निर्भय होकर विचरता है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शताधिकपञ्चाशीतितमस्सर्गः ||185 ||

अनुक्रम

प्रत्यक्षप्रमाणजगन्निराकरणं

विद्याधरी बोली, हे मुनीश्वर! सर्व पदार्थ निरन्तर अभ्यास से सिद्ध होते हैं । तुम्हारा शिला में दृढ़ निश्चय है इससे तुमको शिला ही भासती है और मुझको इसमें सृष्टि भासती है । जब तुम्हारा संकल्प भी मेरे संकल्प के साथ मिले तब तुमको भी यह जगत् भासे । यह जगत् जो स्थित है सो मेरे अन्तवाहक में है और आदि वपु सबका अन्तवाहक है सो अन्तवाहक में सबकी एकता है- जैसे समुद्र में सब तरंगों की एकता होती है । हे मुनीश्वर! जब तुम धारणा का अभ्यास करके शुद्ध बुद्धि में प्राप्त होगे तब तुमको इस शिला में सृष्टि भासेगी । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब उसने इस प्रकार मुझसे शुद्ध युक्ति कही- तब मैंने पद्मासन बाँधकर सब विषय त्याग किये और कथा के क्षोभ का भी त्यागकर अपने आधिभौतिक का भी त्याग किया, तब निरन्तर शुद्ध बोध का अभ्यास करने से मुझको बोध का अनुभव उदय हुआ । जैसे मेघ के अभाव से शरत्‌काल का आकाश निर्मल होता है तैसे ही कलना से रहित मुझको शुद्ध बोध का अनुभव उदय हुआ जो उदय और अस्त से रहित परम शान्तरूप है और उसमें वह शिला मुझको आकाशरूप दृष्टि आई और शिलातत्त्व करके केवल बोधमात्र दृष्टि आई । पृथ्वी आदिक तत्त्व मुझको कोई दृष्टि न आये केवल अद्वैत आकाश आत्मतत्त्वमात्र अपना आपही दृष्टि आया पर जब बोधमात्र से अन्तवाहक रूप होकर स्पन्द फुरा तब अन्तवाहक करके उस शिला में सृष्टि भासने लगी-जैसे मनोराज की सृष्टि होती है और बोध से भिन्न-भिन्न नहीं होती तैसे ही वह सृष्टि मुझको दृष्टि आई और शिला का रूप भासी । जैसे स्वप्न के गृह में शिला दृष्टि आवे तो वह अनुभव ही शिला और गृहरूप होकर भासता है कुछ भिन्न नहीं होता, तैसे ही वह शिला दृष्टि आई । हे रामजी! जैसे मैंने आकाशरूप यह शिला देखी, तैसे ही सब जगत् चिदाकाशरूप है कुछ द्वैत नहीं बना । सर्वदाकाल आत्मसत्ता ही अपने आपमें स्थित है पर आत्मा के अज्ञान से द्वैत भासता है- जैसे कोई पुरुष स्वप्न में अपना शिर कटा देखे और रुदन करे पर जागकर आपको ज्यों का त्यों देखता है, तैसे ही जबतक जीव अज्ञाननिद्रा में सोता है तबतक जगत् भ्रम नहीं मिटता जब स्वरूप में जागकर देखेगा तब सब भ्रम मिट जावेगा और केवल अपना ही आप भासेगा । हे रामजी! यह आश्चर्य देखो कि जो वस्तु सत्‌रूपहै सो असत् की नाईं भासती है । आत्मा सदा सत्‌रूप है पर अज्ञान करके नहीं भासता और जो असत्यरूप है वह सत् की नाईं हो भासता है । शरीरादिक दृश्य असत्‌रूप हैं सो सत्यवत् होकर भासते हैं । हे रामचन्द्र! आत्मा सदा प्रत्यक्ष है और शरीरादिक परोक्ष हैं पर अज्ञान से शरीरादिक प्रत्यक्ष भासते हैं और आत्मपद परोक्ष भासता है । हे रामजी! आत्मा सदा प्रत्यक्ष है और इस लोक अथवा परलोक की क्रिया जो सिद्ध होती है सो सम्पूर्ण आत्मसत्ता से ही सिद्ध होती है । प्रत्यक्ष प्रमाण आत्मसत्ता से ही भासता है-आदि प्रत्यक्ष आत्मा ही है और सब कुछ आत्मा के पीछे जानता है । जो पुरुष कहते हैं कि आत्मा योग और मन से प्रत्यक्ष होता है सो मूर्ख हैं, आत्मा सदा प्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष आदिक प्रमाण भी आत्मा से सिद्ध होते हैं । माया इसी का नाम है कि सदा अपरोक्ष वस्तु आत्मा को परोक्ष जानना और शरीरादिक असत्य को सत्य मानना । हे रामजी! जितने जीव हैं उनका वास्तवरूप ब्रह्म ही है और उनमें आदि फुरना अन्तवाहकरूप हुआ है, उसके अनन्तर आधिभौतिक भासने लगा है और भ्रम करके आधिभौतिक को अपना आप जानते हैं पर जो सदा निर्विकार, निराकार, निर्गुण स्वरूप आप अनुभवरूप है उसको कोई नहीं जानते! आदि शरीर सर्वजीवों का अन्तवाहक है सो शुद्ध आत्मा का किञ्चन केवल आकाश रूप है और कुछ बना नहीं संकल्प करके आधिभौतिकता दृढ़ हुई है सो मिथ्याभान्ति से भासती है जैसे स्वप्ने में आधिभौतिक शरीर

भासता है तैसे ही जाग्रत में आधिभौतिक शरीर भासता है और अन्तवाहक अविनाशी है-इस लोक और परलोक में इसका नाश नहीं होता । वास्तव बोध से भिन्न कुछ नहीं, भ्रम करके आधिभौतिक दृष्टि आता है । जैसे सूर्य की किरणों में जल, सीपी में रूपा, रस्सी में सर्प और आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासता है, तैसे ही भ्रम से अपने में आधिभौतिक शरीर भासता है । हे रामजी! यह आश्चर्य है कि सत्य वस्तु असत्य हो भासती है और जो असत्य वस्तु है वह सत्य होकर भासती है सो अविचार से भासती है । यह मोह का माहात्म्य है कि सबका आदि जो प्रत्यक्ष आत्मा है उसको लोग अप्रत्यक्ष जानते हैं और अप्रत्यक्ष जगत् को प्रत्यक्ष जानते हैं । हे रामजी! यह जगत् भ्रम से भासता है और स्वप्न की नाईं मिथ्या है । जिन पदार्थों को जीव सुखरूप मानते हैं वे दुःख के कारण हैं, क्योंकि परिणाम इनका दुःख है । जो प्रथम क्षीणसुख भासता है और फिर उनके वियोग से दुःख होता है इसी कारण इनका नाम आपातरमणीय है-इनको पाकर शान्तिमान् कोई नहीं होता । जैसे मृगतृष्णा का क्षीणसुख भासता है और फिर उसके वियोग से दुःख होता है, क्योंकि उस जल को पाकर कोई तृप्त नहीं होता-जो उनमें लगते है वे मूर्ख है । जो अत्युत्तम सुख है वह अनुभव करके प्रकाशता है, उसको त्यागकर विषय के सुख में जो लगते हैं सो मूर्ख हैं, वे शुद्ध आकाशरूप अन्तवाहक में जगत् देखते हैं । हे रामजी! जगत्काल हुए की नाईं भासते हैं तो भी हुए कुछ नहीं-जैसे स्थाणु में पुरुष भासता हैं तो भी हुआ नहीं और जैसे सुवर्ण में भूषण भासते हैं तैसे ही यह जगत् प्रत्यक्ष भासता है पर कुछ नहीं है । हे रामजी! प्रत्यक्ष प्रमाण भी नहीं है तो अनुमानादिक प्रमाण कहाँ से सत्य हो? जैसे जिस नदी में हाथी बहे जाते हैं तो उसमें रुई के बहने में क्या आश्चर्य है? तैसे ही प्रत्यक्ष प्रमाण का विषय जगत् को असत् जानो तो अनुमानप्रमाण कर क्या सत् होना है? हे रामजी! केवल बोधमात्र में जगत् कुछ बना नहीं । हमको तो सदा ऐसे ही भासता है और अज्ञानी को जगत्भासता है-जैसे किसी पुरूष को नहीं भासते तैसे ही अज्ञानी को यह जगत् भासता है पर हमको तो आकाश, समुद्र,पर्वत सब केवल बोधमात्र भासते हैं । जैसे कथा के अर्थ श्रोता के हृदय में होते हैं और जिसने नहीं सुनी उसके हृदय में नहीं होते, तैसे ही मेरे सिद्धान्त को ज्ञानवान् जानते हैं और अज्ञानीजान नहीं सकते । हे रामजी! जितना कुछ आधिभौतिक जगत् भासता है सो अप्रत्यक्ष है और आत्मा सदा प्रत्यक्ष है । जो इस लोक अथवा परलोक का अर्थ है सो अनुभव से सिद्ध होता है, क्योंकि सबके आदि अनुभव प्रत्यक्ष है, उसको त्यागकर देहा दिक जो दृश्य को अपना आप जानते हैं और इनहीं को प्रत्यक्ष जानते हैं वे मूर्ख पशु और पत्थरवत् हैं और सूखे तृण की नाईं तुच्छ हैं जैसे भ्रमण से पर्वत आदिक पदार्थ भ्रमते हैं तैसे ही अज्ञानी को आधिभौतिक भासते हैं । हे रामजी! यह जगत् सब परोक्ष है, क्योंकि इन्द्रियों से प्रत्यक्ष होता है । जो नेत्र होते हैं तो रूप भासता है और जो नेत्र न हों तो न भासे, इसी प्रकार सब इन्द्रियों के विषय हैं जो होवें तो भासे नहीं तो न भासें और आत्मा सदा प्रत्यक्ष है उसके देखने में किसी और की अपेक्षा नहीं । हे रामजी! जो इन्द्रियों करके सिद्ध हो सो असत् है, जो जगत् ही असत् हुआ तो उसके पदार्थ कैसे सत् हों? इससे इस जगत् की सत्यता त्यागकर शुद्ध बोध में स्थित हो रहो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे प्रत्यक्षप्रमाणजगन्निराकरणंनाम शताधिकषडशीतितमस्सर्गः ||186||

अनुक्रम

शिलान्तरवशिष्ठब्रह्मसंवाद वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब मैं उस शिला को बोधदृष्टि से देखूँ तब वह मुझको ब्रह्मरूप भासे और जब संकल्पदृष्टि से देखूँ तब पृथ्वी, द्वीप, समुद्र, पर्वत, लोक, लोकपाल, सूर्य, चन्द्रमा, तारागण, पाताल-संयुक्त दृष्ट आवे। जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब भासता है, तैसे ही आत्मारूपी आदर्श में जगत् भासता है। तब देवी ने शिला में प्रवेश किया और मैं भी संकल्परूपी शरीर से उसके साथ चला गया। हम दोनों जगत् के व्यवहार को लाँघते गये और जहाँ परमेष्ठी ब्रह्मा का स्थान था वहाँ हम जा बैठे। तब देवी ने कहा, हे भगवन्! तुम परमेष्ठी से ऐसे कहना कि मुझको यह ले आई है और यह पूछना कि इसको जो तुमने विवाह के निमित्त उपजाया था तो फिर क्यों इसका त्याग किया? हे मुनीश्वर! उसने मुझको विवाह के अर्थ उत्पन्न किया था पर जब मैं बड़ी हुई तब उसने मेरा त्याग किया है। उसको वैराग्य उपजा है और उसे देखकर अब मुझको भी वैराग्य उपजा है, इसी से हम परमपद की इच्छा रखती हैं जहाँ न दृष्टा हैं, न दृश्य है, और न शून्य है केवल शान्तरूप है और जो सर्ग के आदि और महाकल्प के अन्त में रहता है उसमें स्थित होने की इच्छा है जिसमें स्थित हुए पहाड़वत् समाधि हो जावे। ऐसे परमपद का उपदेश करो। हे रामजी! इस प्रकार कहकर वह भर्ता के जगाने के निमित्त निकट जा कर बोली, हे नाथ, तुम जागो, तुम्हारे गृह में दूसरी सृष्टि के ब्रह्मा के पुत्र वशिष्ठमुनि आये हैं। तुम उठकर इनका अर्ध्यपाद्य से पूजन करो, क्योंकि गृह में अतिथि आये हैं। महापुरुष केवल पूजा से ही प्रसन्न होते हैं। हे रामजी! जब इस प्रकार देवी ने कहा तब ब्रह्माजी समाधि से उतरे और नाड़ियों में आन स्थित हुये। जैसे वसन्तऋतु से सब वृक्षों में रस हो आता है तैसे ही उनकी दशों इन्द्रियाँ और चारों अन्तःकरण में शनैः शनैः करके प्राण स्थित हुए और सब इन्द्रियाँ खिल आईं। तब उन्होंने मुझको और देवी को अपने सम्मुख देखा और ज्ञान से ॐकार का उच्चार करके सिंहासन पर बैठे। ब्रह्माजी के जागने से बड़ा शब्द होने लगा और विद्या धर, गन्धर्व, ऋषि, मुनि आ प्रणाम करके स्तुति और वेद की ध्वनि से पाठ करने लगे। ब्रह्मा बोले, हे ऋषे! कुशल तो है? तुम इतनी दूर से क्यों आये हो तुम तो सार असार को जाननेवाले हो? जैसे हाथ में बेल का फल होता है तैसे ही तुमको ज्ञान है बल्कि ज्ञान के समुद्र हो। ऐसे कहकर उसने अपने निकट आसन दिया और नेत्रों से आज्ञा की कि इस पर विश्राम करो। हे रामजी! जब इस प्रकार उसने मुझसे कहा तब मैं प्रणाम करके उसके निकट जा बैठा और एक मुहूर्तपर्यन्त देवता, सिद्ध और ऋषियों के प्रणाम होते रहे। उसके अनन्तर जब विद्याधर और देवता सब चले गये तब मैंने कहा, हे भूत-भविष्य-वर्तमान तीनों कालों के ज्ञाता ईश्वर परमेष्ठी! तुम ऊँचे आसन पर विराजमान हो और साक्षात् ब्रह्मज्ञान के समुद्र हो यह जो तुम्हारी शक्ति देवी है जिसको तुमने भार्या करने के निमित्त उत्पन्न किया था और फिर उसे विरस जानकर त्याग किया है तो तुम्हारे वैराग्य करने से इसको भी वैराग्य उपजा है इस निमित्त यह मुझको यहाँ ले आई है कि तुम परमात्मतत्त्व की वाणी से हमको उपदेश करो सो इससे इसका क्या अभिप्राय है? ब्रह्मा बोले, हे मुनीश्वर! मैं शान्त, अजर अमररूप हूँ और मुझमें उदय अस्त कदाचित् नहीं। मैं परम आकाशरूप हूँ और अपने आपमें स्थित हूँ। न मेरी कोई स्त्री है और न मैंने किसी को उत्पन्न किया है तथापि जैसे वृत्तान्त हुआ है तैसे मैं कहता हूँ, क्योंकि महापुरुष के विद्यमान ज्यों का त्यों कहना योग्य है हे मुनीश्वर! आदि शुद्ध चिदात्मा चिन्मात्रपद है, उसका किंचन जो अहं हो कर फुरा है उसका नाम आदि ब्रह्मा है सो मैं हूँ जैसे भविष्यत् सृष्टिका हो-अर्थ यह है कि संकल्परूप दृष्टा और संकल्परूप में हूँ- और वास्तवमें आकाशरूप सदा

निराकरण हूँ और अपने आपही में तेरी अहंप्रतीति है । उसमें आदि जो संकल्प का फुरना हुआ है उसमें जगत् भ्रम रचा है और उस जगत्भ्रम में मर्यादा हुई है और संकल्प का अधिष्ठाता जो ब्रह्मशक्ति है सो भी शुद्ध है । हे मुनीश्वर! उस मर्यादा को सहस्त्र चौकड़ी युगों की बीती है-अब कलियुग है । कल्प और महाकल्प की मर्यादा पूरी हुई है इससे मुझको परम चिदाकाश में स्थित होने की इच्छा हुई है और इसी से इसको विरस जानकर मैंने त्याग किया है । जब इसका त्याग करूँगा तब निर्वाणपद को प्राप्त होऊँ, क्योंकि यह मेरी इच्छा वासनारूप है जो वासना का त्याग हो तो निर्वाणपद प्राप्त हो । यह जो शुद्ध चित्‌कला है इसने धारणा का अभ्यास किया था इससे इसमें अन्तवाहक शक्ति प्राप्त हुई है अन्तवाहक शक्ति से यह आकाश में फुरी है और संसार से विरक्त हुई है । आकाश मार्ग में इसको तुम्हारी सृष्टि भासि आई और परमपद पाने की इच्छा से इसको तुम्हारी संगति प्राप्त हुई-इससे तुम्हारी शरण आई है और तुमको ले आई है । जो श्रेष्ठ हैं वे बड़ों की शरण जाते हैं, यह अपने कल्याण के निमित्त तुमको ले आई है । हे मुनीश्वर! यह मेरी मूर्तिरूप वासनाशक्ति है, आगे मैंने इसको उत्पन्न करके इस जगत्-जाल को रचा पर अब मुझको निर्विकल्प निर्वाणपद की इच्छा हुई है इससे मैंने इसका त्याग किया है । अब इसको भी वैराग्य उपजा है इस कारण तुम बोधरूप की शरण में आई है । हे मुनीश्वर! यह जगत् विलास संकल्प से हुआ है, वास्तव में कुछ हुआ नहीं, परमात्मतत्त्व ज्यों का त्यों अपने आपमें स्थित है और मैं, तुम, मेरा, तेरा इत्यादिक शब्द समुद्र के तरंग की नाईं हैं । जैसे समुद्र में तरंग उपजकर शब्द करते हैं और फिर लीन हो जाते हैं, तैसे ही हमारा बोलना और मिलाप होता है । हे मुनीश्वर! वास्तव में न कोई उपजा है और न कोई लीन होता है । जैसे तरंग जलरूप है-भिन्न कुछ नहीं, तैसे ही सब जगत् ब्रह्म स्वरूप है-भिन्न कुछ नहीं, इन्द्रियाँ,मन, बुद्धि सब वही रूप हैं । हे मुनीश्वर! मैं चिदाकाश हूँ और चिदाकाश में स्थित हूँ- यह ब्रह्मशक्ति है जिसने जगत् रचा है, यह भी अजर और अमर है और न कदाचित् उपजा है और न नाश होगा । शुद्ध आत्मा किञ्चन द्वारा जाग्रत् हो भासता है । जैसे सूर्य की किरणें जल हो भासती है, परन्तु जल कुछ हुआ नहीं तैसे ही आत्मा ही है, विश्व कुछ हुआ नहीं । हे मुनीश्वर! जगत्काल होकर आत्मा ही भासता है पर जगत् के उदय अस्त होने से आत्मा में कुछ क्षोभ नहीं होता, वह ज्यों का त्यों एकरस स्थित है जैसे समुद्र में तरंग उपजते और लीन होते हैं परन्तु समुद्र ज्यों का त्यों रहता है, तैसे ही जगत् कुछ उपजा नहीं संकल्प से उपजे की नाईं भासता है । जैसे दृढ़ता से जल ओला हो जाता है, तैसे ही चिन्मात्र में चैतन्यता से पिंडाकार भासता है परन्तु उपजा कुछ नहीं । हे मुनीश्वर! यह जो शिला है जिसमें हमारी सृष्टि हे सो केवल चिद्घनरूप है । तुम्हारी सृष्टि में यह शिला है और हम चैतन्य घन हैं चैतन्य आकाश आत्मा ही शिला होकर भासती है । जैसे स्वप्न सृष्टि सब जाग्रत् रूप हो भासती है सो बोधरूप है-बोध ही जगत् सा भासता है तैसे ही यह जगत् और शिलारूप होकर बोध ही भासता है । हे मुनीश्वर! जैसे स्वप्ने में ग्रह का चक्र फिरता दृष्ट आता है तैसे ही सूर्य, चन्द्रमा, पर्वत, नदी, वरुण, कुबेर आदिक जगत् जो भ्रम से दृष्ट आता है सो बना कुछ नहीं-चैतन्य का किञ्चन ही ऐसे भासता है । जैसे सूर्य की किरणों में किञ्चन जलाभास होता है तैसे ही जहाँ आत्मसत्ता है वहाँ जगत् भासता है । सब पदार्थ आत्म सत्ता से ही भासते हैं ब्रह्मसत्ता सबमें अनुस्यूत है इससे सब ओर से सृष्टि बसती है जैसे इस शिला में हमारी सृष्टि में जो कुछ पदार्थ भासते हैं और इनमें सृष्टि बसती है सो परिच्छिन्न दृष्टि से नहीं भासती पर जब अन्तवाहक दृष्टि से देखिये तब सृष्टि भासती है । घटों में, गढ़ों में और पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, आदि ठौरों में सृष्टि है और बना कुछ नहीं । जैसे समुद्र है तहाँ तरंग भी होते हैं परन्तु समुद्र से भिन्न कुछ तरंग हुए नहीं- वही

रूप हैं, तैसे ही यह जगत् कुछ उपजता नहीं और न लीन होता है, ज्यों का त्यों आत्मसमुद्र अपने आपमें स्थित हैं, जगत् संकल्प से फुरता है और संकल्प ही अहंरूपी किञ्चनमात्र उदय हुआ है । जैसे कमल से सुगन्ध लेकर तरियाँ निकलती हैं तैसे ही भूल से देवी जगत्‌रूपी सुगन्ध को लेकर उदय हुई है परन्तु वास्तव जगत् कुछ बना नहीं केवल संकल्प से बने की नाई भास ता है।हे मुनीश्वर वास्तव में न कोई संकल्प है और न प्रलय है ज्यों का त्यों ब्रह्म अपने स्वभाव में स्थित है । जैसे आकाश में आकाश और समुद्र में समुद्र स्थित है, तैसे ही ब्रह्म में स्थित है । हे मुनीश्वर! यह जगत् न सत्य है और न असत्य है, आत्मा में न यह उदय हुआ और न अस्त होवेगा । जैसे आकाश में नीलता न सत्य है, न असत्य है, तैसे ही ब्रह्म में जगत् न सत्य है और न असत्य है । मैं उस ब्रह्म का किञ्चन ब्रह्मा हूँ और यह जगत् मेरे संकल्प से उत्पन्न हुआ है । अब मैं संकल्प को निर्वाण करता हूँ, जब संकल्प निर्वाण होगा तब जैसे कमल के नाश हुए सुगन्ध का अभाव हो जाता है तैसे ही जगत् का अभाव हो जावेगा । मेरे से इच्छा फुरी थी, उस वासना में जगत् है । अब मैं इसको निर्वाण करता हूँ, जब इच्छा निर्वाण होगी तब जगत् का भी स्वाभाविक अभाव हो जावेगा । तुम्हारा शरीर संकल्प से भासता है इससे तुम अपनी सृष्टि में जाओ, ऐसा न हो कि तुम्हारा शरीर भी यहाँ निर्वाण हो जावे । हे रामजी! इस प्रकार वह मुझसे कहकर फिर देवी से बोला, हे देवि! अब तू निर्वाण हो और अपने आपमें बोध आदिक को भी लीन कर ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिलान्तरवशिष्ठब्रह्मसंवादवर्णनंनाम शताधिकसप्ताशीतितमस्सर्गः ||187||

अनुक्रम

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार ब्रह्मा ने कहकर पद्मासन बाँधा और सब जनों के संयुक्त `अकार' `मकार' को छोड़कर अर्धमात्रा में स्थित हुआ तब उसकी मूर्ति ऐसी दृष्टि आने लगी जैसे कागज पर लिखी होती है और उसे सम्पूर्ण जगत्जाल का ज्ञान विस्म रणहो गया और देवी भी उसी प्रकार पद्मासन बाँधकर ब्रह्माजी के निश्चय में लीन हो जाने लगी । जब ब्रह्माजी निवेदनरूप ब्रह्म में लीन होने लगे उस समय जितने उपद्रव थे सब उदय हुए । मनुष्य पाप करने लगे, स्त्रियाँ दुराचारिणी हो गई, सब जीवों ने धर्म को त्याग दिया, कामी पुरुष बहुत हुए जो परस्त्रियों के साथ संग करते थे और पुरुष स्त्रियाँ किसी की शंका न करती थीं । काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष बढ़ते गये और शास्त्र की मर्यादा त्यागकर लोग अनीश्वरवादी हुए । वर्षा बन्द हो गई और कुहिरा पड़ने लगा, दुष्काल पड़ा, दुष्टजन धनपात्र होने लगे, धर्मात्मा आपदा भोगने लगे, चोर चोरी करने लगे, राजा मद्यपान करने लगे, जीवों को बड़े दुःख प्राप्त होने लगे । और तीनों तापों से जलने लगे और राजाओं ने न्याय को त्याग दिया । निदान जो पाप आचार थे सो उदय हुए और धर्म छिप गया, अज्ञानी राज्य करें, पण्डित ज्ञानी टहल करें, दुर्जनों की मानपूजा हो, सत्‌पण्डितों का निरादर हो, जीवों के समूह इकट्ठे हुए और पृथ्वी ने अपनी सत्ता को त्याग दिया, क्योंकि पृथ्वी ब्रह्मा के संकल्प में थी, जब उसने अपना संकल्प खैंचा तब निर्जीव हो गई और चैतन्यता निकल गई । जो स्थान भूतों के बिचरने के थे सो खाईं की नाईं हो गये, भूतनाश हो गये और पृथ्वी भी नाश होने लगी, पर्वत काँपने लगे, और भूचाल और हाहाकार शब्द होने लगे, जैसे शरत्‌काल में बेल सूख जाती है और जर्जरीभाव को प्राप्त होती हे तैसे ही पृथ्वी जर्जरीभाव को प्राप्त हुई, क्योंकि चैतन्यतारूप शरीरों और सर्व जगत् का कारण ब्रह्मा है । ज्यों ज्यों संकल्परूपी चैतन्यता क्षीण होती गई त्यों त्यों पृथ्वी जर्जरीभूत होती गई । जैसे किसी पुरुष का अर्धांग मारा जाता है तब वह अंग शव सा हो जाता है और फुरना उसमें नहीं रहता तैसे ही ब्रह्मा की संकल्परूप चैतन्यता पृथ्वी से निकलती जाती थी । इस कारण पृथ्वी दुःखी हुई, धूलि उड़ने लगी और नगर नष्ट होने लगे । इस प्रकार उपद्रव हुए, क्योंकि पृथ्वी के नाश का समय निकट आया और समुद्र जो अपनी मर्यादा में स्थित थे उन्होंने भी अपनी मर्यादा त्याग दी । जैसे कामी पुरुष मद्यपान किये से अपनी मर्यादा को त्यागता है, तैसे ही समुद्र उछले, किनारे गिर गये और पर्वत कन्दरा से निकलकर पृथ्वी का नाश करने लगे । राजा और नगरवासी भागने लगे और उनके पीछे तीक्ष्ण वेग से जल चलने लगा बड़े पर्वत गिरने लगे और चक्र की नाईं फिरने लगे । समुद्र के तरंगों से पर्वत गिरते थे और तरंगें उछलकर पाताल को गईं और पाताल का नाश होने लगा । बड़े रत्नों के पर्वत जब गिरे तब रत्नों का ऐसा चमत्कार हो जैसे तारा मण्डल का होता है । इसी प्रकार बड़ा क्षोभ होने लगा और तरंग उछलकर सूर्य-चन्द्रमा के मण्डल को जाने लगे और उनका प्रकाश जाता रहा । बड़वाग्नि उदय हुई तब वरुण, कुबेर आदि देवताओं के वाहन भयवान् हुए और जल के वेग से पर्वत नृत्य करने लगे-मानों पर्वतों को पंख लगे हैं और स्वर्ग के कल्पतरु समुद्र में आन पड़े और चिन्तामणि, सिद्ध और गन्धर्व गिरने लगे! समुद्र इकट्ठे हो गये । जैसे गंगा जमुना और सरस्वती एकत्र होती हैं तैसे ही समुद्र मिलकर शब्द करने लगे और उनमें से ऐसे मच्छ निकले जिनके पूँछों के लगने से पर्वत उड़ जावे । कन्दरा में जो हाथी थे वे पुकार करने लगे और सूर्य, चन्द्रमा, तारागण क्षोभ को प्राप्त होकर समुद्र में गिरने लगे । हे रामजी इस प्रकार

प्रलय के क्षोभ से जितने लोकपाल थे वे सब समुद्र के मुख में आन पड़े और मच्छ उनको भक्षण कर गये । तरंग आपस में युद्ध करने लगे जैसे मतवाले हाथी शब्द करते हैं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शताधिकाष्टाशीतितमस्सर्गः ||188||

अनुक्रम

निर्वाण वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! उस विराट्‌रूप ब्रह्मा ने जिसकी देह सम्पूर्ण जगत् था अपने प्राण को खैंचा तब नक्षत्र चक्र का फेरनेवाला जो वायु है सो अपनी मर्यादा त्याग कर क्षोभ करने लगा और वे चक्र नाश होने लगे, क्योंकि ब्रह्मा के संकल्प में वे थे किसी को सामर्थ्य नहीं कि उनको रक्खे । तेजोमय जो देवता थे सो पवन के आधार थे, पवन के निकलने से वे निराधार होकर समुद्र में गिरने लगे और जैसे वृक्ष से फूल गिरते हैं तैसे ही गिरते भये । जैसे संकल्प के नाश हुए संकल्प का वृक्ष गिरता है और जैसे पक्व फल समय पर वृक्ष से गिरता है, तैसे ही सब गिरते भये । सुमेर की कन्दरा गिरी और पवन का बड़ा क्षोभ और शब्द हुआ । जैसे पवन में तृण फिरता है तैसे ही आकाश में पवन फिरने लगा । देवताओं के रहनेवाला जो सुमेरु पर्वत था सो भी गिर पड़ा । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! संकल्प जो ब्रह्मा था सो विराट् आत्मा है- और सब जगत् उसकी देह है । भूमण्डल, पाताल और स्वर्गलोक उनके कौन अंग हैं और संकल्परूप कैसे अंग होते हैं? संकल्प तो आकाशरूप होते हैं और जगत् प्रत्यक्ष पिण्डाकार दृष्ट आता है । जो जिससे उपजता है सो वैसा ही होता है तो यह जगत् ब्रह्मा के अंग कैसे हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस जगत् से पूर्व केवल चिन्मात्र था और उसमें जगत् न सत्य था, न असत्य था, केवल आत्मत्वमात्र अपने आपमें स्थित था । जैसे आकाश अपने आपमें स्थित है और एक और दो शब्द से रहित है । उसे केवल चिन्मात्र का किञ्चन अहं होकर स्थित हुआ, उसका दृश्य से सम्बन्ध हुआ और उसके अनुभव ग्रहण से जो निश्चय हुआ उसका नाम बुद्धि है और जब मनन हुआ उसका नाम मन है, उस मन के फुरने से जगत् दृश्य हुआ है । हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्र में जो चैत्य है वहीं ब्रह्मा कहाता है, उसके फुरने में आगे जगत् हुआ है और उस संकल्परूप जगत् का वह विराट् है परन्तु आकाशरूप है और कुछ नहीं बना । यह जो आकार सहित जगत् भासता है सो भ्रम से भासता है पर सब संकल्प आकाशरूप है जैसे स्वप्न में जगत् भासता है सो सब आकाशरूप होता है परन्तु निद्रादोष से पिण्डाकार भासता है और आत्म सत्ता सदा ज्यों की त्यों अपने आपमें स्थित है । हे रामजी! अहं जो फुरा है सो मिथ्या है अज्ञान से दृढ़ स्थित हुआ है और असम्यक्दर्शी को दृढ़ भासता है सो केवल संकल्पमात्र है और कुछ नहीं बना । इसमें जितना जगत् भासता है सो चिदाकाश है, एक और द्वैतकलना सर्व शब्दों से रहित आत्मत्वमात्र है, मैं और तुम शब्द कोई नहीं और यह जगत् उनका किञ्चन है जैसे सूर्य की किरणों में जलाभास होता है वैसे ही आत्मा का आभास जगत् है, संकल्प की दृढ़ता से दृश्य भासता है पर है नहीं । जैसे संकल्परूप गन्धर्वनगर और स्वप्नपुर होते हैं, तैसे ही यह जगत् है । हे रामजी! जिस प्रकार मैंने जगत् वर्णन किया है उसे जो पुरुष मेरे कहे के अनुसार ज्यों का त्यों धारे तो उसकी वासना नष्ट हो जावे और पूर्ववत् आत्मा ज्यों का त्यों भासे । जैसे जगत् के आदि आत्मत्वमात्र था तैसे ही भासेगा, क्योंकि और कुछ नहीं केवल आत्मत्वमात्र ज्यों का त्यों स्थित हैं । जो आत्मा ही है तो समवायकारण और निमित्त कारण कैसे हो?जगत् का उदय और नाश होना असत्य है और अद्वैत और अनन्त कहना भी कोई नहीं । जब सब शब्दों का अभाव होता है तब परम चिदाकाश अनुभवसत्ता ही शेष रहती है । इसी का नाम मोक्ष है । हे रामजी! हमको तो अब भी संवित्‌सत्ता ही भासती है और मैं शुद्ध हूँ, सर्वकल्पना से रहित हूँ, और चिदाकाश हूँ । मुझमें जो वशिष्ठ अहं फुरा है सो फुरा नहीं फुरे की नाईं भासता है और आत्मा का ही किञ्चन है, हुआ कुछ नहीं । इससे तुम भी इसी प्रकार जाकर निर्वासनिक हो रहो और अपने प्रकृत आचार को करो अथवा न करो, जो इच्छा है सो

करो परन्तु करने और न करने का संकल्प -मत करो और परम मौन में स्थित हो रहो । ज्ञानवान् को यही अनुभव होता है, इससे तुम भी ऐसे ही धारो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे निर्वाणवर्णनन्नाम शताधिक नवाशीतितमस्सर्गः ||189||

अनुक्रम

पिण्डात्मवर्णन

रामजी ने पूछा, हे भगवान्! बन्धमोक्ष जगत् बुद्धि न सत् है और न असत् है, उदय भी नहीं हुआ और अस्त भी नहीं होता केवल ज्यों का त्यों आत्मा स्थित है, ऐसे आपने मुझको उपदेश किया है इसलिये मैंने जाना है कि आत्मा में जगत् ने उपजता है और न मिटता है पर तुम्हारे अमृतरूपी वचनों को सुनता मैं तृप्त नहीं होता और अमृत की नाईं पान करता हूँ । जगत् सत्-असत् से रहित सन्मात्र है उसको मैंने जाना है । अब यह कहिये कि संसारभ्रम कैसे उपजता है और अनुभव कैसे होता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो कुछ तुमको स्थावर-जंगम जगत् सब प्रकार देशकाल संयुक्त दीखता है उसके नाश का नाम महा प्रलय है । उसमें ब्रह्मा, विष्णु रुद्र और इन्द्र भी लीन हो जाते हैं और उसके पीछे जो शेष रहता है वह स्वच्छ, अज, अनादि, केवल आत्मतत्त्वमात्र है-उसमें वाणी की गम नहीं केवल अपने आपमें स्थित है और परम सूक्ष्म हो जिसमें आकाश भी स्थूल है । जैसे सुमेरुपर्वत के निकट राई का दाना सूक्ष्म है तैसे ही आकाश से भी आत्मा सूक्ष्म है और संवेदन से रहित चिन्मात्र है- उसमें अहं किञ्चन होकर फुरा है । आत्मा सदा निर्विकल्प है, समुद्रवत् है, देशकाल के भ्रम से रहित है और केवल चैतन्यघन अपने आपमें स्थित है । जैसे स्वप्न में अपने भाव को लेकर जीव स्थित होता है तैसे ही आत्मा अपने भाव को लेकर चेतन किञ्चन होता है । उसी का नाम ब्रह्म है और वह भी चिद्रूप है । हे रामजी! चिद्अणु जो अपने भाव को लेकर उदय हुआ है उसने चैत्यनाम दृश्य को देखा । इससे उसका अनुभव मिथ्या हुआ जैसे स्वप्न में कोई अपना मरण देखता है सो अनुभव मिथ्या है, तैसे ही चिद्अणु दृष्टि को देखता है सो मिथ्या दृष्टि है । जब चिद्अणु अपने स्वरूप को देखता है सो केवल निरा काररूप है परन्तु अहंरूप बीज दृढ़ होता है उससे अपने आपसे निकले दृश्य को संकल्प से देखता हे । जैसे बीज से अंकुर निकला है तैसे ही संकल्प के फुरने से देश, काल, दृव्य, द्रष्टा, दर्शन और दृश्य होता है, वास्तव में हुआ कुछ नहीं, आत्मा सदा अपने स्वभाव में स्थित है परन्तु संकल्प से हुए की नाईं भासता है । जहाँ चिद्अणु भासे वह देश है, जिस समय भासे वह काल है, जो भान हो वह क्रिया हुई, भान का ग्रहण द्रव्य है और देखने को जो वृत्ति दौड़ती है वह नेत्र होकर स्थित हुई है । जिसको देखते हैं वह भी शून्य है और देखनेवाले भी शून्य हैं; सब असत् है-कुछ बना नहीं । जैसे आकाश में आकाश स्थित है तैसे ही आत्मा अपने आपमें स्थित है । संकल्प द्वारा सब कुछ बनता जाता है । चिद्अणु जो भासित हुआ वह दृश्यरूप होकर स्थित हुआ है । जब चिद्अणु में स्वरूप की वृत्ति फुरती है तब चक्षु इन्द्रियाँ होकर स्थित होती हैं, जब सुनने की वृत्ति फुरती है तब श्रोत्र होकर स्थित होते हैं, जब स्पर्श की वृत्ति फुरती है तब त्वचा इन्द्रिय होकर स्थित होती है, जब सुगन्ध लेने की वृत्ति फुरती है तब नासिका इन्द्रिय होकर स्थित होती है और जब रस लेने की इच्छा होती है तब जिह्वा इन्द्रिय होकर स्वाद लेती है । हे रामजी! प्रथम यह चिद्अणु नाम से रहित फुरा है और सम्पूर्ण जगत् भी तद्रूप ही था और अब भी वही केवल आकाशरूप है । संकल्प से अपने में पिण्डघन देखकर शरीर और इन्द्रियाँ देखीं । अनादि सत््स्वरूप चिद्अणु इन्द्रियों के संयोग से पदार्थों को ग्रहण करता है और स्पन्दरूप जो वृत्ति फुरी है उसी का नाम मन हुआ । जब निश्चयात्मक बुद्धि होकर स्थित हुई तब चिद्अणु में यह निश्चय हुआ कि मैं द्रष्टा हूँ-यही अहंकार हुआ । जब अहंकार से चिद्अणु का संयोग हुआ तब अपने में देशकाल का परिच्छेद देखा, आगे दृश्य और पूर्व उत्तरकाल देखा कि इस देश में बैठा हूँ और यह मैंने कर्म किया है-यह विषम अहंकार हुआ । निदान देश, काल, क्रिया, द्रव्य के अर्थ को भिन्न-भिन्न ग्रहण करता है और आकाश

होकर आकाश को ग्रहण करता है । हे रामजी! आदि फुरने से चिद्अणु में प्रथम अन्तवाहक शरीर हुआ, फिर संकल्प के दृढ़ अभ्यास से आधिभौतिक भासने लगा है । जैसे आकाश में और आकाश हो तैसे ही यह आकाश है और अनहोते भ्रम से उदय हुए हैं और सत् की नाईं भासते हैं । जैसे मरुस्थल में भ्रम से नदी भासती है तैसे ही अविचार से संकल्प की दृढ़ता से पाञ्चभौतिक आकार भासते हैं । उसमें अहं प्रत्यय होने से देखता है कि यह मेरा शिर है, यह मेरे चरण हैं, यह अमुक देश है इत्यादि शब्द-अर्थ और नाना प्रकार का जगत् और भाव-अभाव ग्रहण करता है और इस प्रकार कहता है कि यह देश है, यह काल है, यह क्रिया है और यह पदार्थ है । हे रामजी! जब इस प्रकार जगत् के पदार्थों का ज्ञान होता है तब चित्त विषयों की ओर दौड़ता है और रागद्वेष को ग्रहण करता है । जो कुछ देहादिक भूत फुरने से भासते हैं सो केवल संकल्पमात्र हैं और संकल्प की दृढ़ता से दृढ़ हुए हैं । हे रामजी! इस प्रकार ब्रह्मा; विष्णु और रुद्र उत्पन्न हुए हैं और इसी प्रकार कीट उत्पन्न हुए हैं परन्तु प्रमाद अप्रमाद का भेद है । जो अप्रमादी हैं वे सदा आनन्दरूप स्वतंत्र ईश्वर हैं, उनको यह जगत् और वह जगत् अपना आप रूप है और जो प्रमादी हैं वे तुच्छ हैं और सदा दुःखी हैं पर वास्तव में परमात्मतत्त्व से भिन्न कुछ हुआ नहीं । जैसे आकाश अपनी शून्यता में स्थित है तैसे ही आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और सबका बीज; त्रिलोकीरूप बूँद का मेघ; कारण का कारण; काल में नीति और क्रिया में क्रिया वही है । आदि विराट पुरुष का शरीर भी नहीं और हम तुम भी नहीं केवल चिदाकाशरूप है । अब भी इनका शरीर आकाशरूप है और आत्मसत्ता भिन्न अवस्था को नहीं प्राप्त हुई- केवल आकाशरूप है । जैसे स्वप्न में युद्ध होते और मेघ गर्जते इत्यादि शब्द-अर्थ भासते हैं सो केवल आकाशरूप हैं बना कुछ नहीं परन्तु निद्रादोष से भासते हैं और जब जागता है तब जानता है कि हुआ कुछ न था-आकाश रूप है, तैसे ही जो पुरुष अनादि अविद्या से जागा है उसको जगत् आकाशरूप भासता है । हे रामजी! बहुत योजन पर्यन्त विराट् पुरुष का देह है तो भी ब्रह्म आकाश के सूक्ष्म अणु में स्थित है । यह त्रिलोकी एक चिद्अणु में स्थित है और विराट् पुरुष इसका ऐसा है जिसका आदि, अन्त और मध्य नहीं भासता तो भी एक चावल के समान भी नहीं है । हे रामचन्द्र! यह जगत् और जगत् के भोग विस्तीर्ण दृष्ट आते हैं पर जैसे स्वप्न के पर्वत जाग्रत के एक अणु के समान नहीं तैसे ही विचाररूपी तराजू से तौलिये तो परमार्थसत्ता में इनकी कुछ सत्यता नहीं दृष्ट आती परन्तु आत्मसत्ता से कुछ भिन्न नहीं हुआ, आत्मसत्ता ही इस प्रकार भासती है । इसी का नाम स्वायम्भुव मनु और विराट् है और इसी को जगत् कहते हैं । जगत् और विराट् में कुछ भेद नहीं-वास्तव में आकाशरूप है । सनातन भी इसी को कहते हैं और रुद्र, उपेन्द्र, पवन, मेघ, पर्वत, जल, जितने भूत हैं सो उनका वपु हैं । हे रामजी! इसका आदि वपु जो चिन्मात्ररूप है उसमें चैतन्यता से अपना अणु सा वपु देखता है-जैसे तेज का कणका होता है उस तेज अणु से चैतन्यता-और क्रम करके अपना बड़ा शरीर जगत्‌रूप देखता है । जैसे स्वप्न में कोई पुरुष आपको पर्वत देखे, तैसे ही वह आपको विराट्‌रूप देखता है । जैसे पवन के दो रूप हैं-चलता है तो भी पवन है और नहीं चलता तो भी पवन है-तैसे ही जब चित्त फुरता है तब भी ब्रह्मसत्ता ज्यों का त्यों है और जब चित्त नहीं फुरता तब भी ज्यों का त्यों है परन्तु जब स्पन्द फुरता है तब विराट्‌रूप होकर स्थित होता है और जब चित्त अफुर होता हे तब अद्वैतसत्ता भासती है- और सदा अद्वैत ही विराट्स्वरूप है । हे रामजी! इस दृष्टि से उसके शिर और पाद नहीं भासते । जितनी ब्रह्माण्ड की पृथ्वी है सो उसका मांस है, सब समुद्र उसका रुधिर है, नदी नाड़ी हैं, दशो दिशा वक्षःस्थल है, तारागण रोमावली हैं सुमेरु आदिक अँगुलियाँ हैं, सूर्यादिक तेज पित्त है, चन्द्रमा कफ है, पवन प्राणवायु है सम्पूर्ण जगत्जाल उसका

शरीर है और ब्रह्मा हृदय है सो आकाशरूप है पर संकल्प से नानारूप हो भासता है, स्वरूप से कुछ बना नहीं । आकाश आदिक जगत् सब चिदाकाश रूप है और अपने आपही में स्थित है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पिण्डात्मवर्णनन्नाम शताधिकनवतितमस्सर्गः || 190 ||

अनुक्रम

विराटशरीर वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! आदि जो विराट् है सो ब्रह्मा है उसका आदि-अन्त नहीं और यह जगत् उसका छोटा वपु है, इसी चैतन्य वपु का किञ्चन ब्रह्मारूप हुआ है । उसके विस्तार का क्रम सुनो-उस ब्रह्मा ने, जिसका वपु संकल्पमात्र है, अपने संकल्प से एक अण्ड रचा और उसको तोड़ फोड़ कर ऊर्ध्वभाग ऊपर किया और नीचे का भाग नीचे गया । पाताल ब्रह्मा का चरण हुआ, ऊर्ध्व शिर हुआ, मध्य आकाश उदर हुआ, दशोदिशा वक्षस्थल, हाथ, सुमेरु आदिक पर्वत, माँस पृथ्वी, समुद्र और सब नदियाँ उसकी नाड़ी, जल रुधिर, प्राण अपान वायु पवन, हिमालय पर्वत कफ, सर्वतेज पित्त, चन्द्रमा और सूर्य नेत्र तारागण स्थूल लार और लार प्रण के बल से निकलती है-जैसे ताराचक्र को पवन फेरता है-ऊर्ध्वलोक उसकी शिखा मनुष्य, पशु और पक्षी रोम, सब भूतों की चेष्टा उसका व्यवहार है, पर्वत अस्थि, ब्रह्मलोक उसका मुख है और सब जगत् उस विराट् का वपु है । रामजी बोले, हे भगवन्! यह जो आपने संकल्परूप ब्रह्मा और जगत् उसका वपु कहा उसे मैं मानता हूँ परन्तु यह जगत् तो उसी का शरीर हुआ फिर ब्रह्मलोक में ब्रह्मा कैसे बैठता है और अपने शरीर में भिन्न होकर कैसे स्थित होता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसमें क्या आश्चर्य है? जो तुम ध्यान लगा कर बैठो और अपनी मूर्ति अपने हृदय में रच कर स्थित हो तो बन जावे । जैसे मनुष्य को स्वप्ना आता है और उसमें जगत् भासता है सो सब अपना स्वरूप है परन्तु अपनी मूर्ति धार कर और को देखता है, तैसे ही ब्रह्मा का एक शरीर ब्रह्म लोक में भी होता है । ब्रह्मा और जीव में इतना भेद है कि जीव भी अपनी स्वप्नसृष्टि का विराट् है परन्तु उसको प्रमाद से नहीं भासती और ब्रह्मा सदा अप्रमादी है उसको सब जगत् अपना शरीर भासता है । हे रामजी! देवता, सिद्ध ऋषीश्वर और विद्याधर उस विराट् पुरुष की ग्रीवा में स्थित है, भूत, प्रेत, पिशाच सब उस विराट् पुरुष के मल से उपजे है और कीट कीट की नाईं उदर में स्थित है और स्थावर-जंगम जगत् सब संकल्प से रचा हुआ विराट् में स्थित है-सब उसी के अंग हैं । जो जगत् है तो विराट् भी है और जगत् नहीं तो विराट् भी नहीं । जगत्, ब्रह्म और विराट् तीनों पर्याय हैं इससे सम्पूर्ण जगत् विराट् का वपु है-निराकार क्या और आकार क्या-सब भीतर बाहर विराट का वपु है । जैसे भीतर बाहर आकाश में भेद नहीं तैसे ही विराट आत्मा में भेद नहीं । जैसे पवन के चलने और ठहरने में भेद नहीं तैसे ही विराट और आत्मा में भेद नहीं जैसे चलना और ठहरना दोनों रूप पवन के हैं तैसे ही साकार निराकार सब विराट का शरीर है । हे रामजी! इस प्रकार जगत् हुआ है सो कुछ उपजा नहीं संकल्प से उपजे की नाईं भासता है । जैसे सूर्य की किरणों में जल है नहीं और हुए की नाईं भासता है, तैसे ही ब्रह्मसत्ता में जगत उपजे की नाई भासता है और उपजा कुछ नहीं- केवल अपने आप में स्थित है वह शिला की नाई स्थित है अर्थात् तुम्हारा संकल्प विकल्प और चैतन्य रूप चैत्य से रहित चिन्मात्रस्वरूप है-इससे कलना को त्यागकर अपने स्वभाव में स्थित हो रहो

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विराटशरीरवर्णनन्नाम शताधिकैकनवतितमस्सर्गः ||191||

अनुक्रम

जगद्‍ब्रह्मप्रलय वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! प्रथम प्रलय का प्रसंग फिर सुनो । मैं ब्रह्मपुरी में ब्रह्मा के पास बैठा था, जब मैंने नेत्र खोलकर देखा कि मध्याह्न का समय है और दूसरा सूर्य पश्चिम दिशा में उदय हुआ है उसका बड़ा प्रकाश है- मानों सम्पूर्ण तेज इकट्ठा हुआ है वे बड़वाग्नि की नाईं प्रकाश हुआ है और बिजली की नाईं स्थित हुआ है-उसको देखकर मैं आश्चर्यवान् हुआ । ऐसा देखता था कि एक और सूर्य उदय हुआ, फिर उत्तर दिशा की ओर और सूर्य उदय हुआ, इसी प्रकार दश सूर्य आकाश में प्रकट हुए और एक प्रथम था और बड़वाग्नि समुद्र से उदय हुई उससे एक सूर्य निकला सब द्वादश सूर्य इकट्ठे होकर विश्व को तपाने लगे । हे रामजी! प्रलय के तीन नेत्र उदय हुए-एक नेत्र सूर्य,दूसरा नेत्र बड़वाग्नि और तीसरा नेत्र बिजली वे तीनों विश्व को जलाने लगे, दिशा सब रक्त हो गई; अट्ट अट्ट शब्द होने लगे, नगर, वन कन्दरा, पृथ्वी जलने लगी, देवताओं के स्थान जलजलकर गिरने लगे पर्वत जलकर श्याम हो गये, ज्वाला के कण निकलकर पाताल को गये वह भी जल गया, समुद्र जलकर सूख गये और हिमालय पर्वत के बरफ का जल होकर जलने लगा-जैसे दुर्जनों से संगकर साधु का हृदय तप्त होता है-जब इसी प्रकार बड़ी अग्नि प्रज्वलित हुई तब मुझको भी तपन आने लगी और मैं वहाँ से दौड़कर नीचे जाकर स्थित हुआ । वहाँ मैंने देखा कि अस्ताचल पर्वत जलता हुआ उदयाचल पर्वत के पास आ पड़ा, मन्दराचल और सुमेरु पर्वत जलकर गिरने लगे और अग्नि की ज्वाला ऊँचे उठकर भड़भड़ शब्द करने लगी । हे रामजी! इस प्रकार सम्पूर्ण विश्व जलने लगा, बड़ा क्षोभ हुआ और जहाँ कुछ रस था सो सब सूख गया । हे रामजी! जिसको अज्ञानी रस कहते हैं सो सब विरस है परन्तु अपने अपने काल में रस संयुक्त दृष्टि आते हैं । उस काल में मुझको सब ऐसे भासे जैसे जली हुई बेल होती है । हे रामजी! इस प्रकार मैंने सब विश्व जलता देखा परन्तु ज्ञान से जिसका अज्ञान नष्ट हुआ था सो सुखी दृष्टि आता था और सब अग्नि में जलते दृष्टि आते थे और बड़े भयानक शब्द होते थे । शिव का जो कैलाश पर्वत है उसके निकट जब अग्नि आई तब सदाशिव ने अपने नेत्र से अग्नि प्रकट कि जिससे बड़ा क्षोभ हुआ और ब्रह्माण्ड जलने लगा । तब महापवन चला और बड़े पर्वत उड़ने लगे-जैसे तृण उड़ते हैं । जो स्थान जले थे उनकी आँधी होकर यक्षों के स्थान भी उड़ने लगे, निदान बड़ा क्षोभ हुआ और इन्द्रादिक देवता अपने स्थान को त्यागकर ब्रह्मलोक में चले गये, बड़े मेघ जो जल से पूर्ण थे सूखकर जलने लगे और कल्परूपी पुतली नृत्य करने लगी । जले स्थानों से जो धूम्र निकलता था वह उसके केश थे और प्रलय शब्द उसका बोलना था । बड़ा पवन चलने लगा, पर्वत जलकर उड़ने लगे और सुमेरु आदिक पर्वत तृणों की नाईं उड़ते थे । निदान जीवों को बड़ा कष्ट हुआ जो कहा नहीं जाता ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगद्‍ब्रह्मप्रलयवर्णनन्नाम शताधिकद्विनवतितमस्सर्गः ||192||

अनुक्रम

ब्रह्मजलमय वर्णन

वशिष्टजी बोले, हे रामजी! जब अग्नि से सब स्थान जल गये उसके उपरान्त पुष्कल मेघ गर्जकर वर्षने लगे और प्रथम मूसल की, फिर थम्भ-धारा, फिर नदी की नाईं और महानद की नाईं वर्षने लगे जिनकी गंगा यमुना नदी लहरें हैं और उनसे सब स्थान शीतल हो गये- जैसे तीनों तापों से जला हुआ अज्ञानी सन्तों के संग से शीतल होता है। हे रामजी! फिर ऐसा जल चढ़ा जिससे सुमेरु आदिक पर्वत नृत्य करने लगे और जैसे समुद्र में झाग होते हैं तैसे ही हो गये अथवा ऐसे जान पड़ते थे जैसे जलचर होते हैं। हे रामजी! ऐसे जल चढ़े कि कहा नहीं जाता, बड़े बड़े स्थान और देवता, सिद्ध, गन्धर्व बहे जाते थे। जिनको अज्ञानी परमार्थ जानकर सेवन करते हैं वे भी बहते दृष्टि आये। जैसे कोई पुरुष कण्टक के अन्धे कूप में गिरके दुःख पावे तैसे ही वे दृष्टि आवे पर मुझको सब ब्रह्म दृष्टि आवे पर जब संकल्प की ओर देखूँ तब महाप्रलय दृष्टि आवे और मेघ गर्जते घटा होकर दृष्टि आवें। निदान ब्रह्मलोक पर्यन्त जल चढ़ गया और मैं देखकर आश्चर्य को प्राप्त हुआ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मजलमयवर्णन नाम शताधिकत्रिनवतितमस्सर्गः ||193||

अनुक्रम

निर्वाण प्रकरण

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! उस ब्रह्मा का जगत् जलमय हो गया और मुझे जल से भिन्न कुछ न भासे सब शून्य ही भासे ऊर्ध्व ही भासे ऊर्ध्व, अधः और मध्य दिशा भी न भासें और न कोई पर्वत, न कोई देवता, न पशु और न पक्षी भासें । तब मैंने ब्रह्मपुरी को देखा कि इसकी क्या दशा है । फिर जैसे प्रातःकाल का सूर्य अपनी प्रभा को फैलाता है, तैसे ही मैंने ब्रह्मपुरी को दृष्टि फैलाके देखा तब ब्रह्माजी मुझको परमसमाधि में दृष्टि आये और भी जो जीवन्मुक्त ब्रह्मा के परिवार वाले थे वे भी सब पद्मासन बाँध करके परमसमाधि लगाये बैठे थे और जैसे पत्थर पर मूर्ति हो तैसे ही बस परमसमाधि में अचल स्थित थे और संवेदन फुरने से रहित थे । चारों वेद मूर्ति धरे और बृहस्पति, वरुण, कुबेर, यम, चन्द्रमा, अग्नि , देवता इत्यादि ऋषीश्वर मुनीश्वर जीवन्मुक्त सबको मैंने ध्यान में स्थित देखा और द्वादश सूर्य भी जो विश्व को तपाते थे सो पद्मासन बाँधकर समाधि में स्थित हुए थे । एक मुहूर्त पर्यन्त मैंने इसी प्रकार देखा जब एक मुहूर्त बीता तब सूर्य बिना सब अन्तर्धान हो गये । जैसे स्वप्न की सृष्टि अपने में विद्यमान होती है और जागे से अभावना हो जाती है, तैसे ही मेरे देखते-देखते ब्रह्मपुरी शून्य वन की नाईं हो गई । जैसे राजपतन से मार्गप्रलय हो जाते हैं तैसे प्रलय हो गई । हे रामजी! जैसे स्वप्न में मेघ गर्जते दृष्टि आते हैं-और यह दृष्टान्त तो बालक भी जानते हैं कि प्रत्यक्ष अनुभव को छिपाते हैं वे मूर्ख हैं । मैं अनुभव से भी जानता हूँ, स्मृति भी होती है और सुना भी है कि जबतक निद्रा है तबतक स्वप्ने की सृष्टि भासती है और जागे से उसका अभाव होता है-तैसे ही जबतक ब्रह्मा की वासना थी तबतक सृष्टि थी जब वासना क्षय हुई तब सृष्टि कहाँ रही । जब वासना नष्ट होती है तब अन्तवाहक आधिभौतिक शरीर नहीं रहते । हे रामजी । जब शुद्धमात्र पद से चित्तशक्ति फुरती है तब पिण्डाकार हो भासती है और जबतक वह शरीर है तबतक संसार उपजता भी है और नष्ट भी होता है, तैसे ही ब्रह्मा की सुषुप्ति में जगत् लीन हो जाता है और जाग्रत में उत्पन्न होता है, क्योंकि ब्रह्मा के शरीर का सुषुप्ति में लीन होना ही प्रलय है । यदि कहिये कि इस शरीर के नाश का नाम महा प्रलय हो तो ऐसे नहीं है, क्योंकि मृतक हुए शरीर का नाश होता है और फिर लोक भासता है और जो कहिये कि वह परलोक भ्रममात्र है तैसे ही यह भी भ्रान्तिमात्र है और वह परलोक भान्तिमात्र है इसी का नाम महाप्रलय है तो ऐसे भी नहीं है, क्योंकि श्रुति, स्मृति और पुराण सब कहते हैं कि महाप्रलय में कुछ नहीं रहता केवल आत्मसत्ता ही रहती है और जो कहिये कि परलोक भान्तिमात्र है इसका नाश होना क्या है तो श्रुति और शास्त्र का कहना व्यर्थ होता है और जो उनका कहना व्यर्थ होता है और जो उनका कहना व्यर्थ हो तो इनके कहने से ब्रह्माकार वृत्ति किसी को उत्पन्न न हो । जो तुम कहो कि जैसे अंगवाला अंग को सकुचा लेता है तैसे ही स्थूलभूत सकुचकर अपने सूक्ष्मकारण में जा लीन होते हैं इसी का नाम महाप्रलय है, तो ऐसे भी नहीं, क्योंकि सूक्ष्मभूत के रहते महाप्रलय नहीं होता और जो तुम कहो कि संवे दन जो अज्ञान है जिसमें अहं फुरता है उसका नाम महाप्रलय है सो यह भी नहीं, क्योंकि मूर्छा में इसके अज्ञान होता है परन्तु फिर सृष्टि भासती है और मृत्यु होती है सो बड़ी मूर्छा है पर उसमें भी फिर पाञ्चभौतिक शरीर भासता है और आगे जगत् भासता है इससे इसका नाम भी महाप्रलय नहीं । जो तुम कहो कि जबतक यह पाञ्चभौतिक शरीर है तबतक जगत् है और इसका अभाव हो तब महाप्रलय है तो यह भी नहीं क्योंकि जब शरीर को जीव त्यागता है और उसकी क्रिया नहीं होती तो पिशाच होता है । इस शरीर का जब निरूप होता है और मनुष्य शव हो जाता है तब क्षत्रिय ब्राह्मण की संज्ञा नहीं रहती,

इससे तुम देखो कि सब देह का नास भी महाप्रलय नहीं और प्रमाद करके विपर्यय का नाम भी महाप्रलय नहीं । महाप्रलय उसको कहते हैं कि जिसमें सबका अभाव हो जावे और सबका अभाव तब होता है जब वासना क्षय हो जाती है । इसलिए वासना के क्षय को ज्ञानी निर्वाण कहते हैं । जैसे जबतक निद्रा है तबतक स्वप्ने का जगत् भासता है और जाग्रत् में स्वप्ने के जगत् का अभाव हो जाता है, तैसे ही जबतक वासना हे तबतक जगत् है, जब वासना का क्षय होता है तब जगत् का अभाव होता है । हे रामजी! वासना भी फुरती नहीं आभासमात्र है और तुम जो कहो कि भासता क्यों है? तो जो कुछ भासता है सो वही अपने भाव में आप स्थित है । हे रामजी! उत्थान होने का नाम बन्धन है और उत्थान के मिटने का नाम मोक्ष है । हे रामजी! नेत्र के खोलने और मूँदने में भी कुछ यत्न है पर मुक्त होने में कुछ यत्न नहीं । जो वृत्ति बहिर्मुख हुई तो बन्धन हुआ और वृत्ति अन्तर्मुख हुई तो मुक्त हुआ । इसमें क्या यत्न है? इसलिये सुषुप्त की नाईं निर्वासनिक स्थित हो रहो । जब अहंसंवेदन फुरता है तब मिथ्या जगत् सत्य हो भासता है । आगे जो इच्छा हो सो करो पर जब अहं उत्थान से रहित होगे तब निर्वाणपद को प्राप्त होगे, जहाँ एक और दो कल्पना कोई नहीं उस परमशान्त निर्विकल्प पद को प्राप्त होगे ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शताधिकचतुर्णवतितमस्सर्गः ।।194।।

अनुक्रम

जगन्मिथ्यात्वप्रतिपादन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! निदान वे बह्माजी अन्तर्धान हो गये-जैसे तेल बिना दीपक निर्वाण हो जावे । जब ब्रह्माजी ब्रह्मपद में निर्वाण हुए और द्वादश सूर्य फिर ब्रह्मपुरी को जलाने लगे और सम्पूर्ण ब्रह्मपुरी जल गई तब वे सूर्य भी ब्रह्मा की नाईं पद्मासन बाँध स्थित हुए । जैसे तेल बिना दीपक निर्वाण होता है तैसे ही वे सूर्य भी निर्वाण हो गये । हे रामजी! जब द्वादश सूर्य निर्वाण हो गये तब समुद्र उछले और ब्रह्मपुरी को ढ़ाँप लिया । जैसे रात्रि में अन्धकार नगर को ढ़ाँप लेता है तैसे ही ब्रह्मपुरी को उन्होंने आच्छादित किया, बड़े तरंग उछले और पुष्कलमेघ भी तरंगों से छेदे गये और जलरूप हो गये । हे रामजी! तबतक एक पुरुष आकाश से निकला मुझको दृष्ट आया, जो महाभयानक श्यामरूप उग्र आकार था । उसने सबको ढ़ाँप लिया और वह कृष्णमूर्ति मानों कल्पपर्यन्त रात इकट्ठी होकर उसका रूप आन स्थित हुआ है और मुख से ज्वाला निकलती है । उसके शरीर का बड़ा प्रकाश था मानो कोटि सूर्य स्थित हैं और बिजली का प्रकाश इकट्ठा हुआ है । उसके पञ्चमुख थे, दश भुजा थीं और तीन नेत्र थे-मानों तीनों सूर्य चमत्कार करते हैं । हाथ में उसके त्रिशूल था और आकाश की नाईं उसकी मूर्ति थी । जैसे क्षीरसागर के मथने को भुजा बड़ी करके विष्णु ने शरीर धारा था और क्षीरसमुद्र को क्षोभाया था तैसे ही नासिका के पचन से वह समुद्र को क्षोभित करता हुआ । जैसे आकाश का बड़ा वपु है तैसा ही उसने स्वरूप धारण किया-मानो प्रलयकाल के समुद्र मूर्ति धर के स्थित हुए हैं,अथवा मानो सर्व अहंकार की समष्टिता अथवा महाप्रलय की बड़वाग्नि की मूर्ति स्थित व प्रलयकाल के मेघ मूर्ति धरके स्थित हुए हैं । हे रामजी! मैंने जाना कि यह महा रुद्र है, क्योंकि इसके हाथ में त्रिशूल है, तीन नेत्र और पञ्चमुख हैं । ऐसे जानकर मैंने उसे प्रणाम किया । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! उसका भयानक रूप क्या था और रुद्र किसको कहते हैं? उसका बड़ा आकार, दश भुजा, पञ्चमुख और तीन नेत्र क्या थे और हाथ में त्रिशूल क्या था? क्या वह किसी का भेजा आया था उसने क्या किया और कहाँ गया? वह अकेला था अथवा उसके साथ कोई और था और वह श्याम मूर्ति क्यों था? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! विषम विष परिच्छिन्न जो अहंकार है सो त्यागने योग्य है और समष्टि अहंकार सेवने योग्य है । सर्व आत्मा प्रतीति का नाम समष्टि अहंकार और उसी का नाम रुद्र है । कृष्णमूर्ति इस निमित्त थी कि आकाशरूप है । जैसे आकाश में नीलता है तैसे ही उसमें कृष्णता थी । सब जीव जो अपने अहंकार को त्यागकर निर्वाण हुए उनकी समष्टिता होकर रुद्ररूप भासी इसी से उग्र था । पञ्चमुख ज्ञान इन्द्रियों की समष्टिता थी और दश भुजा कर्म इन्द्रियों की समष्टिता थी राजस, तामस और सात्विक तीन गुण तीनों नेत्र थे अथवा भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान, व ऋग्, यजुः और साम तीनों वेदनेत्र थे, अथवा मन, बुद्धि और चित्त तीनों नेत्र थे । ऊँकार की तीन मात्रा उसके नेत्र और आकाशरूप वपु था और त्रिलोकीरूपी हाथ में त्रिशूल था । चित्संवित् से फुरा था इससे उसी का भेजा आया था और फिर उसी में लीन होगा । वह केवल आकाशरूप था । जो कुछ उसने किया वह भी सुनो । हे रामजी! ऐसा वह रुद्र था मानो आकाश को पंख लगे हैं, उसने अपने नेत्र प्राणों को खींचा तो सर्व जल उसके मुख में प्रवेश करने लगे । जैसे नदी समुद्र में प्रवेश करती है तैसे ही सब जल रुद्र में लीन हुए और जैसे बड़वाग्नि समुद्र को पान कर लेती है, तैसे ही उस रुद्र ने एक मुहूर्त में सब जल पान कर लिया, कहीं जल का अंश भी दृष्टि न आवे । जैसे अन्धकार को सूर्य लीन कर लेता है तैसे ही उसने जलपान कर लिया और जैसे अज्ञानी का अज्ञान सन्त के संग से नष्ट हो जाता है तैसे ही उसने जल को पान कर लिया । तब केवल शुद्ध आकाश हो गया, न कहीं

पृथ्वी दृश्य आवे, न अग्नि, न वायु, कोई तत्त्व कहीं दृष्टि न आवे-एक आकाश ही दृष्टि आवे-जैसे उज्ज्वल मोती होता है तैसे ही उज्ज्वल आकाश दृष्टि आवे और चारों तत्त्व न भासें । एक तो अधोभाग दृष्टि आवे, दूसरे मध्य भाग आकाश सो रुद्र ही दृष्टि आवे, तीसरे ऊर्ध्व भाग दृष्टि आवे और चौथे चिदा काश दृष्टि आवे कि सर्वात्मा है और कुछ दृष्टि न आवे । हे रामजी! वह रुद्र भी आकाश रूप था और उसका कोई आकार न था केवल भ्रान्ति से आकार भासता था जैसे भ्रम से आकाश में नीलता और तरुवरे भासते हैं और जैसे स्वप्न में भ्रम से आकार भासते हैं, तैसे ही रुद्र आकार दृष्टि आया पर आत्मा आकाश से भिन्न न था । जैसे चिदाकाश में भूताकाश भ्रम से भासता है, तैसे ही रुद्र का शरीर भासा । वह रुद्र सर्वात्मा था और आकाश होकर भासा सो किञ्चन था । हे रामजी! आकाश में रुद्र निराधार भासा था जैसे मेघ निराधार होते हैं तैसे ही वह निराधार दृष्टि आता था । श्रीरामजी ने पूछा, हे भगवन् इस ब्रह्माण्ड के ऊपर क्या है और फिर उसके ऊपर क्या है सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह जो ब्रह्माण्ड का आकाश है उस पर दश गुणा जल अवशेष है, जल के ऊपर दशगुणा अग्नि है उसके ऊपर दशगुणा वायु है और उसके ऊपर दशगुणा आकाश है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ये तत्त्व जो तुमने वर्णन किये सो किसके ऊपर हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ये तत्त्व पृथ्वी के ऊपर स्थित हैं । जैसे माता की गोद में बालक आन बैठता है तैसे ही तत्त्व पृथ्वी पर हैं और पृथ्वी भागों के आश्रय है । रामजी! ने पूछा, हे भगवन्! पृथ्वी आदिकतत्त्व सहित निराधार ब्रह्माण्ड किसके आश्रय स्थित हुआ है, उनका चलना और ठहरना कैसे होता है और नाश कैसे होते हैं? कहो कि आकाश में मेघ किसके आश्रय होते हैं? सूर्य और चन्द्रमा किसके आश्रय होते है? जैसे ये संकल्प के आश्रय हैं तैसे ही ब्रह्माण्ड भी संकल्प आत्मा के आश्रय है तैसे ही यह जगत् और तत्त्व भी आत्मसत्ता के आश्रय स्थित हैं और इनका ठहरना और गिरना भी आत्मा के आश्रय है । जैसे आदि चित्त स्पन्द होकर नीति हुई है तैसे ही है । इस प्रकार गिरना है, इस प्रकार ठहरना है, इस प्रकार इसका नाश होना है और इस प्रकार रहना है तैसे ही परम स्वरूप से भिन्न कुछ नहीं-केवल भ्रममात्र है जैसे सूर्य की किरणों में जलाभास होता है तैसे ही आत्मा में जगत् भासता है और चित्तसंवित् ही जगत् आकार हो भासती है । जैसे आकाश में नीलता भासती है तैसे ही आत्मा में जगत् भासता है और जैसे तलवार में श्यामता भासती है तैसे ही आत्मा में जगत् है । जैसे नेत्रदोष से आकाश में मोती भासते हैं तैसे ही आत्मा में जगत् भासता है और मिथ्या जगतों की संख्या कीजिये तो नहीं होती । जैसे सूर्य की किरणों का आभास और रेत के कणके में संख्या होती, तैसे ही जगत् की संख्या नहीं होती और वास्तव में कुछ बना नहीं-अजातजात हैं । जैसे स्वप्ने में अनहोनी सृष्टि भासती है तैसे ही यह जगत् भासता है, इससे दृश्य को मिथ्या जानकर जगत् की वासना त्यागो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगन्मिथ्यात्वप्रतिपादनंनाम शताधिकपञ्चनवतितमस्सर्गः ।।195।

अनुक्रम

देवीरुद्रोपाख्यान वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! उस रुद्र का तो मैंने बड़ा भयानक रूप देखा था । उसके बड़े तेज से पूर्ण थे-चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि ये तीनों उसके नेत्र थे और वह महा भयानक था-मानों प्रलय के समुद्र मूर्ति धरके स्थित हुए हैं । रुण्डों की माला उसके कण्ठ में थी और उसकी परछाहीं बड़ी और श्यामरूपी निकलती थी, उसको देखकर मैं आश्चर्यवान् हुआ कि यहाँ सूर्य और अग्नि भी नहीं और किसी का प्रकाश भी नहीं तो यह परछाहीं किस प्रकार है और क्या है । ऐसे मैं देखता ही था कि परछाहीं नृत्य करने लगी और उससे एक स्त्री निकली जिसका शरीर दुर्बल, बड़ा ऊँचा आकार और कृष्णवर्ण था-मानों अँधेरी रात्रि मूर्ति धरके स्थित हुई है और उसके तीन नेत्र बड़ी भुजा और ऊँची ग्रीवा थी-मानों प्रलयकाल के मेघ मूर्ति धारके स्थित हुए हैं । उसके गले में रुद्राक्ष और रुण्डों की माला पड़ी हुई थी और विकराल स्वभाव, हाथों में त्रिशूल, खड्ग,बाण, ध्वजा, ऊखल, मूशल आदिक आयुध लिये थी । ऐसा भयानक आकार देखकर मैंने विचार किया कि यह काली भवानी है । उसको जानकर मैंने नमस्कार किया जैसे अग्नि के जले हुए पर्वत के शिखर श्याम होते हैं तैसे ही वह श्याम आकार थी और उसके मस्तक में तीसरा नेत्र बड़वाग्नि की नाईं तेजवान् निकला था । कभी उसकी दो भुजा दृष्टि आवें, कभी सहस्रभुजा दृष्टि आवें, कभी अनन्त भुजा हों, कभी एक एक भुजा दीखे और कभी कोई भुजा न दृष्टि आवें, कभी शिर पाद कोई न रहे केवल बुतसी भासे और नृत्य करे । ज्यों-ज्यों वह नृत्य करे त्यों-त्यों शरीर स्थूल दृष्टि आवे मानो आकाश को भी ढ़ाँप लिया है और दशों दिशा आकाश से पूर्ण किये है नख शिख की भी मर्यादा कुछ न दृष्टि आवे ऐसा आकार बढ़ाया । जब वह भुजा को हिलाये तब मानों आकाश को मापती है । पाताल पर्यन्त उसके चरण, आकाश पर्यन्त शीश, पृथ्वी उसका उदर, सुमेरु आदिक पर्वत नाभिस्थान और दशों दिशा भुजा थीं-मानों प्रलयकाल की मूर्ति धारकर स्थित भई है बड़े पर्वत की कन्दरावत् जिसकी नासिका थी, लोकालोक पर्वत हाड़ थे और कण्ठ में नदियों की माला थी जो चलती थी । वरुण, कुबेर आदिक देवतों के शिर की माला उसके कण्ठ में थी, पवन नासिका के मार्ग से निकलता था उससे सुमेरु आदिक पर्वत तृणों की नाईं उड़े जाते थे । ब्रह्माण्ड की माला उसके गले में थी, हाथों में ब्रह्माण्डरूपी भूषण थे और कटि में ब्रह्माण्ड के घुँघुरू और करधनी थी जब वह नृत्य करे तब सब ब्रह्माण्ड नृत्य करे । जैसे पवन से पत्र नृत्य करते हैं तैसे ही सुमेरु आदिक नृत्य करें और उसके एक-एक रोम में ब्रह्माण्ड थे । जैसे तारागण वायु के आधीन है । उसके कानों में धर्म अधर्मरूपी मुद्रा थी और बड़े- बड़े कान और बड़ा मुख था- मानों सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को भक्षण करती है । धर्म, अर्थ काम और मोक्ष, स्तन थे और उन स्तनों में चारों वेदों और शास्त्रों के अर्थरूपी दूध निकलता था । निदान जगत् की सब मर्यादा मुझको उसमें दृष्टि आई । उसके नृत्य करने से कई ब्रह्माण्ड और अस्ताचल आदिक पर्वत तृणों की नाईं नृत्य करें और सब कुछ विपर्यय होता दृष्टि आवे । उसके शरीर में आकाश अधः को दृष्टि आवे, पृथ्वी ऊर्ध्व को दृष्टि आवे और तारामण्डल, सिद्ध, देवता, विधाधर, गन्धर्व, किन्नर, दैत्य, स्थावर, जंगम सब उसमें दृष्टि आवें-मानों सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों का आदर्श है । भुजों के उछलने से चन्द्रमा की नाईं नखों का प्रकाश हो और मन्दराचल, उदयाचल पर्वत कानों में भूषण दृष्टि आवें और हिमालय पर्वत बरफ के कण के समान दृष्टि आवे । हे रामजी! इस प्रकार उस देवी के शरीर में मुझको अनन्त सृष्टि दृष्टि आईं कहीं इकट्ठी और कहीं भिन्न-भिन्न कहीं एकही सी चेष्टा करे और कहीं भिन्न-भिन्न चेष्टा करे । मानों ब्रह्माण्डरूपी रत्नों का डब्बा है! हे रामजी! जब मैं संकल्प सहित देखूँ तब मुझको सृष्टि दृष्टि आवें और

जब आत्मा की ओर देखूँ तब केवल आत्मरूप ही भासे और कुछ दृष्टि न आवे । संकल्प दृष्टि से सम्पूर्ण जगत् नृत्य करते दृष्टि आवे पर ऐसी सामर्थ्य किसी की दृष्टि न आवे कि नृत्य न करे । जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय सब उसही में दृष्टि आवें और सम्पूर्ण क्रिया उसही से होती दृष्टि आवें । उसही में सिद्ध, देवता, गन्धर्व, अप्सरा विमान पर आरूढ़ फिरें और नक्षत्रों के चक्र फिरें- मानों ब्रह्माण्ड फिर उदय हुए हैं । जब मैं फिर आत्म दृष्टि से देखूँ तब ब्रह्म स्वरूप भासे और संकल्पदृष्टि से जगत् भासे । वह चित्कला जो संकल्परूप है उसमें सबही दृष्टि आवें । हे रामजी! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा आदि सब उसी में दृष्टि आते थे । जैसे मच्छर वायु से उड़ते हैं तैसे ही अनन्त सृष्टि उसके शरीर में उड़ती दृष्टि आवें इससे मैं महा आश्चर्यवान् हुआ । वह भैरव था और यह भैरवी उसकी शक्ति थी, दोनों मुझको दृष्टि आये कि बड़े वपुधारी हैं । यह नित्य शक्ति सर्वात्मा थी और परमात्मा की क्रिया शक्ति सब विश्व को अपने आपमें जानती थी । जैसे समुद्र सब तरंगो को अपने में अपना आप जानता है तैसे ही सर्व ब्रह्माण्ड को वह अपने में अपना आप जानती थी । वह तो सदाशिव से भी बड़े अहंकार को धारे थी मानो सब ब्रह्माण्ड की माला कण्ठ में डाले है और यमादिक सब उसकी मर्यादा हैं । हे रामजी! इस प्रकार मैंने रुद्र और काली भवानी को देखा । रुद्र के शिर पर जो जटा थीं सो मोर की पंख की नाईं थी और काली को मैंने देखा कि नाना प्रकार के मृग और दम दम से आदि लेकर शब्द करती थी और यह शब्द भी करती थी-"दिग्वंदिग्वं तुदिग्वं पंछमना वह संमंमप्रलये मियतुयत्रिपंत्रो त्रीलं त्रीषलषलुमं षनुपं सुमषं मषमभ्रिगु ही गुंहीगुंही उगुमियगुं दलुमददारी मीदातंदती "। हे रामजी! इस प्रकार के शब्द करती हुई वह श्मशानों में नृत्य करती थी । हे रामजी! ऐसी देवी तुम्हारे सहाय हो जो सर्व शक्ति परमात्मा है और ब्रह्माण्ड उसके आश्रय है । क्षण में वह अंगुष्ठप्रमाण हो जाती थी और क्षण में बड़े दीर्घ आकार धारण करती थी । सब जगत् में जो क्रिया होती हैं सो उसके आश्रय होती हैं, कहीं उत्पत्ति होती है और कहीं युद्ध होते हैं और नाना प्रकार की क्रिया उस देवी के आश्रय होती हैं । जैसे आदर्श में प्रतिबिम्ब होता है तैसे ही उस देवी में क्रिया होती हैं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे देवीरुद्रोपाख्यानवर्णनन्नाम शताधिकषण्णवतितमस्सर्गः ||196||

अनुक्रम

अन्तरोपाख्यान वर्णन

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह जो तुमने रुद्र और कालिका का वर्णन किया सो कौन थे महाप्रलय में तो कुछ नहीं रहता? उसके शरीर में तयमने सृष्टि कैसे देखी और महाप्रलय होकर उसके शरीर में सृष्टि ने कैसे प्रवेश किया? उसके हाथ में शस्त्र क्या थे, कहाँ से आई थी और कहाँ गई और उसका आकार क्या था? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! न कोई रुद्र है, न काली है, न कोई स्त्री है, न कोई नपुंसक है, न पुरुष मिलकर कुछ हुआ है, न ब्रह्माण्ड है और न पिण्ड है, केवल चिदाकाश है और संकल्प से उपजे आकार भासते हैं। जैसे स्वप्ने में आकार भासते हैं। तैसे ही वे आकार भी भासते हैं वास्तव में केवल चिदाकाश ज्यों का त्यों है। हे राम जी! आत्मपद अनन्त, चैतन्य, सत्य, प्रकाशरूप, अविनाशी और अपने आप में स्थित है। रुद्रदेव का आकार जो भासा था सो चैतन्य आत्मा ही ऐसे होकर भासित हुआ था-कोई और आकार न था। जैसे सुवर्णही भूषण होकर भासता है तैसे ही परमदेव चिदाकाश ऐसे होकर भासा था, क्योंकि चैतन्यस्वरूप है। जैसे मधुरता पौंड़े का स्वरूप है, तैसे ही आत्मा का चैतन्यस्वरूप है। हे रामजी! चैतन्य सत्ता अपने स्वरूप को नहीं त्यागती, आकार होकर भासती है और सदा अपने आपमें स्थित है। जैसे पौंड़े के रस में मधुरता न हो तो उसको कोई रस नहीं कहता, तैसे ही आत्मसत्ता में चैतन्यता न हो तो चैतन्य कोई न कहे। जो आत्मा चैतन्यता को त्यागे तो परिणामी हो और चैतन्य न कहावे परन्तु वह तो सदा अपने आप स्वभाव में स्थित है और किसी और अवस्था को नहीं प्राप्त हुआ, इसी से कहा है कि जो कुछ भासता हे सो आत्मा का किञ्चन है। हे रामजी! जैसे पौंड़े के रस में मधुरता होती है तैसे ही आत्मा में चैतन्य है। चैतन्यमात्र में चैतन्यता लक्षण चेतनतारूप रहता है इससे यह जगत् भावरूप है, जो शुद्धचिन्मात्र में चित्त का उत्थान न होता तो जगत्भाव न लखाता। आत्मसत्ता दोनों अवस्थाओं में सदा ज्यों की त्यों है-जैसे वायु जब स्पन्द होता है तब उसका स्पर्शरूप लक्षण प्रतीत होता है और जब निस्पन्द होता है तब उसमें कोई शब्द नहीं प्रवेश कर सकता पर वायु दोनों अवस्थाओं से तुल्य है, तैसे ही शुद्ध चैतन्य में किसी शब्द का प्रवेश नहीं पर चेतनताभाव में है और आत्मसत्ता सदा एक रस है-इससे वास्तव यह जगत् ही नहीं है। हे रामजी! आदि, मध्य, अन्त, जगत्, आकाश, कल्प, महाकल्प, उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, जन्म, मरण, सत्, असत्, प्रकाश, अन्धकार, पण्डित, मूर्ख, ज्ञानी, अज्ञानी, नामरूप, कर्मरूप अवलोक,मनस्कार, विद्या, अविद्या, दुःख, सुख, बन्ध, मोक्ष, जड़, चेतन, पृथ्वी, जल अग्नि, वायु, आकाश, आना, जाना जगत् अजगत् कुछ नहीं है। बढ़ना, घटना, मैं, तुम, वेद, शास्त्र, पुराण, मन्त्र, अकार, उकार, मकार, जय, नाम आदिक स्थावर-जंगम सब जगत् ब्रह्मस्वरूप ही है दूसरी वस्तु कुछ नहीं। जैसे समुद्र में तरंग बुद्बुदे और आवृत्त सब जलरूप हैं, तैसे ही सब ब्रह्मस्वरूप है ब्रह्म से भिन्न जगत् कुछ वस्तु नहीं। जैसे स्वप्न में पर्वत भासते हैं सो अनुभव से भिन्न नहीं होते तैसे ही यह जगत् ब्रह्मसे भिन्न नहीं। जैसे सूर्य की किरणों में जल भासता है तैसे ही आत्मसत्ता जगत्ूरूप होकर भासती है। हे रामजी! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, वरुण कुबेर, यम, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, जल, पृथ्वी, वायु, आकाश आदिक जितने शब्द हैं वे सब ब्रह्मसत्ता ही से होकर स्थित हुए हैं परन्तु सत्ता अपने आपमें ज्यों की त्यों है कदाचित् परिणाम को नहीं प्राप्त हुई और वही सत्ता सर्व की आत्मा है। जैसे समुद्र अपने तरंगभाव को त्यागे तो अपने सौम्यभाव में स्थित होता है, तैसे ही ब्रह्मसत्ता फुरने को त्यागे तो अपने स्वभाव में स्थित हो तो अना मय है अर्थात् दुःखों से रहित, परमशान्तिरूप, अनन्त और निर्विकार

है जब इस प्रकार बोध हो तब उस ब्रह्मसत्ता को प्राप्त हो और बोध, अबोध, विधि, निषेध भी वही है। जैसे जल और समुद्र की संज्ञा कही है और तरंग शब्द कहने से विलक्षण भासता है पर जब जल तरंग बुद्धि को त्यागे तब केवल समुद्ररूप है, तैसे ही यह जीव जब अपने जीवत्व भाव को त्यागे तब आत्मरूपी समुद्र को प्राप्त हो अर्थात् जब दृश्य का सम्बन्ध त्याग करे तब आत्मा हो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अन्तरोपाख्यानवर्णनं नाम शताधिकसप्तनवतितमस्सर्गः ||197||

अनुक्रम

पुरुषप्रकृति विचारो

वशिष्ठजी बोले , हे रामजी! तुमसे मैंने जो चिदाकाश कहा है सो परमचिदाकाश है और सदा अपने आपमें स्थित है । हे रामजी! शुद्ध चिदाकाश जो मैंने तुमसे कहा है वही यह रुद्ररूप है और वही नृत्य करता था । वहाँ आकार कोई न था केवल चिद्घनसत्ता थी और वही ऐसे होकर कुञ्चन होती थी । हे रामजी! जब मैं आत्मदृष्टि से देखता था तब मुझको चिदाकाशरूप ही भासता था । हे रामजी! मेरे जैसा हो वही तैसा रूप देखे और नहीं देख सकता है । हे रामजी! जिसका नाम कृतान्त कहाता है वही रुद्र और भैरव है और वही कृतान्त की मूर्ति नृत्य करके अन्तर्धान हो गई और वास्तव में मायामात्र रूप था । यह चैतन्य सत्ता के आश्रय से नाचते थे । हे रामजी! जैसे सोने में भूषण है परन्तु सोने बिना नहीं होते तैसे ही चेतनता किञ्चन से जगत् भासता है और फिर वही प्रमाद से आधिभौतिक हो जाता है, वास्तव में शुद्ध चिदाकाशरूप ही है और चेतनता से वही जगत््रूप हो भासता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! प्रथम तो आपने कहा कि आत्मतत्त्व अद्वैत में यह जगत् प्रमाद से कल्पित है और जो है तो कल्प के अन्त में नाश हो जाता है, केवल अद्वैत सत्ता रहती है और फिर आपही कहते हो कि चैत्यता से जगत््रूप भासता है । अद्वैत में चैत्यता कैसे हुई है और कौन चेतनेवाला हुआ? प्रलय के अनन्तर काली क्योंकर भासी? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! न कोई चैत्य है और न कोई चेतता है केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है जो चैतन्यघन , परम निर्मल और शान्तरूप है और शिवतत्त्व भी उसी को कहते है । वही शिवतत्त्व रुद्र आकार को धारण किये दृष्ट आया था दूसरा कुछ नहीं- केवल परम चिदाकाश है । वही चिदाकाश आकार हो भासता है और और कोई आकार नहीं हुआ न भैरव है न भैरवी है, न काली है, न यह जगत् है, सब मायामात्र है । जैसे स्वप्न में आत्मसत्ता चैत्यता के कारण जगत््रूप हो भासती है पर स्वरूप से न कुछ चैत्यता है और न जगत् है, आत्मसत्ता ही अपने आपमें स्थित है, तैसे ही उस जगत् को भी जानो । कुछ और नहीं हुआ अद्वैतसत्ता ही है, इससे चैत्य और चेतनेवाला मैं तुमको क्या कहूँ सब भ्रम से भासते हैं आत्मा में यह नहीं उपजे केवल स्वच्छ चिदाकाश है । हमको तो सदा वही भासता है पर अज्ञानी को नाना प्रकार का जगत् भासता है और आत्मा सदा एक है-किंचन करके उसमें आकार भासते हैं । जैसे मनोराज में युद्ध भासते हैं और जैसे कथा में अर्थ भासते हैं सो अनहोते ही संकल्प विलासते हैं, तैसे ही चिदात्मा में यह जगत् भासता है जैसे आकाश में तरुवरे भासते हैं; तैसे ही यह आकार भासते हैं । हे रामजी! यह जो जगत् प्रलय और महाप्रलयादिक शब्द है उनका नाश करने के लिये मैं तुमको कहता हूँ । आत्मा एक अद्वैत चैतन्य है, उस चैतन्यता का अभाव कभी नहीं होता अपने आपमें स्थित है और किञ्चन है । जैसे सूर्य की किरणें किञ्चनरूप होती हैं और उनमें जल भासता है, तैसे ही चिद् का किञ्चन जगत् भासता और वही महाप्रलय में रुद्र और भैरवी हो भासती है वास्तव में न कुछ रुद्र है और न काली है सर्व आत्मा ही है । हे रामजी! जो कुछ कहना सुनना होता है तो वाच्य वाचक से होता है आत्मा में कहना सुनना कुछ नहीं । वही चिदाकाश संकल्प से रुद्र नृत्य करता था । जैसे सुवर्ण भूषण होकर भासता है तैसे ही चिदाकाश संकल्प से आकार होकर भासता है दूसरा कुछ नहीं बना । मैं तुम और जगत्, चैत्य, और अचैत्य सब वही रूप है, उसमें कोई शब्द नहीं फुरा । जैसे स्वप्न में नाना प्रकार के शब्द भासते हैं सो कुछ वास्तव नहीं-पत्थर की नाईं मौन है-तैसे ही जाग्रत् में भी जितना शब्द होता है सो सब स्वप्न है, कुछ हुआ नहीं केवल आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है । जैसे आकाश अपनी शून्यता में स्थित है, तैसे ही आत्मसत्ता अपने आप भाव में

स्थित है जहाँ न एक है, न द्वैत है, न सत्य है, न असत्य है, न चित्त है, न चेत है, न मौन है, न अमौन है और न कोई चेतनेवाला है, चेत के अभाववत् केवल अचेत चिन्मात्र आत्मसत्ता निर्विकल्परूप स्थित है । हे रामजी! सबसे बड़ा शास्त्र का सिद्धान्त यही है, इस दृष्टि मौन में तुम स्थित हो । हे रामजी! सर्वसिद्धान्तों की समता यही है कि निर्विकल्प होना । जैसे पत्थर की शिला मौन होती है, तैसे ही चैत्य से रहित हो जो कुछ प्रत्यक्ष आचार प्राप्त हो उसमें प्रवर्तना और सदा आत्मनिश्चय रखना इसी का नाम परम मौन है । सब क्रिया होती रहें पर अपने से कुछ न देखना-जैसे नट स्वाँग धरता है और उसके अनुसार विचरता है परन्तु निश्चय उसका आदि ही वपु में होता है, उससे चलायमान नहीं होता, तैसे ही जो कुछ अनिच्छित प्राप्त हों उसको यथाशास्त्र करना परन्तु अपने निर्गुण निष्क्रियस्व रूप से चलायमान न होना इसी अद्वैत स्वरूप में स्थित रहना । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! वह रुद्र क्या था और वह काली शक्ति क्या थी? उनके अंग जो बढ़ते घटते थे नृत्य करना क्या था और वस्त्र क्या थे सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! शिवतत्त्व ही आकार होकर भासता है और कोई आकार नहीं जो चिन्मात्र, अमल विद्या और अविद्या के कार्य से रहित, शान्त और अवाच्यपद है । यह संज्ञा भी संकल्प में तुमसे कहीं है, आत्मवेत्ता आत्मपद को अवाच्यपद कहते हैं तथापि मैं कुछ कहता हूँ । हे रामजी! केवल आत्मतत्त्वमात्र जो चिदाकाश है, वही शिव भैरव है, उसी के चमत्कार का नाम चित्तशक्ति है और उसी का नाम काली है उस काली है उस काली आत्मा और शिवरूप में कुछ भेद नहीं । जैसे पवन और स्पन्द में, और अग्नि और उष्णता में कुछ भेद नहीं होता तैसे ही चित्तकला और आत्मा में कुछ भेद नहीं । जैसे पवन निस्पन्द होता है तब उसका लक्षण नहीं होता है- अवाचकरूप होता है और जब स्पन्द होता है तब उसका लक्षण भी होता है और उसमें शब्द प्रयोग होता है, तैसे ही चित्तशक्ति से उसका लक्षण होता है । उसके अनेक नाम हैं । उसी का नाम स्पन्द और इच्छा है, उसी को चैत्योन्मुखत्व से वासना कहते हैं, उसी के स्वाद की इच्छा से जब चित्तसंवित् में वासना फुरती है तब उसका नाम वासना करने वाला वासक कहाता है-फिर आगे दृश्य होती है । जब त्रिपुटी हुई अर्थात् वासना, वासक और वास्य हुए तब वासक को जीव कहते हैं-जो जीवत्वभाव लेकर स्थित होता है । जब इसको यह भावना होती है कि मैं जीव हूँ और मेरा नाश कदाचित् न हो इस इच्छा से जीव कहाता है ऐसी संज्ञा जो चित्तशक्ति की होती है सो स्पन्द में होती है पर शिव तत्त्व अफुर है और अचेत शक्ति में फुरने की नाईं स्थित है । जैसे सूर्य की किरणों में जल नहीं होता और हुए की नाईं भासता है, तैसे ही यह जगत् है नहीं और हुए की नाईं भासता है उसमें यह संज्ञा देते हैं । काली जो परमात्मा की क्रियाशक्ति है सो प्रथम तो कारण-रूप प्रकृति है और उसी से सब हैं-इसी से प्रकृति नहीं, अर्थात् किसी का कार्य नहीं । महादिक पञ्चभूत, महत्तत्त्व और अहंकार यह सप्त प्रकृति-विकृति है अर्थात् कार्य भी हैं और कारण भी हैं । 653 कार्य आदि देवी के हैं और षोडश के हैं-पञ्चज्ञान इन्द्रियाँ, पञ्चकर्म इन्द्रियाँ, पञ्चप्राण और एक मन । इनके सप्तदश कार्य हैं । षोडश तो विकृति हैं अर्थात् कार्य रूप हैं कारण किसी का नहीं और पुरुष जो परमात्मा है वह अद्वैत, अचिन्त्य और चिन्मात्र है, न किसी कारण है और न कार्य है अपने आपमें स्थित है इससे जितनी द्वैत कलना कारण कार्य में है वह सब चित्तशक्ति में स्थित है । जब यह निस्पन्द होती है तब तत्त्वरूप शिवपद में निर्वाण हो जाती है और कारण कार्यरूपी भ्रम सब मिट जाता है केवल आकाशवत् शेष रहता है । वह शुद्ध, अद्वैत, अचेत, चिन्मात्र सदा अपने आप भाव में स्थित है और उसकी स्पन्दरूप क्रियाशक्ति की इतनी संज्ञा है । प्रथम तो सबका कारणरूप प्रकृति है जो शेष है अर्थात् जैसे बड़वाग्नि समुद्र को सुखाती है तैसे ही वह जगत् को

सुखाती है, सिद्ध है अर्थात् सिद्धि उसे आश्रयभूत करके सेवते हैं, जयन्ती है अर्थात् उसकी जय है, चण्डिका है अर्थात् जिसके क्रोध से जगत् प्रलय होता है और भय पाता है, वीर्य है अर्थात् जिसका अनन्तवीर्य है, दुर्गा है अर्थात् इसका रूप जानना कठिन है, गायत्री है अर्थात् जिसके पाठ से संसारसमुद्र से रक्षा होती है, सावित्री है अर्थात् जगत् की पालना करती है, कुमारी है अर्थात् कोमलस्वभाव है, गौरी है अर्थात् गौर अंग है, शिवा है अर्थात् शिव के बायें अंग में उसका निवास है, विजया है अर्थात् सब जगत् को जीत रही है, सुशक्ति है अर्थात् अद्वैत आत्मा में उसने विलास रचा है और इन्दरसारा है अर्थात् यह जो उकार इन्द्र आत्मा है उसका सार अर्धमात्रा है और उकार-अकार-मकार तीनों मात्राओं का अधिष्ठान है । हे रामजी! राजसी, तामसी और सात्विकी तीन प्रकार की जो क्रिया होती हैं सो इसी से होती है , यह सब संज्ञा क्रिया शक्ति की कही । अब उसका शस्त्र और बढ़ना-घटना सुनो । हे रामजी! वह नृत्य जो करती थी सो ही क्रिया है, सो क्रिया सात्त्विकी, राजसी और तामसी तीन प्रकार की है । मूसल जो था सो ग्राम पुर और नगर थे और उसके अंग सृष्टि थे । जब वह शिव से व्यतिरेक होती थी तब उसके अंग सृष्टिरूप बहुत हो जाते थे, जब शिव की ओर आती थी तब सृष्टिरूप अंग थोड़े हो जाते थे और जब शिव को आ मिलती थी तब शिव ही होती थी-सृष्टिरूपी अंग कोई न रहता था । यह तो आत्मा की कालीशक्ति की क्रिया का वर्णन तुमको सुनाया है अब शिव का वर्णन सुनो । वह तो वाणी से अतीत है तथापि मैं कुछ कहता हूँ । वह परमशुद्ध, निर्मल और अच्युत है और उसमें कुछ हुआ नहीं केवल क्रियाशक्ति के फुरने से जगत् हो भासता है । जब वह अपने अधिष्ठान की ओर देखता है तब अपना स्वरूप दृष्टि आता है । क्रियाशक्ति और आत्मा में कुछ भेद नहीं-जैसे आकाश और शून्यता में कुछ भेद नहीं, क्योंकि आकाश का अंग शून्यता है-और अवयवी और अवयव में भी कुछ भेद नहीं जैसे अग्नि का रूप उष्णता है, तैसे ही आत्मा का स्वभाव चित्तशक्ति है । इसका नाम काली इससे है कि कृष्णरूप है । जैसे आकाश ऊर्ध्व को श्याम भासता है तैसे ही आकाश वपु है । और जैसे आकाश निराकार है तैसे ही काली निराकार श्याम भासती है । आकाश की नाईं इसका वपु है इससे इसका नाम कृष्णवपु है और काली जगत् के नाश के अर्थ है । वह जब स्वरूप की ओर आती है तब जगत् का नाश करती है । हे रामजी! स्पन्दशक्ति जबतक शिव से व्यतिरेक है तब तक जगत् को रचती है-जहाँ यह है तहाँ जगत् है-जगत् से विलक्षण नहीं रहती । जैसे जहाँ सूर्य की किरणें हैं वहाँ जलाभास होता है-किरण बिना जलाभास नहीं रहता, तैसे ही स्पन्दशक्ति जगत् बिना नहीं रहती । जैसे आकाश के अंग है तैसे ही इसके अंग जगत् हैं और जैसे समुद्र में तरंग समुद्ररूप हैं, तैसे ही जगत् इसका रूप है और यह शक्ति चिदाकाश है उससे व्यतिरेक नहीं । जब यह फुरती है तब जगत् आकार हो भासती है और जब शिव की ओर आती है तब शिवरूप हो जाती है । और जगत् का भाव कोई नहीं रहता । इससे हे रामजी! तुम्हारी चित्तशक्ति जब तुम्हारी ओर आवे तब जगत्भ्रम मिटे । इस चित्त शक्ति ने ही जगत्भ्रम रचा है । शिव और शान्तरूप है और अजर, अमर, अचेत, चिन्मात्र है उसमें कुछ क्षोभ नहीं-आत्मसत्ता सदा अपने आपमें स्थित है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! तुमने काली के अंग की जो सृष्टि देखी थी वह आत्मा में सत् है अथवा असत् है सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह काली देवी आत्मा की क्रियाशक्ति है अर्थात् फुरनशक्ति है इससे आत्मा में सत्य है और वास्तव में आत्मा में कुछ नहीं मिथ्या है । जैसे तुम मनोराज से अपने में दूसरी चिन्तना करो तो वह कुछ वस्तु नहीं पर उस काल में सत् भासती है, तैसे ही जितनी सृष्टियाँ हैं सो आत्मा में सत्य नहीं परन्तु चित्तशक्ति से बसती दृष्टि आती है, जैसे जितने कुछ विधि -निषेध पदार्थ और आकाश, पर्वत, समुद्र, वन, जगत, तीर्थ, कर्म, बन्ध, मोक्ष, शास्त्र,

युद्ध, शस्त्र आदिक जो भासते हैं वह सब चिदाकाश ब्रह्मरूप है और वास्तव में इनका होना ब्रह्मसे भिन्न नहीं, सर्वप्रकार और सर्वदाकाल आत्मा अपने आपमें स्थित है जो शुद्ध, अद्वैत, निराकार, निर्विकार और ज्यों का त्यों है उसमें जगत् कोई नहीं उपजा । सब जगत् आत्मा में क्रियाशक्ति ने रचा है सो माया काल में सत्य है वास्तव में कुछ नहीं । जैसे सोनेवाले को स्वप्न में सृष्टि भासती है और उसको कोई हिलावे तो वह नहीं जागता पर जो कुछ सृष्टि होती तो हिलाने से उसका कोई स्थान पड़ता-इसी से जाना जाता है कि किसी का नाश नहीं होता-वास्तव में कुछ नहीं । हे रामजी! वह सृष्टि जो प्रत्यक्ष अर्थाकार होती है उसके चित्तस्पन्द में स्थित है परन्तु जबतक निद्रा है तबतक वह सृष्टि है और जब निद्रा निवृत्त होती है तब स्वप्न सृष्टि भी नहीं भासती यह सृष्टि भी कुछ वास्तव में नहीं अज्ञान से चित्तशक्ति में भासती है । हे रामजी! सब पदार्थ चित्त के फुरने से भासते हैं । जिसका संकल्प शुद्ध होता है उसके मनोराज की सृष्टि यदि देशकाल से प्रत्यक्ष होती है तो संकल्परूप होती है क्योंकि कुछ बना नहीं । जब संकल्प फुरता है तब संकल्प के अनुसार सृष्टि भासती है, इससे संकल्परूप ही हुई और जो उसकी सत्यता हृदय में होती है तब इसका अर्थ हृदय में अनुभव होता है । जैसे परलोक अदृष्ट है पर जब उसकी सत्यता हृदय में होती है तब उसका राग द्वेष भी हृदय में फुरता है क्योंकि संकल्प में उसका भाव है, तैसे ही जबतक चित्त स्पन्द फुरता है तब तक जगत् है और जब चित्त निस्पन्द होता है तब जगत् की सत्यता नहीं भासती । हे रामजी! यह सब जगत् क्रिया शक्ति ने आत्मा में रचा है । जबतक यह काली क्रियाशक्ति शिव से व्यतिरेक होती है तबतक नाना प्रकार के जगत् रचती है और क्षोभ को प्राप्त होती है और शिव की ओर आती है तब शान्तरूप हो जाती है, तब फिर प्रकृति संज्ञा उसकी नहीं रहती-अद्वैततत्त्व में अद्वैतरूप ही हो जाती है । जैसे जबतक पवन चलता है तबतक शीत्, उष्ण, सुगन्ध, दुर्गन्ध, बड़ी और छोटी संज्ञा होती है और जब ठहरता है तब कहा नहीं जाता कि ऐसा है अथवा वैसा है, तैसे ही जबतक चित्तशक्ति स्पन्दरूप होती है तबतक जगत् रचती है और प्रकृति कारण रूप कहाती है और उसमें दो प्रकार के शब्द होते हैं-विद्या और अविद्या । हे रामजी! जो कुछ कहना होता है सो स्पन्द जो चित्र लिखा है उसमें है और जब शिवतत्व के अंतर होती है तब अद्वैतरूप हो जाती है-वहाँ किसी शब्द की गम नहीं । हे रामजी! शिव क्या है और शक्ति क्या है सो भी सुनो? ये जीव शिवरूप हैं और इनके चित्त का फुरना काली है । जब तक इच्छा से चित्तशक्ति बाहर फुरती है जबतक भ्रम का अन्त नहीं आता और नाना प्रकार के विकारों का अनुभव होता है कदाचित शान्ति नहीं होती और जब चित्तशक्ति उलटकर अधिष्ठान को देखती है तब जगत् निवृत्त हो जाता है और परमशान्ति को प्राप्त होता है हे रामजी! आत्मा और चित्संवित् में कुछ भेद नहीं । जैसे वायु के स्पन्द और निस्पन्द में कुछ भेद नहीं होता परन्तु जब स्पन्द होती है तब जानी जाती है और निस्पन्द नहीं जानी जाती, तैसे ही चित्तसंवित् जब फुरता है तब जाना जाता है और नहीं फुरता तब नहीं जाना जाता और जानना और न जानना दोनों नहीं रहते हैं । हे रामजी! जबतक इच्छाशक्ति शिव की ओर नहीं देखती तबतक नाना प्रकार का नृत्य करती है अर्थात् जगत् को रचती है और जब शिव की ओर देखती है तब नृत्य विरस हो जाता है और सब अंग सूक्ष्म हो जाते हैं । हे रामजी! इस काली का आकार प्रमाण में आता न था पर शिव की ओर देखने से सूक्ष्म हो गया । प्रथम पर्वत समान था, निकट आई तब ग्राम के समान हुआ, फिर वृक्ष के समान रहा और जब निकट आई तब सूक्ष्म आकार हो गया और शिव के साथ मिली तब शिवरूप हो गई । शिव के सम्मिलन से इसका जो विलास है सो शून्य हो जाता है और परमशान्ति शिवपद की प्राप्त होती है । श्रीरामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! यह जो परमेश्वरी काली शक्ति है सो उसको

मिलकर शान्त कैसे हुई? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! देवी परमात्मा की इच्छा शक्ति है और जगन्माता इसका नाम है । जबतक यह शिवतत्त्व से व्यतिरेक रहती है तब तक जगत् को रचती और जब अपने अधिष्ठान की ओर आती है जो नित्यतृप्त, अनामय, निर्विकार द्वैतभाव से रहित परमशान्ति को प्राप्त होती है, तब इसकी प्रकृतसंज्ञा जाती रहती है जैसे नदी जबतक समुद्र को नहीं प्राप्त हुई तबतक दौड़ती और शब्द करती है पर जब समुद्र को मिली तब शब्द करना और दौड़ना नष्ट हो जाता है और नदी संज्ञा भी नहीं रहती-समुद्र को मिलकर परम गम्भीर समुद्ररूप हो जाती है, तैसे ही जबतक चित्तशक्ति शिव से व्यतिरेक होती है तबतक जगत् भ्रम को रचती है और जब शिवतत्त्व को मिली तब शिवरूप हो जाती है और द्वैतभ्रम मिट जाता है । हे रामजी! जब यह चित्तशक्ति शिवपद में लीन हो जाती है तब प्रथम जो देह और इन्द्रियों से तद्रूप हुई थी, इन्द्रियों के इष्ट-अनिष्ट में आपको सुखी दुःखी मानती थी और रागद्वेष से जलती थी सो नित्य तृप्त और अनामय पद के मिले से सुख दुःख से रहित होती है, क्योंकि अनात्मदेह इन्द्रियो की तद्रूपता का अभाव हो जाता है और आत्मतत्त्व के साथ तद्रूप होती है । जैसे पत्थर का शिला के साथ मिलकर खंग की धार तीक्ष्ण होती हे तैसे ही चित्तसंवित् जब आत्मपद में मिलती है तब एक अद्वैतरूप हो जाती है । और आत्मपद के स्पर्श किये से अनात्मभाव का त्याग करती है । जैसे ताँबा पारस के स्पर्श से सुवर्ण हो जाता है और ताँबा नहीं होता तैसे ही यह वृत्ति अनात्मभाव को नहीं प्राप्त होती । चित्तकला तबतक विषय की ओर धावती है जबतक अपने वास्तवस्वरूप को नहीं प्राप्त हुई जब अपने वास्तवस्वरूप को प्राप्त होती है तब विषय की और नहीं धावती है ।जैसे जिस पुरुष को अमृत प्राप्त होता है और उसके स्वाद का उसे अनुभव होता है तब वह नींव पान करने की इच्छा नहीं करता, तैसे ही जिसको आत्मानन्द प्राप्त हुआ है वह विषयों के सुख की इच्छा नहीं करता । हे रामजी! यह संसारभ्रम में दृढ़ सत्य होकर स्थित हुआ है और संसार के सुख का त्याग नहीं कर सकता पर जब आत्मसुख प्राप्त होता तब त्याग देगा । जैसे किसी पुरुष को जब तक पारस नहीं प्राप्त हुआ तबतक वह और धन को त्याग नहीं सकता पर जब पारस प्राप्त होता है तब तुच्छ धन का त्याग करता है और फिर यत्न नहीं करता, तैसे ही जब जीव को आत्मानन्द प्राप्त होता है तब विषय के सुख का त्याग करता है पाने का यत्न नहीं करता । हे रामजी! भँवरा तबतक और स्थानों में भ्रमता है जबतक कमल की पंक्ति पर नहीं पहुँचता पर जब उस पंक्ति पर पहुँचता है तब और स्थान को त्याग देता है, तैसे ही चित्तशक्ति जब आत्मपद में लीन होती है तब किसी पदार्थ की इच्छा नहीं करती । निर्विकल्पपद को प्राप्त होती है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पुरुषप्रकृतिविचारो नाम शताधिकाष्टनवतितमस्सर्गः ||198||

अनुक्रम

अनन्तजगद्वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अब पूर्व का प्रसंग फिर सुनो । जब काली नृत्य करके निर्वाण हो गई तब शिव अकेला रह गया वही मुझको दृष्टि आवे और दो खण्ड आकाश के दृष्टि आवें-एक अधोभाग और दूसरा ऊर्ध्वभाग और कुछ दृष्टि न आवे । तब रुद्र ने नेत्रों को फैलाकर दोनों खण्ड देखे-जैसे सूर्य जगत् को देखता है-और प्राण को भी खैंचा तब ऊर्ध्व और अधः दोनों खण्ड इकट्ठे हो गये और ब्रह्माण्ड को अन्तर्मुख कर लिया-एक शिव ही रह गया और कुछ दृष्टि न आवे । हे रामजी! जब एक क्षण व्यतीत हुआ तब रुद्र बड़े आकार को धारे हुए ब्रह्माण्ड को भी लाँघ गया और एक वृक्ष के समान हो गया । फिर अंगुष्ठमात्र शरीर होकर एक क्षण में सूक्ष्मअणु सा हो गया, फिर रेत के कणके से भी सूक्ष्म हो गया और फिर नेत्रों से दृष्टि न आवे तब दिव्यदृष्टि से मैं देखता रहा और फिर वह भी नष्ट हो गया केवल चिदाकाश ही शेष रहा और दूसरी वस्तु कुछ न भासे । जैसे वर्षाकाल के मेघ शरत््काल में नष्ट हो जाते हैं तैसे ही वह रुद्र भी नष्ट हो गया । हे रामजी! उस काल में मुझको तीनों इकट्ठे दीखे-एक देवी ब्रह्मा की शक्ति, दूसरी कालीशक्ति और तीसरी शिला । तब मैंने विचार किया कि यह स्वप्न नगरवत् आश्चर्य था और कुछ नहीं । तब मैंने क्या देखा कि स्वर्ण की शिला ही पड़ी है । यह सृष्टि शिलाकोष में स्थित थी । तब मैंने विचार किया कि यह सृष्टि शिलाकोष में है और सृष्टि भी होगी क्योंकि सर्व वस्तु सर्व प्रकार और सब ठौर पूर्ण है, इसलिये उसमें भी सृष्टि देखने लगा और नाना प्रकार की सृष्टि देखीं । जब मैं बोधदृष्टि से देखूँ तब सब ब्रह्म ही भासे । संकल्पदृष्टि से आत्मरूपी आदर्श में अनन्तसृष्टि दृष्टि आवें और चर्मदृष्टि से शिला ही दीखे । इस प्रकार मैं शिलाकोष में चला तो वहाँ मुझे घास, तृण, पत्थर, फल और फूलों की अनन्त सृष्टि दृष्टि आवें और निस्संकल्प आत्म दृष्टि से देखूँ तब अद्वैत आत्मा ही भासे । हे रामजी! इस प्रकार मैंने अनन्त सृष्टि देखीं, कहीं ऐसी सृष्टि भासे कि ब्रह्मा उपजे हैं और रचना को समर्थ हुए हैं, कहीं ब्रह्मा ने चन्द्रमा सूर्य उपजाये हैं और मर्यादा स्थापित की है, कहीं सम्पूर्ण पृथ्वी आदिक तत्त्व उपजाते हैं पर प्राण नहीं हुए, कहीं समुद्र नहीं उपजे, कहीं आचार सहित सृष्टि दृष्टि आवे, कहीं चन्द्रमा सूर्य नहीं उपजे और कहीं उपजे हैं कहीं चन्द्रमा शिव से नहीं निकले, कहीं क्षीरसमुद्र मथा नहीं गया और अमृत नहीं निकला और लक्ष्मी, हाथी, घोड़ा, धन्वन्तरि वैद्य भी नहीं निकले, विष और अमृत नहीं निकला-देवता मरते हैं, कहीं क्षीरसमुद्र मथा हैं उससे अमृत निकला है, कहीं प्रकाश नहीं होता, कहीं सदा प्रकाश ही रहता है, कहीं पृथ्वी पर पर्वतों के सिवा कुछ दृष्ट न आवे, कहीं इन्द्र के वज्र से पर्वत कटते हैं और उड़ते हैं, कहीं प्राणियों को जरा मृत्यु नहीं होती कल्पपर्यन्त ज्यों के त्यों रहते हैं, कहीं प्रलय होती हैं; कहीं मेघ गर्जते हैं, कहीं सम्पूर्ण जल ही दृष्ट आवे, कहीं आकाश दृष्ट आवे और प्राणी कोई न दीखे कहीं देवताओं के युद्ध होते थे, कहीं देवताओं को दैत्य जीतते थे कहीं दैत्यों को देवता जीतते थे, कहीं देवता और दैत्यों की परस्पर प्रीति थी, कहीं बलि और इन्द्र और वृत्रासुर का युद्ध होता था, कहीं मधुकैटभ दैत्य ब्रह्मा की कन्या से उत्पन्न होते थे, कहीं सदा प्रसन्नता ही रहती है और तीनों कालों जानते हैं, कहीं सदा शोकवान् ही रहते हैं, कहीं सतयुग का समय है और दान, पुण्य, तप होते थे, कहीं कलियुग का समय था और प्राणी पाप में बिचरते थे, कहीं अर्द्धयुग बीता था, कहीं रामजी और रावण का युद्ध होता था, कहीं रावण को रामजी ने मर्दन किया था, कहीं रामजी को रावण ने मर्दन किया था, कहीं सुमेरु पर्वत तले हैं और पृथ्वी ऊपर है, कहीं शेषनाग पर पृथ्वी है और भूचाल से भ्रमती है, कहीं प्रलयकाल का जल चढ़ा है और एक बालक वट के वृक्ष पर बैठा

अपने अंगुष्ठ को चूसता है सो विष्णु भगवान् हैं और कहीं ब्रह्मा के कल्प की रात्रि है और महाशून्य अन्धकार है, कहीं कौरव पाण्डव की सहायता कृष्ण करते हैं, कहीं महाभारत का युद्ध होता है और दोनों ओर से अक्षौहिणी सेना निकली हैं और श्रीकृष्णजी पाण्डवों की सहायता करते हैं, कहीं एक सृष्टि नाश होती और दूसरी उसी में उसी और उत्पन्न होती है और उसी का सा कर्म, उसी का सा कुल, जाति और गोत्र होते हैं, कहीं उससे अधभाग मिलता है, कहीं चतुर्थ भाग उसी का सा मिलता है और कहीं विलक्षण भाग होता है । हे रामजी! इस प्रकार मैंने अनन्त सृष्टि देखी जो आत्मआदर्श में प्रतिबिम्बित है । जब मैं आत्मदृष्टि से देखूँ तब सब चिदाकाश ही भासे और जब संकल्पदृष्टि से देखूँ तब जगत् भासे । कहीं ऐसी सृष्टि देखी जहाँ दशरथ के पुत्र राम हैं और रावण के मारने को समर्थ हुए हैं, कहीं तुम्हारे रूप बड़े तपस्वी रहते हैं जिनके मन सदा प्रसन्न हैं । ऐसी अनन्तसृष्टि देखीं । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! मैं आगे भी ऐसा ही हुआ हूँ अथवा किसी और प्रकार हुआ हूँ सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार मैंने अनन्त सृष्टि देखी जो आत्मआदर्श में प्रतिबिम्बित हैं । जब मैं आत्मदृष्टि से देखूँ तब सब चिदाकाश ही भासे और जब संकल्पदृष्टि से देखूँ तब जगत् भासे । कहीं ऐसी सृष्टि देखी जहाँ दशरथ के पुत्र राम हैं और रावण के मारने को समर्थ हुए हैं, कहीं तुम्हारे रूप बड़े तपस्वी रहते हैं जिनके मन सदा प्रसन्न हैं । ऐसी अनन्तसृष्टि देखीं । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! मैं आगे भी ऐसा ही हुआ हूँ अथवा किसी और प्रकार हुआ हूँ सो कहिये । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! कई उसी के से, कई अर्धलक्षण के और कई चतुर्थ भाग लक्षणवाले होते हैं। जैसे अन्न का बीज उसी का सा होता है और कोई उससे विशेष भी होता है, तैसे ही ये सब पदार्थ होते हैं । हे रामजी! तुम भी आगे होगे और मैं भी आगे हूँगा परन्तु आत्मा का विवर्त है । जैसे समुद्र में एक से तरंग भी होते हैं और विलक्षण भी दृष्ट आते हैं परन्तु वही रूप हैं तैसे ही हमारे सदृश भी फिर होंगे परन्तु आत्मतत्त्व से भिन्न कुछ नहीं-संकल्प से भिन्न की नाईं विलक्षणरूप भासते हैं । जैसे समुद्र में वायु से तरंग भासते हैं, तैसे ही आत्मा संकल्प से जगत्‌रूप हो भासता है । यद्यपि नाना प्रकार हो भासता है तो भी दूसरा कुछ हुआ नहीं । यह जगत् चैतन्य का विलास है और चित्त के फुरने में अनन्त सृष्टि भासती हैं । जैसे स्वप्न की सृष्टि बड़े आरम्भ से भासती है परन्तु स्वरूप से कुछ भिन्न नहीं तैसे ही यह जगत् आरम्भ परिणाम से कुछ बना नहीं, आत्मसत्ता सदा अपने आप में स्थित है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अनन्तजगद्वर्णनं नाम शताधिक- नवतितमस्सर्गः ।।199।।

अनुक्रम

पृथ्वीधातुवर्णनन्नाम

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार मैंने सृष्टि देखी और फिर दृश्यभ्रम को त्याग कर अपने वास्तव स्वरूप में स्थित हुआ । मैं अनन्त, नित्य, शुद्ध, बोध, चिदाकाश और सर्वदा अपने आप में स्थित हूँ । हे रामजी! चिन्मात्र आत्मा के किसी स्थान में संवेदन आभास फुरा है-जैसे अनाज के कोठे से एक निकालिये और क्षेत्र में डालिये तो उसी से किसी ठौर में अंकुर निकले, तैसे ही चैतन्य में संवेदन फुरा है और उस संवेदन से जगत् उपजा है । जैसे जल के दिये से अंकुर निकल आता है, तैसे ही मेरे में सृष्टि का अनुभव होने लगा और मैंने जाना कि सृष्टि मुझसे फुरी है । रामजी बोले, हे भगवन् तुम जो आकाशरूप अपने आपमें स्थित थे उसमें सृष्टि तुमको कैसे फुरी? दृढ़बोध के निमित्त मुझसे कहिये । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वास्तव तो कुछ उपजा नहीं परन्तु जैसे हुई है तैसे सुनो । मुझे अनुभव आकाश और अनन्त के किसी स्थान में संवेदन चित्त अहं फुरा अर्थात् `मैं हूँ', उस अहंभाव के होने से मैं आपको सूक्ष्म तेज अणुसा जानने लगा और उस अणु में अहंकार फुरा जिसको तुम अहंकार कहते हो उस अहंकार की दृढ़ता से निश्चयात्मक बुद्धि फुरी, उस बुद्धि से संकल्प विकल्परूप मन फुरा और उस मन ने प्रपञ्च रचा । उस मन में देखने का स्पन्दफुरा तब चक्षु इन्द्रियाँ हुई और जिसको देखने लगा वह रूप दृश्य हुआ । फिर सुनने की इच्छा फुरी तब श्रवण इन्द्रिय हुई और वह शब्द ही सुनने लगी । फिर रस लेने की इच्छा हुई तब जिह्वा इन्द्रिय हुई और वह रस को ग्रहण करने लगी । जब सुगन्ध लेने की इच्छा की तब नासिका इन्द्रिय हुई और सुगन्ध ग्रहण करने लगी और फिर स्पर्श करने की इच्छा से त्वचा इन्द्रिय प्रकट होकर स्पर्श ग्रहण करने लगी । इस प्रकार मुझको ज्ञानइन्द्रिय आन फुरी और उनमें शब्द, स्पर्श, रूप,रस और गन्ध उदय हुई तब मैंने अपने साथ स्थूल वपु देखा । जैसे कोई स्वप्न देखता है और उसमें अपना शरीर देखता है तैसे ही मैंने देखा । हे रामजी! जिसको मैं देखने लगा वह दृश्य हुआ और जिसमें मैं देखता था वे इन्द्रियाँ हुईं । जब दृश्य फुरना हुआ वह काल हुआ, जहाँ हुआ वह देश हुआ और ज्योंकर हुआ वह क्रिया हुई उस प्रकार सब देश काल पदार्थ हुए हैं सो मैंने तुमसे कहे । हे रामजी वास्तव में न कोई देह है, न इन्द्रियाँ हैं और न सृष्टि है पर चित्त कला में हुए की नाईं दृष्टि आते हैं । जैसे स्वप्न की सृष्टि भासती है । जब वह सृष्टि मुझको फुरी तब पूर्णस्वरूप मुझे विस्मरण हुआ । जैसे सुषुप्ति में अपना स्व रूप विस्मरण की नाईं होता है, तैसे ही मुझको विस्मरण हुए की नाईं भासा । तब जैसे स्वप्न में जाग्रत्ࣿ स्वरूप का विस्मरण होता है और जाग्रत् में स्वप्न का विस्मरण होता है, तैसे ही पूर्व का स्वरूप मुझको विस्मरण हुआ । जब शरीर और इन्द्रियाँ मुझको अपने साथ भासी तो उनमें मैंने अहंप्रत्यय करके ॐकार शब्द उच्चार किया । जैसे बालक माता के गर्भ में उत्पन्न होकर शब्द करता है, तैसे ही मैंने ॐ शब्द का उच्चार किया । जैसे कोई पुरुष स्वप्न में उड़ता और शब्द करता है तैसे ही मैंने ॐकार का उच्चार किया जो आदि, मध्य और अन्त से रहित परब्रह्म है और सर्व ब्रह्माण्डरूपी तरंग का आधार समुद्र है । हे रामजी! जब मैं आधिभौतिक दृष्टि से देखूँ तब मुझको शिला ही भासे और जब अन्तवाहक दृष्टि से देखूँ तब अनन्तब्रह्माण्ड दृष्ट आवें और नाना प्रकार की क्रिया और मर्यादा सहित भासे पर जब आत्मदृष्टि से देखूँ तब अद्वैत अपना आपही भासे । हे रामजी जैसे सूर्य की किरणों में मरस्थल की नदी भासती है तैसे ही मुझको सृष्टि भासे । जैसे मरुस्थल की नदी मिथ्या है, तैसे ही ग्रहण करनेवाली वृत्ति मिथ्या है । जैसे संवेदन में मनन फुरता है सो भी मिथ्या है, क्योंकि नदी मिथ्या है तो मनन उसका सत् कैसे हो, तैसे ही यह भी जीव का रूप अवलोक

मिथ्या है और भ्रान्ति करके सत्य भासता है। जैसे स्वप्नसृष्टि, संकल्पपुर और मनोराज का नगर मिथ्या है और कथा का वृत्तान्त अनहोता ही भ्रान्ति से प्रत्यक्ष भासता है, तैसे ही यह जगत् भ्रान्ति से सत्य भासता है-वास्तव में कुछ नहीं पर संकल्पविलास में बना दृष्टि आता है। हे रामजी! जिस प्रकार मुझको सृष्टि भासी है सो सुनो। जब मेरे में पृथ्वी की धारणा हुई तब पृथ्वी मुझको शरीर होकर भासने लगी, क्योंकि मैं विराट्, पशु; पक्षी, देवता, ऋषीश्वर, दैत्य और नाग आदिक जो स्थित हैं सो पृथ्वी मेरा शरीर हुआ, पर्वत मेरे मुख हुए, सुमेरु आदि पर्वत मेरी भुजा हुई, सप्तसमुद्र इन्द्रिय हुई, सर्व नदी मेरे कण्ठ में माला और वन मेरी रोमावली हुई, मरुस्थल की नदी मेरे ऊपर विस्तार हुई और देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी और दैत्य इत्यादि मेरे में कीट भासे-शरीर में जुआँ लीख आदिक हैं। किसी ठौर मेरे ऊपर हल चलाते हैं और बीज बोते हैं जिससे खेती उगती है और प्राणी खाते हैं, कहीं खोदते हैं, कहीं पूजा करते हैं, कहीं समुद्र स्थित हैं, कहीं नदी चलती हैं, कहीं राजा राज्य करते हैं और कहीं मेरे ऊपर झगड़ मरते हैं। एक कहता है पृथ्वी मेरी है और दूसरा कहता है मेरी इस प्रकार ममता करके युद्ध करते हैं। कहीं हाथी चेष्टा करते हैं, कई रुदन करते हैं, कई हास्य करते, कहीं वृत्ति फैलाते हैं, कहीं सुगन्ध है, कहीं सुगन्ध है, कहीं दुर्गन्ध है, कहीं नदियाँ चलती और क्षोभ करती हैं, कहीं देवता और दैत्य मेरे ऊपर युद्ध करते हैं, कहीं शीतलता से जल मेरे ऊपर बरफ हो जाता है। इस प्रकार इष्ट अनिष्ट स्थान मैंने अपने ऊपर देखे और राजसी, तामसी और सात्त्विकी जितनी जीवों की क्रिया होती हैं उन सबका आधार मैं हुआ, पूर्व, पश्चिम उत्तर और दक्षिण दिशाओं की संज्ञा संवेदन फुरने से हुई है।

इति श्रीयोगवाशीष्ठे [illegible] पृथ्वीधातुवर्णनन्नाम द्विशततमस्सर्गः ||200||

अनुक्रम